अधूरा स्वर्ग

[महत्वाकांक्षाओं के पावन सन्दर्भों से ओतप्रोत एक मर्मान्तक सामाजिक उपन्यास]

उपन्यासकार
भगवतीप्रसाद वाजपेयी

भारतीय ग्रन्थ निकेतन
१२३, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-६

सूची-पत्रक

वाजपेयी, भगवतीप्रसाद, १८९९–
अधूरा स्वर्ग.
दिल्ली, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, १९६६.

२४४ पृ. १९ सेंमी.

१ आख्या.

891.433 0152,3M99 भा. ग्रं. नि. १
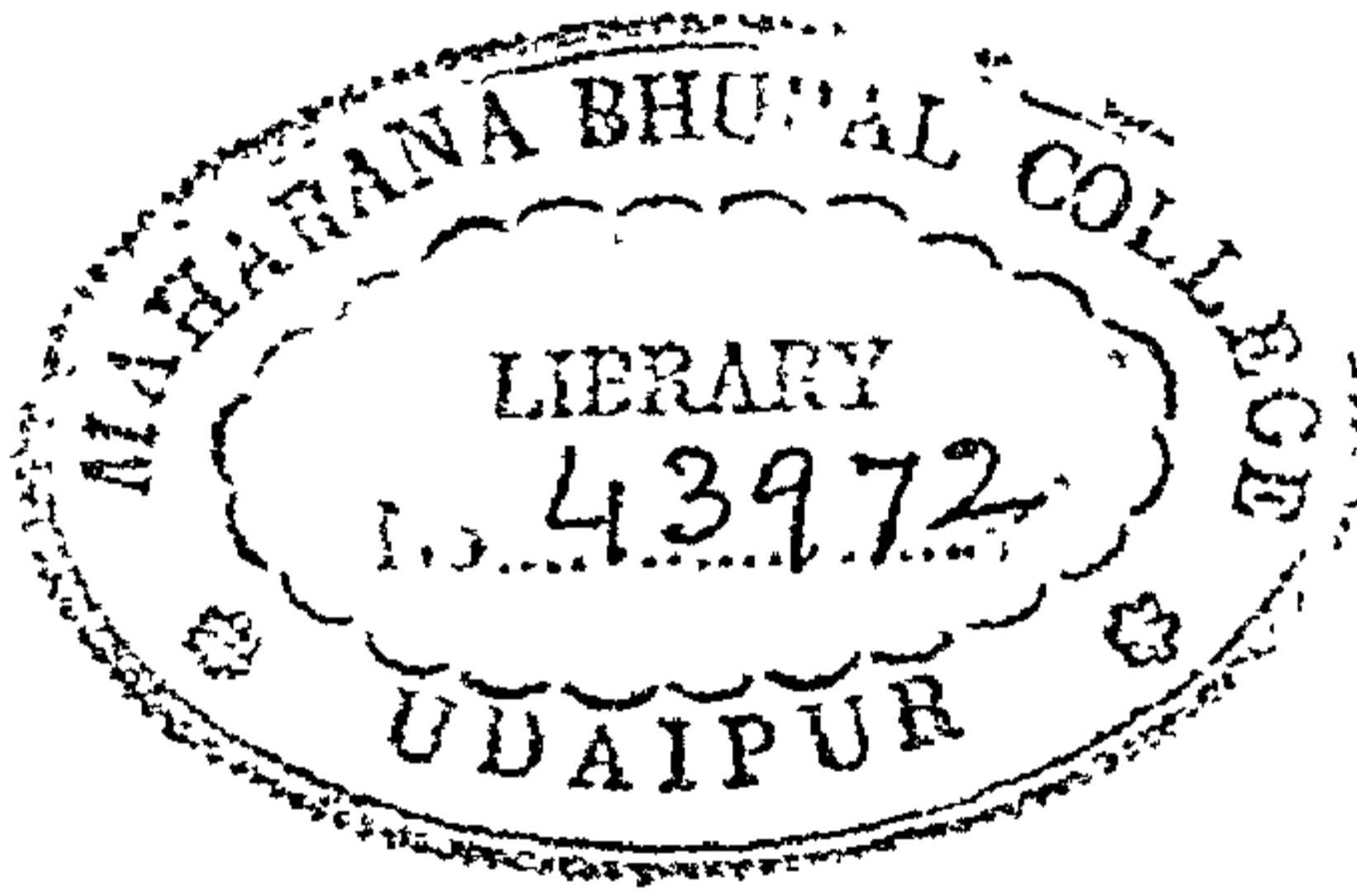
प्रकाशक : © भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
१३३, लाजपतराय मार्केट
दिल्ली-६
आवरण शिल्पी : पाल बन्धु
प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९६६
मूल्य : ६ रुपये
मुद्रक : विकास आर्ट प्रिंटर्स,
कूचा चेलान, दिल्ली-६

ADHURA SWARG *by* Bhagwati Prasad Vajpayi (Novel)
Rs. 6.00

१

"मेरे लिए सब कुछ सम्भव है !"

कथन के साथ ही ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह का हाथ स्वतः अपनी मूँछों पर बरसों-बरसों के अभ्यासानुसार पहुँच गया और मुस्कान होठों पर नाचने लगी।

हतप्रभ कामिनी का मुख म्लान पड़ गया और एकाएक उससे कुछ उत्तर देते न बना।

एक क्षण वह अपनी असहायावस्था पर मन-ही-मन खीझ उठी। परन्तु मृत्यु शैया पर पड़े रुग्ण अपने पिता का शिथिल गात और चुसे हुए आम की भाँति मुरझा चेहरा स्मरण करके, साहस बटोर वह हर परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो गयी।

"बड़े ठाकुर, मैं जानती हूँ कि आपके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है और मैं एक अबला, अकिंचन विधवा; परन्तु आप सम्भवतः यह भूल गये हैं कि मेरी शिराओं में भी रक्त का प्रवाह है। मैं···मैं भी इसी गाँव की मिट्टी में पली हूँ। मेरी धमनियों के लहू का रंग भी लाल है। यह वही रक्त है जो आपके शरीर में है। बड़े ठाकुर, मैं भी महाराज रणवीर बहादुरसिंह की वंशजा हूँ।"

"हूँः कामिनी, तुम धर्म-मर्यादा को त्याग कर मेरे समीप नीरव रात्रि के इस गहन अंधकार में क्यों आयीं ? तुम जानती हो कि तुम्हारा विवाह

मुझ से हो रहा था और ठीक उस समय तुम भाग गयी थीं जब मेरी बारात तुम्हारे द्वार पर पहुँची थी।"

कामिनी ठाकुर साहब की आँखों में आँखें डाले सुन रही थी और ठाकुर साहब थे कि बोले जा रहे थे।

कामिनी का उत्तर न पाकर ठाकुर साहब पुनः बोले—"तुम्हें याद होगा कि दो वर्ष पूर्व मैं तुमको लेने गया था और तुम नहीं आयी थीं। भाग्य की विडम्बना ने आज तुमको स्वयं मेरे द्वार पर लाकर उपस्थित कर दिया है। उस समय तुम्हारी स्थिति इस विशाल महल की रानी की होती जबकि आज एक भिखारिणी की है!"

"नियन्ता ने भाग्य में जो नियत कर दिया है, उसे मैं कैसे बदल सकती थी?"

"सच मानो कामिनी, मेरे मन में तुम्हारे प्रति तनिक भी कुण्ठा नहीं है। मैं सदैव अन्तःकरण से तुम्हारी भलाई की कामना करता रहा हूँ। बीमारी में मैंने काका की कितनी सेवा की, यह सारा गाँव जानता है। मैं जानता था कि एक-न-एक दिन मेरी तपस्या अवश्य पूरी होगी और तुम आओगी। मुझे विश्वास था, जानती हो क्यों?"

कामिनी ने उनके प्रश्न का मुख से कोई उत्तर न दिया; किन्तु उसकी आँखें मानों स्वयं ही ठाकुर साहब से प्रश्न कर उठीं—"क्यों?"

कामिनी की मूक दृष्टि का अनबोला वाक्य उनके हृदय को विदीर्ण कर, लोम-लोम में बस गया। लोहावरण के अन्दर संजोया हुआ दुःख-दर्द उमड़ कर उनके मुख पर छा गया। उनकी गर्वीली वाणी, जिसका कठोर गर्जन सुनकर बड़े-बड़ों का रक्त पानी हो जाया करता था, अचानक कम्पित हो उठी।

आर्द्र स्वर में उनके कण्ठ से बरबस रोकने की चेष्टा करते-करते भी निकल गया—"तुम बचपन से लेकर युवावस्था तक के सारे वादे भूल गयीं। तुम्हें कुछ भी याद न रहा और तुम स्वयं ही विवाह के लिए आमंत्रित कर चतुरसिंह के साथ भाग गयीं। आखिर क्यों?"

कामिनी के नेत्रों की कोर पर दो मोती झलक उठे।

ठाकुर साहब बोले जा रहे थे—"तुम्हारी सहमति से ही काका ने इस विवाह का आयोजन किया था। फिर तुमने ऐसा क्यों किया ? न जाने कितने स्वप्नों का निर्माण तुम्हारे संकेत पर मैंने किया था और तुमने केवल एक प्रहार से न केवल उन्हें बिखेर दिया वरन् मेरी पगड़ी भी अपने अपावन पैरों तले रौंद डाली। और आज…।"

कामिनी के सफ़ेदी लिये हुए गुलाबी गाल, बहते हुए आँसुओं की बाढ़ में डूब गये।

ठाकुर साहब अनवरत बोले जा रहे थे—"और आज तुम स्वयं चल कर मेरे पास आयी हो, क्यों ? सहारा चाहती हो न ? मैंने कब इनकार किया ? और मैं इस सहारे को केवल एक आधार ही तो देना चाहता हूँ।"

आँचल से आँसू पोंछती हुई, अपने को संयत कर, सुदृढ़ स्वर में कामिनी बोली—"परन्तु यह असम्भव है !"

"कामिनी तुम बच्ची नहीं हो। दो वर्ष में तुमने जीवन के कई उतार-चढ़ाव, अनेक मोड़, अनगिनित घुमाव देखे और पार किये हैं। सच मानो मुझे तुम्हारा सब हाल मालूम है। मुझे यह भी ज्ञात था कि तुम आज यहाँ आओगी। इसीलिए मैंने फाटक खुला रहने दिया था। मेरे ही आदेश पर सब पहरेदार आज फाटक खुला छोड़ कर चले गये। मेरे ही आदेश पर समस्त सेवक इस कक्ष से दूर चले गये हैं। जानती हो क्यों ? इसलिए कि तुमको यहाँ आने में कोई संकोच न हो और जाने के पश्चात् ऐसी कोई साक्षी न रहे जो कभी तुम्हारे यहाँ आने की बात फैला कर तुम्हारी बदनामी कर सके।"

कामिनी मुन रही थी और अन्तराल की सिसकियाँ फूट कर कण्ठ से निकल पड़ी थीं। बोली—"तुम महान हो बड़े ठाकुर ! मुझे तुम पर अभिमान है। मुझे अपने इस भाग्य पर भी अभिमान है कि चाहे जैसे हो मैं तुम्हारी प्रेयसी बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी। विश्वास मानो बड़े

ठाकुर, तुम्हारा प्रेम ही मेरे जीवन की हर साँस का आधार रहा है। एकमात्र इसी अवलम्ब के सहारे मैंने ये दुर्दिन काट दिये। मैं कामना करके भी न मर सकी। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मैं क्रूर विधि के हाथों कैसी रौंदी जाती रही, पैरों कैसी कुचली जाती रही। सच पूछो तो मैं इसी सम्बल पर जीती रही कि तुम मेरे हो। पर आज तुम मेरे विश्वास की लोह शृंखला को तृणवत् तोड़ देने पर आबद्ध हो।"

"ऐसा मत कहो कामिनी। इस प्रकार का विचार तुम्हारे मन में उत्पन्न हो गया, तो मैं अपने आप को कभी क्षमा न कर सकूँगा। संकेत-मात्र पर मैं अपने प्राणों की आहुति तुम्हारे चरणों पर चढ़ा सकता हूँ। मैं सारे संसार में आग लगा सकता हूँ। तुम समझती हो कि मैंने यह एकांत इसलिए कर रक्खा है कि मैं तुमसे बदला ले सकूँ, तुम्हारी मजबूरी का नाजायज़ फ़ायदा"'च् च् च् तुमने मुझे बहुत गलत समझा है। मेरा प्रस्ताव तो केवल इतना है कि मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। तुम्हारे सुख के लिए मैं तुम्हारी सूनी माँग को अपने रक्त की लालिमा से भर देना चाहता हूँ।"

कामिनी अधिक सहन न कर सकी और भावातिरेक से ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह के चरणों में, मुग्धा की भाँति झुक गयी और बोली—"मेरे भाग्य ऐसे कहाँ मेरे देवता!"

भावना के उफान में डूबे हुए ठाकुर साहब समस्त वातावरण को भूल गये और युग-युग के बिछुड़े हुए प्रेमियों की भाँति विह्वल हो उठे। कामिनी को उठाकर उन्होंने अपने वक्षस्थल से चिपका लिया।

आषाढ़ मास की चिलचिलाती हुई धूप में वर्षा की घनघोर बदरी-सी छा गयी। स्नेह का अवलम्ब पाकर सिसकती हुई कामिनी के धैर्य का बाँध टूट गया। शिरा-शिरा, लोम-लोम यहाँ तक कि आत्मा तक रससिक्त हो उठी।

बचपन का स्नेह, मादक यौवन का विवेकहीन प्यार, समाज, धर्म,

मर्यादा की शृंखलाओं को तोड़कर एकाएक जैसे चिरन्तन, शाश्वत सत्य की ओर बढ़ चला।

आलिंगनपाश कसता गया, कसता गया और कामिनी शिथिल पड़ती गयी।

कसाव की घुटन से उसे पुनर्जीवन मिला। चिरसिंचित अभिलाषा अपनी अभिव्यक्ति पा गयी।

ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह ने धीरे से उसका चिबुक उठा कर उसके लरजते रक्ताभ होंठों पर अपने उन्मुक्त होंठ रख दिये। कामिनी की बड़ी-बड़ी निडर आँखें मंत्रमुग्धा की भाँति अपने आप बन्द हो गयीं।

दोनों बाह्य जगत को भूल अन्तरात्मा के सुख के वशीभूत ज्ञान धर्म को भूल गये। अगले क्षण ठाकुर साहब अपने शयनागार की ओर बढ़ रहे थे और कामिनी उनकी बाहों में सिमिटी हुई थी।

दोनों बेसुध थे। भूत, भविष्य का तो क्या, वर्तमान का भी उन्हें ज्ञान न था।

मनुष्य के जीवन में अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब उससे अनजाने में बहुधा अनचाहे कुछ ऐसे कर्म अनायास हो जाते हैं जिनका फलाफल वह सोच नहीं पाता। मानो वे कर्म सुषुप्तावस्था में किए गये हों। आज एक ऐसा ही क्षण उन दोनों के जीवन में घटित हो गया था। नियति यह सिद्ध करना चाहती थी कि मानव कितना दुर्बल है।

अन्धकार पर प्रकाश की विजय सदैव होती रहती है। एक छोटा-सा टिमटिमाता दीपक गहन तिमिर का हृदय विदीर्ण कर देता है!

प्रेम की पराकाष्ठा या वासना की परिपूर्ण शान्ति एक ही तस्वीर के दो पहलू होते हैं।

गजेन्द्र के पैर में पौरुष की ठोकर क्या लगी, वह सोते से जाग गया। सुप्त चेतना बुद्धि के आलोक में सजग हो गयी। अन्तःकरण ने उसे झकझोर दिया।

परम्परागत मान्यताएँ आत्म-निष्ठा के साथ मनुष्य के जीवन में घुल-

मिल जाती हैं—उन्हीं के पालन से बहुधा वंश-विशेष की विशिष्टता प्रकट होती है।

गजेन्द्र के पूर्वज उसे धिक्कारने लगे। उसे लगा, समस्त ब्रह्मांड प्रज्वलित अग्नि के धूम्र से इस भाँति आच्छादित हो गया है कि ऊष्णता में वह जला जा रहा है, फुंका जा रहा है।

उसे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि वह इतना अन्धा कैसे हो गया?

—जरा से यौवन के झलक की चमक और···।

—उफ़! मैं···मैं···।

उसने अपने दोनों हाथ खींच लिये और कामिनी कटे वृक्ष की भाँति फ़र्श पर गिर पड़ी।

गिरते ही कामिनी को भी अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। उसने गजेन्द्र की ओर तृषित दृष्टि से देखा।

गजेन्द्र दोनों हाथों से मुंह छिपाये सिसकता हुआ बुदबुदा रहा था—हरि ओ३म् तत्सत, हरि ओ३म् तत्सत्।'

कामिनी ने अपने को सुस्थिर कर लिया। हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा उँगलियों की पोरों में सिमिट गयी। उसने सहसा गजेन्द्र का चरण-स्पर्श कर लिया। बोली—"मेरे देवता, मैं अमर हो गयी। जन्म-जन्मान्तर की प्यासी मैं, आज प्रेम-सुधा पीकर छक गयी, कृतार्थ हो गयी।"

गजेन्द्र एक क़दम पीछे हट गया और बोला—"कामिनी, मुझे क्षमा कर दो। मैं पापी हूँ। मैं वासना में डूब गया था। मैंने तुम्हारे हृदय में अपने प्रति पावन प्रेम का, अबाध झरना पाकर उससे अनुचित लाभ उठाना चाहा। पर कामिनी, मैं सच कहता हूँ, मैंने जान बूझकर ऐसा नहीं किया है, तुम्हारे लिए तो क्या, किसी नारी के लिए मेरे मन में आज तक ऐसा भाव नहीं आया।"

"मैं जानती हूँ मेरे देवता!"

"कामिनी तुम कुछ नहीं जानतीं। कितना बड़ा अनर्थ होने जा रहा

था और मैं···। मैं, अब दूर, बहुत दूर चला जाऊँगा। इतनी दूर, जहाँ से मेरी छाया मात्र भी तुम्हारे निर्मल पावन गात पर पड़कर तुम्हें कलुषित न कर सके।"

"नहीं, बड़े ठाकुर नहीं, तुम्हें मेरी सौगन्ध, ऐसा कभी न करना। तुम व्यर्थ ही अपने को दोष देते हो। तुम्हें पता नहीं, तुम कितने महान हो। मुझसे विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत करके तुमने उदारता की पराकाष्ठा कर दी। तुमने यह भी न सोचा कि मैं कितनी बड़ी कलंकिनी हूँ। त्याग की भावना से प्रेरित तुम्हारा यह प्रस्ताव तुम्हें समाज में किस सीमा तक गिरा देता इसका तनिक भी विचार तुम्हारे मन में नहीं आया।"

"अब सोचता हूँ तो ऐसा लगता है कि इन सबकी जड़ में मेरे हृदय की सुप्त वासना है। नहीं, मुझे प्रायश्चित करना ही होगा।"

कामिनी ने निःश्वास लेते हुए कहा—"बड़े ठाकुर, पाप मैंने किया है। वासना ही नहीं, मेरे मन की आकांक्षा युग-युग से अन्तराल में छिपी हुई चिनगारी आज हवा का झोंका पाकर प्रज्वलित हो उठी। विश्वास मानो, मैं जानबूझकर अनजान बनने का नाटक रचकर अपने देवता को कालिमा के पंक में घसीट रही थी।"

"मैं पुरुष हूँ। सो भी राजपूत। नारी का सम्मान करना मेरे रक्त का गुण है। पर मैं इतना निकृष्ट जीव हूँ कि घर आयी हुई असहाय नारी के साथ अपना मुँह काला करते मुझे लाज न आयी। अब मैं अभी इसी क्षण गाँव छोड़कर चला जाऊँगा।"

कामिनी ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोली—"मैं तुमको अपनी सौगन्ध दे चुकी हूँ। मेरा यह अधिकार तो नहीं है कि मैं तुम्हें रोक सकूँ; परन्तु मैं एक भिक्षा माँगती हूँ, बड़े ठाकुर, बोलो, प्रस्थान करने के पहले, दोगे?"

"मैं वचन देता हूँ।"

"मुकर तो न जाओगे?"

"कामिनी तुम मेरा अपमान कर रही हो!"

"तो माँग लूँ बड़े ठाकुर ?"

"हाँ, और इस विश्वास के साथ कि सम्भव होगा तो अवश्य प्राप्त होगा।"

मैं केवल इतना माँगती हूँ कि प्रयाण का प्रथम चरण मेरे वक्षस्थल पर हो। बोलो, वरदान मिलेगा बड़े ठाकुर ?"

कामिनी, तुम यह किस जन्म का बैर निकाल रही हो ? मेरे डगमगाते हुए क़दमों को इस भाँति शृंखला में बाँध कर तुम्हें मिलेगा क्या ? तुमसे सहारा चाहता था पर तुमने तो मुझे उत्तुंग शिखर से गहरी घाटी में ढकेल दिया।"

"बड़े ठाकुर इस जीवन में मैं तुमको न पा सकी तो क्या अब मुझे दर्शन मात्र से भी वंचित कर दोगे ?"

"कामिनी, मैं पुरुष हूँ, रक्त मज्जा निर्मित एक साधारण मानव मात्र, जिसमें दुर्बलता के सिवा कुछ नहीं है। मुझे इतना न झिझोड़ो कि मैं अपना संतुलन ही खो बैठूं और पथ भ्रष्ट हो जाऊँ। हाँ, मुझे तड़पाने में ही अगर आनन्द आता है, तो मैं यों ही तड़पता रहूँगा और मुख से आह तक न निकलेगी। तुम्हारे सुख में ही मेरा सुख सन्निहित रहेगा।

कथन के साथ ही वह उठ खड़ा हुआ और बाहर की ओर चल पड़ा। आगे-आगे वह चल रहा था, पीछे-पीछे कामिनी। दोनों मौन मन्थर गति से मुख्य द्वार की ओर बढ़ रहे थे, दोनों के मन में भयंकर तूफ़ान उठ रहा था।

मुख्य द्वार पर पहुँचकर गजेन्द्र रुक गया। एक ओर सरककर उसने कामिनी को निकल जाने की राह कर दी।

कामिनी उसके सम्मुख ठिठक कर खड़ी हो गयी। दोनों ने एक-दूसरे को इस भाँति देखा कि नेत्रों ने मौन भाषा में जैसे एक महाकाव्य रच डाला।

कामिनी ने झुककर पुनः उसका चरण स्पर्श किया। बोली—"आशीर्वाद दो बड़े ठाकुर!"

उमड़ते हुए आँसुओं को रोकने की चेष्टा करते हुए अवरुद्ध कण्ठ से गजेन्द्र केवल इतना बोला—"सुखी रहो।"

कामिनी द्वार से निकलकर राजपथ पर बढ़ चली और गजेन्द्र खड़ा-खड़ा उसे देखता रहा, जब तक वह मोड़ पर जाकर उसकी दृष्टि से ओझल न हो गयी।

हृदय से पराजित समाज में विख्यात लौह पुरुष ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह कामिनी के पदचिह्नों पर मस्तक टिका कर फूट-फूटकर, फफक-फफक कर रो पड़े!

२

हरीपुर के वर्तमान सर्वेसर्वा ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह ने अपने पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् लगभग तीन वर्ष गद्दी सम्हाली थी। वे पढ़े-लिखे आधुनिक विचारों के नवयुवक थे। जिस समय उनके पिता की मृत्यु हुई थी, उस समय वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम० ए० के छात्र थे।

पिता की अचानक मृत्यु ने उनके जीवन-प्रवाह को एकाएक मोड़ दिया और वह पिता के श्राद्ध आदि से निवृत्ति होकर खेती-बारी के प्रबन्ध की उलझनों में ऐसे उलझे कि लौट कर इलाहाबाद न जा सके।

गाँव में सुधार की बाढ़ आ गयी। सदियों से शोषित और पीड़ित मानव पर आषाढ़ मास की तपती दोपहर प्रथम वर्षा की फुहार हो गयी। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों में डूबे हुए गजेन्द्र ने कृषि के आधुनिकतम तरीकों को अपना लिया। उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। गाँव वालों को वे सदा प्रोत्साहन देते रहे। सदियों से पड़े हुए बंजर ट्रैक्टर एवं अन्य उपकरणों की सहायता से लहलहाते खेतों में बदल दिये गये।

एक बार जो समुद्र-मन्थन प्रारम्भ हुआ तो अनवरत् चलता रहा। रत्नों का अम्बार लग गया। कुयें पक्के बन गये। नल-कूप, आटे की

चक्की, तेल-घानी, पक्की सड़कें और गन्दे पानी की निकासी के लिये नालियाँ।

सहकारी बीज गोदामों से उत्तमोत्तम बीज और खाद के साथ-साथ सिंचाई के समुचित प्रबन्ध को जब पसीने का मिश्रण मिला, तो धरती सोना उगलने लगी। घर-घर में कुटीर-उद्योगों की स्थापना हुई और बेकार फिरने वाले लोग कुछ-न-कुछ करके अपने परिवार की आय बढ़ाने में लग गये।

गजेन्द्र की आय में वृद्धि हुई ही थी कि दूसरी ओर ह्रास ने पदार्पण किया।

ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् उसके पिता ने लेन-देन के व्यापार को अपनी आय का मुख्य साधन बना लिया था। उसी के कारण उनकी शान-शौकत और प्रतिष्ठा में कोई अन्तर न आ सका। गजेन्द्र ने खेती की उन्नति करके उससे प्राप्त होने वाली आय में वृद्धि तो की, परन्तु इसके साथ ही अन्य लोगों के सम्मुख उदाहरण और साधन प्रस्तुत करके ऋण लेने की प्रवृत्ति भी छुड़ा दी। शिक्षा से उत्पन्न नैतिकता ने लेन-देन का धन्धा समाप्त करवा दिया।

सुख-समृद्धि का साम्राज्य हरिपुर में छा गया। सभी सुखी थे और हृदय से गजेन्द्र को आशीर्वाद देते थे।

परन्तु इसी हरिपुर में एक व्यक्ति ऐसा भी था जो अवनति के गह्वर गर्त में गिरता जा रहा था। वह था कामिनी का पिता ठाकुर वीरबहादुर-सिंह।

ठाकुर वीरबहादुरसिंह के पितामह कभी इस इलाके के राजा थे। समय की गति ने उनको साधारण कृषक बना दिया था। गजेन्द्र के पूर्वज और वीरबहादुर के पूर्वज महाराजा रणधीर बहादुरसिंह पृथ्वीराज चौहान के सेनापतियों में से थे। उन्होंने अपनी वीरता एवं कला-कौशल से राज्य की स्थापना की थी। पर धीरे-धीरे काल के गाल में सब समा गया और

ग़दर के पश्चात् हरिपुर का इलाका एक छोटी-सी जमींदारी के रूप में रह गया।

यों तो ठाकुरों के इस गाँव में सभी एक-दूसरे के वन्धु थे। परन्तु प्राचीनता के ऊपर नवीनता की विजय सदैव हुई है। प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं में सदैव सुधार होते रहे हैं। यहाँ तक कि एक गोत्र होने पर भी उन लोगों में आपस में विवाह होने लगा, जिनका सीधा सम्पर्क छै-सात पीढ़ी से न था। सारा गाँव कई प्रमुख परिवारों में बँट गया था। आपस में एक-दूसरे से नातेदारी होने पर भी गाँव में वैमनस्य, लड़ाई-झगड़े तथा कटुता का अभाव न था।

फौजदारी और दीवानी के मुकदमे आपस में चला ही करते थे, जिससे एक-दूसरे को नीचा दिखाने में संलग्न परिवार की सुख-समृद्धि उनका साथ छोड़ रही थी और निर्धनता उनको अपनाये जा रही थी।

लोगों के खेत-पात, वाग-वगीचे, रहन और गिरवी हो-होकर दूसरों के पास पहुँच गये थे। उनकी स्थिति साधारण कृपकों से अधिक न रह गयी। ऐसे में जमींदारी उन्मूलन उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ और गजेन्द्र के गद्दी पर वैठने से हरिपुर में क्रान्ति का ऐसा दौर चला कि टूटे हुए मकान पक्के हो गये। जो लोग शराव पी-पीकर अपने दुखों को भूलकर अतीत के वैभव की कल्पना में लीन अकर्मण्य वने रहते थे, वे सब सजग हो आपसी वैमनस्य को भूलकर कर्म के एक सूत्र में गुंथ गये।

परन्तु प्रकाश और अन्धकार की भाँति जनता में भी भले और वुरे लोग होते ही हैं। कभी-कभी अचानक धन का आगमन होने से मनुष्य अपना संतुलन खो वैठता है। ऐसा ही हुआ भी।

हरिपुर में अपने नाम और गुण के अनुरूप एक व्यक्ति था चतुरसिंह, उसने वदलते हुए समय का पूर्ण लाभ उठाया। न केवल उचित उपायों से वल्कि अनुचित साधनों से भी और चतुराई से ऐसा नाटक रचा कि किसी को भी उसके व्यवहार में कभी भी कोई वुराई अथवा छल की झलक तक न मिल सकी।

गजेन्द्र और चतुरसिंह दोनों समवयस्क थे। दोनों साथ-साथ पले और खेले थे।

उनके जीवन में जब कामिनी का प्रवेश हुआ, उस समय भी दोनों साथ ही थे। ठाकुर वीरबहादुरसिंह जिले की कचहरी में पेशकार थे। वे ऊपरी आमदनी को भगवान का आशीर्वाद मानते थे। पत्नी एवं एकमात्र पुत्री कामिनी के अतिरिक्त उनके अन्य कोई न था। अतः वे पत्नी एवं पुत्री को अत्यन्त प्यार करते थे।

सब गुण होते हुए भी शराब का व्यसन उनको कोढ़ की भाँति गलाये जा रहा था। वे अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। जो कुछ दिन-भर की आय होती, संध्या को गिलास में उड़ेल कर पी जाते थे। भविष्य के लिए उन्होंने कभी कुछ बचा कर रखने की बात सोची तक न थी।

गाँव से उनका सम्बन्ध केवल इतना था कि पुरखों का एक खण्डहर था, जिसमें अब केवल दो कमरे जरा-जीर्ण अवस्था में होने पर भी रहने लायक बचे थे, वह कामकाज के अवसरों पर आते और फिर तुरन्त वापस चले जाते।

गजेन्द्र और चतुरसिंह दोनों हरिपुर की प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उच्च शिक्षा के हेतु जब फ़तेहपुर गये तो होस्टल में स्थान मिलने के पहिले उन्हें वीरबहादुर के यहाँ ठहरना पड़ा। वहीं दोनों की कामिनी से भेंट हो गयी। बचपन के दिन थे, खेलकूद की अवस्था ने तीनों में एक आत्मीयता एवं मित्रता उत्पन्न कर दी।

हाईस्कूल पास करने के पश्चात् चतुरसिंह को अपने गाँव वापस आकर पिता का हाथ बटाना पड़ा। गजेन्द्र इंटरमीजियट की पढ़ाई पूरी करने के हेतु दो वर्ष फ़तेहपुर में और रहा।

कामिनी गजेन्द्र से अवस्था में लगभग छः वर्ष छोटी थी। गजेन्द्र विश्वविद्यालय में पहुँच गया, फिर भी इलाहाबाद से गाँव जाते और लौटते समय उसकी भेंट कामिनी से अवश्य होती। बचपन का लगाव धीरे-धीरे अवस्था के साथ यौवन में प्रवेश करता गया। अनजाने में कहे

गये शब्द और वचन अब अपना स्वरूप बदल कर विशिष्ट अर्थ समझाने लगे। दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते और अधीरता के साथ मिलन की प्रतीक्षा करते।

दोनों ही किशोरावस्था पारकर यौवन की अमराई में प्रवेश कर चुके थे और दोनों के ही हृदय में बचपन का स्नेह यौवन का मधुर प्यार बनकर प्रयोग की अंगड़ाइयाँ लेने लगा। बाल्यावस्था के वादे दोहराये गये तो दोनों ने एक-दूसरे के प्यार को गले से लगाना स्वीकार कर लिया।

चतुरसिंह गाँव जाकर पिता का हाथ बँटाने लगा, परन्तु पढ़े-लिखे होने के कारण उसने अपनी आय बढ़ाने के लिए अन्य साधनों पर विचार करना प्रारम्भ किया। एक दिन वह अपने घर के बरोठे में ही छोटी-सी दूकान खोलकर बैठ गया। वह दूसरे-चौथे फ़तेहपुर जाता और छोटी-मोटी नयी-नयी तरह की वस्तुएँ लाकर अच्छा पैसा कमाता। कालान्तर में नवयुवकों का एक दल संगठित कर वह उनका नेता बन गया।

हाथ में चार पैसे हों और दो-चार व्यक्ति हाँ-में-हाँ मिलाने वाले हों तो नेता बनते कितनी देर लगती है। अतः सचमुच एक दिन चतुरसिंह ने राजनीति में प्रवेश कर लिया। वह एक के बाद एक संगठन में घुसता और जब दूसरे का पल्ला भारी पाता, तो अपने लाभ के लिए दूसरे संगठन में मिल जाता। धीरे-धीरे उसकी ख्याति इतनी बढ़ गयी कि उस क्षेत्र में बिना उसकी सहायता के चुनाव में विजयी होना असम्भव समझा जाने लगा।

अब उसकी सहायता से विजयी प्रत्याशी एवं आगामी चुनाव में विजय की कामना करने वाले अन्य सभी उसकी कृपा दृष्टि के लालायित रहते। उचित-अनुचित सभी कार्य उसके द्वारा होते थे। अधिकारीगण स्वयं उसकी प्रसन्नता में अपनी भलाई मानते थे।

धीरे-धीरे उसने सरकारी ऋण लेकर अनेक कार्य प्रारम्भ कर दिये थे और कई मकान एवं दूकानें बना लीं।

अब अनजाने ही उसके मन में कामिनी के प्रति एक मोह उत्पन्न हो गया। केवल एक व्यवधान उसके रास्ते में था और वह था गजेन्द्र।

गजेन्द्र ने गाँव में आकर उसकी काया पलट दी, परन्तु इसका भी लाभ अपनी चतुराई से चतुरसिंह ने ही उठाया और वह जिला कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष चुन लिया गया। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया कि अब आगामी चुनाव में उस क्षेत्र से चुनाव लड़ने के लिए टिकट मिल जायगा।

चतुरसिंह सभी क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर रहा था कि अचानक कामिनी की माता का स्वर्गवास हो गया और पत्नी के वियोग में विक्षिप्त वीरबहादुरसिंह सांसारिक मोह-माया को तोड़ नौकरी को छोड़कर हरिपुर आ गये। अब जीवन में प्रथमबार चतुरसिंह को अनुभव हुआ कि वह गजेन्द्र से हार जायगा। कामिनी को प्राप्त करके जीवन की सम्पूर्ण सुख-शान्ति उपलब्ध कर लेने की महत्वाकांक्षा सदैव-सदैव के लिए नष्ट हो जायगी।

सफलता ज्यों-ज्यों उसके निकट आने की अपेक्षा दूर भागने लगी, त्यों-त्यों उसकी जिद्द बढ़ने लगी। उसने साहस एकत्र कर अवसर देख एक बार नहीं, अनेक बार कामिनी से विवाह का प्रस्ताव किया, परन्तु हर बार केवल निराशा ही उसके हाथ आयी। पर प्रत्येक निराशा ने उसे अनुत्साहित करने की अपेक्षा पुनः चेष्टा करने की भावना से भर दिया और वह दुगने उत्साह से कामिनी को प्राप्त करने में सफल होने के लिए सचेष्ट हो उठा।

एक अवसर ऐसा भी आया, जब उसने यह अनुभव किया कि सीधी उँगली घी न निकलेगा, तो उसने राजनीति के मुख्य मंत्र छल-कपट को अपना प्रमुख अस्त्र बनाने का निश्चय किया।

ठाकुर वीरबहादुरसिंह की उदास-उदास सूनी शाम चतुरसिंह की बैठक में उनकी प्रिय रंगीन परी की घुँघुरुओं की झन्कार में बीतने लगी।

कहते हैं हराम की शराब का नशा अधिक मादक होता है। वीरबहादुर भी जब घर लौटते तो उनको अपने तन-बदन का होश न रहता। धीरे-धीरे जब चतुरसिंह को यह विश्वास हो गया कि वीरबहादुर के पास पैसे नहीं हैं और वह बिना रंगीन पानी को कंठ से उतारे जीवित नहीं रह सकते तो उसने तुरुप चाल चली और एक संध्या ऐसी आयी, जब वीरबहादुर उसके यहाँ नित्य के अनुसार जा पहुँचे तो बैठने का आग्रह करने के बाद तुरन्त वह हिसाब-किताब में इस भाँति लग गया, जैसे बहुत व्यस्त हो।

कुछ क्षण पश्चात् बहीखाता बन्द कर वह उदास-सा हो मुँह बनाकर बैठ गया।

वीरबहादुरसिंह की अधीरता बढ़ती जा रही थी। खुराक का समय हो गया था और उसका कहीं पता न था। जब प्रतीक्षा असहनीय हो गयी तो वे बोले—"क्यों रे चतुरा, आज प्यासा ही रखने का विचार है?"

एक निःश्वास भरकर तख्त के नीचे से बोतल निकालता हुआ चतुरसिंह बोला—"जी बड़ा उदास है, काका! अकेले मन घबराता है। बोतल की झलक मात्र से वीरबहादुर की आँखें चमक उठीं। सहजभाव से उसने उत्तर दिया—"यह उम्र ही ऐसी होती है बेटा! मेरी बात मानो, विवाह कर लो।"

"विवाह, मुझसे विवाह करना कौन पसन्द करेगा?"

गिलास में भरी हुई शराब गले से नीचे उतरी और तन में आग लगाकर मन को शीतलता प्रदान करने लगी। उत्साह-भरी वाणी में उन्होंने कहा—"तू हाँ कह दे बस, लड़कियों की लाइन लग जायगी।"

चतुरसिंह इसी अवसर की प्रतीक्षा में मं वाये बैठा था। झट्से

बोला—"बस, एक पर आपकी कृपा हो जाय, मुझे पल्टन थोड़े खड़ी करनी है।"

"अरे बेटा, मेरा आशीर्वाद तो सदैव तुम्हारे साथ है।"

"तो फिर काका, मुझे आप अपनी सेवा करने का अवसर क्यों नहीं देते ?"

"सेवा का अवसर—अरे मैं तेरे ही सहारे तो जिन्दा हूँ। तू न होता तो अब तक मैं प्यासा मर गया होता।"

"काका, आप ही का घर है। आप मुझे पराया क्यों समझते है ?"

मस्ती में भरे हुए प्रसन्न चित्त वीरबहादुर ने हँस कर उत्तर दिया—"पराया, यह क्या कहने लगा तू ! तेरे सिवा मेरा अपना है कौन ?"

चतुर मछेरे की भाँति चतुरसिंह ने जाल को समेटना शुरू किया। बातों का क्रम और उनका घुमाव अपने अनुकुल पाकर वह मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहा था। उसने वीरबहादुरसिंह को नशे में चूर लाल-लाल आँखों में अपनी आँखें डालकर वास्तविकता को ग्रहण करने का प्रयास किया। परिस्थिति को अपने अनुकूल पाकर उसने एक अभूतपूर्व सुख एवं स्नायविक उत्तेजना का अनुभव किया।

कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति उसने अपने मनोभावों को छिपाकर सहज, स्वाभाविक ढंग से कहा—"मुझे हर घड़ी आपकी चिन्ता रहती है। आपके सिवा मेरा कौन है ? मैं तो चाहता हूँ कि आप मुझे अपना बेटा बना लें। इस भाँति सेवा करने का अवसर जो मुझे मिलेगा, उससे मेरा जीवन धन्य हो जायगा।"

ठाकुर वीरबहादुर उन व्यक्तियों में से थे, जिनकी चेतना शराब के चन्द घूंट पीने के बाद जागृत होती है। शराब उनके लिए उसी भाँति जीवनदायिनी थी, जिस प्रकार रोगी विशेष के लिए विष जो सामान्य-स्थिति में प्राण हर लेता है, परन्तु रोगी को जीवन प्रदान करता है।

काफी समय तक साथ में बैठकर शराब पीने पर भी चतुरसिंह यही

समझने की भूल करता रहा कि ठाकुर वीरबहादुर पीने के उपरान्त नशे में कुछ बहक जाते हैं, जब कि वस्तुस्थिति इससे भिन्न थी। और आज भी उसके प्रश्न के उत्तर में कुछ ऊलजलूल बकने के स्थान पर वे प्रस्तुत प्रश्न के अन्दर छिपे हुए सांकेतिक अर्थ को गम्भीरतापूर्वक सोचने लगे।

उनके मन में उठे तर्क ने उनको यह स्पष्ट समझा दिया कि चतुरसिंह का अभिप्राय क्या है। फिर उसको न मानने का अर्थ भी क्या हो सकता है यह उनकी समझ में स्पष्ट आ गया।

उनकी उमर कचहरी के दाँवपेच-भरे वातावरण में गुज़री थी। उन्होंने तुरन्त स्थिति को अपने पक्ष में मोड़ने की चेष्टा की और कहा—"चतुर, मैं स्वयं ही इस प्रश्न पर विचार कर रहा था। पर आज जब तुमने चर्चा चला ही दी है तो मुझे भी अपने मन का भेद प्रकट करना पड़ेगा। तुम्हें मालूम है मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। ले-देकर बस कामिनी है। उसके विवाह के पश्चात् मैं तुमको गोद लेने की रस्म अदा करने की बात सोचता था। इस भाँति मेरे मरने के पश्चात् तुम मेरी जायदाद के वारिस बन जाते। बस चिन्ता है तो केवल इतनी कि कामिनी के हाथ जल्दी पीले हो जायें। किसी तरह मुझे छुट्टी तो मिले।"

"काका, आप मेरा अभिप्राय नहीं समझे। मैं तो आपको हर प्रकार की चिन्ता से मुक्त रखना चाहता हूँ। ज़रा सोचिये, अगर कामिनी विवाह के पश्चात् आपकी आँखों से दूर चली गयी तो क्या आपको दुःख न होगा? उस दशा में क्या आपकी सेवा में विघ्न उपस्थित न होगा? अपना ही रक्त अपना होता है। काका, कभी-कभी खोटा पैसा भी काम आ जाता है। मुझमें अगणित ऐब हैं, मैं मानता हूँ; परन्तु वहीं पर मेरे मन में आपके लिए आदर और प्रेम की भी भावना है। मैं आपकी सब चिन्ताओं का भार स्वयं उठाना चाहता हूँ।"

अनजान बनकर बिलकुल सहज भाव से ठाकुर वीरबहादुरसिंह ने कहा—"मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा, बेटा!"

"मेरा मतलब स्पष्ट है काका !"

"फिर भी पहेलियाँ न बुझाकर स्पष्ट कहो।"

"काका, कामिनी के विवाह के लिए आपको रुपये की आवश्यकता पड़ेगी और रुपया आपके पास है नहीं। रही जायदाद, सो उसके नाम पर यह खण्डहर चार-छः सौ रुपये से अधिक मूल्य का न होगा। पर मैं आपको इस भार से विमुक्त होने में पूर्ण सहायता दे सकता हूं, हालांकि आप जानते हैं कि मेरे पास भी इतना अधिक धन तो है नहीं, जो इस समस्या का समाधान बन सके। केवल एक उपाय है, जिससे सभी प्रकार की कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। वह यह है कि कामिनी और आप उस घर के बजाय इस घर में आकर रहने लगें।"

"ओः, तो तुम्हारा मतलब है कि कामिनी का विवाह तुम्हारे साथ कर दूं और मैं लड़की-दामाद की रोटियाँ तोड़ूं। यह तो समस्या का कोई समाधान न हुआ।"

"आप मुझे घर-जमाई भी तो बना सकते हैं।"

"हां, तुम ठीक कहते हो। प्रश्न के समाधान की ओर मैंने इस दृष्टि से विचार ही नहीं किया था। फिर भी मुझे अपने निजी खर्च के लिए धन की आवश्यकता तो पड़ेगी ही।"

प्रतिद्वन्द्वी की भाँति दोनों तरह-तरह के दाँव-पेंच दिखला रहे थे। पकड़ में कोई न आ रहा था। बहुधा वे मछली की भाँति मुट्ठी से सरक जाते, अखाड़े की मिट्टी तक बदन पर न छू पाती थी।

बरसात हो रही थी। रिमझिम-रिमझिम का मधुर नाद संध्या की नीरवता भंग कर रहा था। युग-युग की प्यासी धरती तृप्ति पा रही थी। उसकी साँसों से सोंधी-सोंधी सुगन्धि वातावरण को और अधिक मादक एवं उत्तेजक बना रही थी।

चतुरसिंह ने चारा फेंका—"मैं उसका प्रबन्ध स्वयं करूँगा। आपको आजीवन पचास रुपये मासिक देता रहूँगा।"

स्वार्थ मनुष्य को नीच-से-नीच कर्म करने की प्रेरणा देता है।

ठाकुर वीरबहादुर का जीवन स्वार्थ-सिद्धि में ही बीता था। कचहरी की नौकरी में उन्होंने न जाने किन-किन उपायों से सामने पड़ गये व्यक्ति की जेब से बात-की-बात में रुपया निकलवा लिया था, ठीक उसी भाँति जिस प्रकार वैद्य, मरे हुए रोगी की नाड़ी पर हाथ रखते ही फ़ीस के लिए दूसरा हाथ फैला देता है।

सौदेबाज़ी शुरू हो गयी। एक राजनीति का खिलाड़ी था, दूसरा कचहरी के अखाड़े का छटा हुआ माहिर पहलवान। अन्ततोगत्वा पुत्री पिता के द्वारा बेच दी गयी। दस हज़ार रुपयों की थैली पर नीलामी समाप्त हुई।

दोनों सन्तुष्ट थे। चतुर सोचता था कि रुपया चाहे उसके पास रहे या ठाकुर वीरबहादुर के पास, कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अन्त में विवाह के पश्चात् या तो सब-कुछ उसी को मिल जायगा, अन्यथा आगे-पीछे ठाकुर साहब की मृत्यु के उपरान्त वह उनकी सारी सम्पत्ति का अधिकारी हो जायगा। उसके सन्तोष का एक मुख्य कारण यह भी था कि विजय उसी की हो रही है। गजेन्द्र को वह अन्य किसी क्षेत्र में पराजित कर सके या नहीं, पर कामिनी को प्राप्त करके वह उसे अवश्य हरा देगा और इस भाँति आज तक हर क्षेत्र में उसे पराजित करने वाले की पराजय का श्रीगणेश अवश्यम्भावी हो जायगा।

ठाकुर वीरबहादुरसिंह सोचते थे कि इस चाल से उन्हें दोहरा लाभ हो रहा है। कामिनी का विवाह तो करना ही पड़ता। जीवन-भर तो उसे घर में बैठाये रक्खा नहीं जा सकता। और विवाह में धन की आवश्यकता पड़ती ही है।

उनके दृष्टिकोण से दो व्यक्ति दामाद बनने के उपयुक्त थे। एक था गजेन्द्र और दूसरा चतुरसिंह। मन-ही-मन उनका झुकाव गजेन्द्र की ओर अवश्य था। परन्तु उनकी निगाह में उसका सुरापान विरोधी होना एक दुर्गुण था। और चतुरसिंह न केवल विवाह का समस्त व्यय वहन करने को प्रस्तुत था, अपितु दस हज़ार की थैली भी भेंट कर रहा था।

बटुए से खैनी-चूना निकालकर हथेली पर रगड़ते हुए वे बोले—"लो, तम्बाकू खाओ।"

जब चतुरसिंह ने चुटकी से तम्बाकू लेकर अपने होंठ के नीचे दबा ली तो उन्होंने भी बची हुई तम्बाकू अपने होंठों के नीचे दबाई और कहा—"हाँ, तो बात तय हो गयी अब, बोलो, रुपया कब दे रहे हो ?"

कुछ सोचते हुए चतुरसिंह ने उत्तर दिया—"इतने रुपयों का प्रबन्ध करने में कुछ समय तो लगेगा ही। आप चिन्ता न करें काका, बिना रुपया पाए आप विदा न करियेगा।"

"देखो चतुरा, काम निकल जाने के बाद मैं लकीर पीटने पर विश्वास नहीं करता। कर देना तो दूर रहा, बिना रुपया मिले मैं इस सम्बन्ध को पक्का नहीं समझता।"

चतुरसिंह क्षण-भर रुका और बोला—"रुपये आपको; दस दिन के अन्दर मिल जायेंगे।"

"तो विवाह भी उसके बाद पहली साइत में सम्पन्न हो जायगा।"

रात्रि अधिक बीत चुकी थी। नित्य-प्रति की बैठकों से कहीं अधिक समय व्यतीत हो चुका था। अतः ठाकुर बीरबहादुरसिंह उठ खड़े हुए और घर की ओर चल दिये।

३

प्रेम की पेंग बढ़ाकर गजेन्द्र आकाश की बुलन्द ऊँचाइयों पर पहुँचने में सफल तो हो गया, किन्तु विधाता गजेन्द्र और चतुरसिंह के साथ वास्तव में खिलवाड़ कर रहा था।

जब से कामिनी पिता के साथ गांव आयी थी, तब से उसका सम्पर्क गजेन्द्र से विशेष रूप से बढ़ गया था। फ़तेहपुर में रहकर कामिनी हाई-स्कूल पास कर चुकी थी। बचपन से उसका साथ चतुर और गजेन्द्र दोनों से था, किन्तु अब उसकी परिष्कृत रुचियों के अनुकूल केवल गजेन्द्र ही था।

दोनों की भेंट घर पर भी होती और खेत-खलिहान में भी। दोनों ही एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हो चुके थे; अन्तःकरण में छिपी हुई अग्नि ने उनके मानस में एकान्त-मिलन की भावना का भी प्रादुर्भाव कर दिया।

स्पर्श की चाह भड़क कर आलिंगन के लिए व्याकुल हो चली। फलतः लुका-छिपी और मिलन की आकुलता से घबराकर गजेन्द्र ने कामिनी के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रख दिया।

मन्द मुस्कान के साथ किंचित् सिर हिलाकर बाईं ओर के कटाक्ष-संकेत से कामिनी ने जब अपनी सहमति प्रकट कर दी, तब गजेन्द्र ने उससे कह दिया—"तो अब मैं अवसर देखकर काका के सम्मुख विवाह

का प्रस्ताव रख दूंगा।"

दोनों भविष्य की नाना-प्रकार की कल्पनाओं में संसार को भूले हुए इस बात को निश्चित मान बैठे कि विवाह की स्वीकृति ठाकुर वीर-बहादुर अवश्य दे देंगे।

अवसर प्रदान करने का श्रेय विधाता स्वयं अपने-आप लेता है और उससे हानि और लाभ का फल मनुष्य के भाग्य में पहले से ही निश्चित कर देता है। त्रुटि या अनुचित कार्य के कलंक का टीका भी निरीह मनुष्य के मस्तक पर ही लगता है। उस समय समाज और धर्म के ठेकेदार इस बात को भूल जाते हैं कि अगर अच्छा कार्य भगवान् की इच्छा और प्रेरणा से होता है तो दुष्कर्म के लिए भी उसी को जिम्मेदार होना चाहिये। लेकिन क्या ऐसा होता है?

इधर ठाकुर वीरबहादुरसिंह की संध्या चतुरसिंह की बैठक में व्यतीत होने लगी, उधर कामिनी ने दूसरे ही दिन गजेन्द्र को चुपचाप अपने घर में पीछे के दरवाज़े से अन्दर आने का निमन्त्रण दे दिया। संध्या के धुंधलके में अपने पिता के जाने के उपरान्त वह पिछवाड़े के दरवाजे के समीप गजेन्द्र के संकेत की प्रतीक्षा करती रहती।

फिर होता कामिनी के कमरे का एकाकी टिमटिमाता हुआ दीप और प्रेम-सूत्र में बँधे हुए दो धड़कते हुए तरुण हृदयों का अध्ययन, कम्पन और मिलन।

परन्तु उनके मिलन में होता मर्यादा का व्यवधान। दोनों प्रतिदिन उन्हीं पुरानी प्रतिज्ञाओं को दोहराते और साथ-साथ जीने और मरने की क़समें खाते।

दिन बीत रहे थे। दोनों निश्चिन्त थे। उन्हें एक-दूसरे के प्यार के ऊपर विश्वास था। नित्य सूर्योदय के साथ-साथ दोनों एक-दूसरे से किसी-न-किसी बहाने मिलना प्रारम्भ करते। आँखों-आँखों में, प्रेम की मूक भाषा में कविताएँ रचते और आतुरता के साथ संध्या की प्रतीक्षा करते। अन्त होता यह कि रात्रि को जब ठाकुर वीरबहादुरसिंह शराब के नशे में

चूर वापस लौटकर अपने घर के मुख्य द्वार की कुंडी खटखटाते तो गजेन्द्र पिछवाड़े के दरवाज़े पर अगले दिवस आने की प्रतिज्ञा करता हुआ भेंट को स्थायित्व प्रदान करने के हेतु कामिनी के आतुर किन्तु झिझकते अधरों पर अपने प्यार का चिन्ह् अंकित कर देता।

विनाश प्रकृति का एक अनिवार्य अंग है। उसी के आधार पर नव-निर्माण की नींव रक्खी जाती है। प्रकृति अविजयी है और अत्यन्त द्वेष-पूर्ण है। अनादिकाल से उसके सम्मुख कोई विजय प्राप्त नहीं कर सका। कभी किसी ने किसी भी दिशा में विजय प्राप्त करने का प्रयास भी किया तो तुरन्त ही उसने अपनी शक्तियों को उसके विपरीत परिस्थितियों के रूप में लाकर खड़ा कर दिया और तुच्छ मानव खण्ड-खण्ड होकर, पिस-कर रक्त-मज्जा का ढेर बन गया।

कामिनी को अपने ऊपर बड़ा अभिमान था। वह अपने को ही नहीं, बल्कि गजेन्द्र को भी वासना से परे मानती थी। एकान्त मिलन की लुका-छिपी में भी दोनों ने संयम का प्रशंसनीय आदर्श स्थापित किया था।

पौराणिक कथाओं की भाँति इनके संयम से इन्द्रासन डोल गया। फलतः तपस्वी की परीक्षा लेने के लिए अवसर का चक्रव्यूह रच डाला गया।

उधर पिता पुत्री का सौदा कर रहा था और इधर एकान्त रबर की तरह लचीला बनकर पल-पल करके बढ़ता जा रहा था।

जैसे संयम का बाँध बड़े-बड़े तूफानों और भयंकर-से-भयंकर वासना की बाढ़ों को अपनी छाती पर रोक लेता है, वैसे ही कभी-कभी हल्के झटके में ही अपना अस्तित्व भी खो बैठता है।

ज्यों-ज्यों पिता के लौटने में देर होने लगी, त्यों-त्यों कामिनी नारी के सहज दौर्बल्य का शिकार हो उत्तेजनावश अपना विवेक खोने लगी। और गजेन्द्र कामदेव के बाण से पीड़ित हो घायल पक्षी की भाँति छट-पटाने लगा। मर्यादा का झीना आवरण तह-तह करके उतरने लगा। दोनों की गर्म साँसें एक-दूसरे के अन्दर उष्णता प्रदान करके अविवेकपूर्ण

स्नायविक उत्तेजना दहकाने लगीं।

नारी एवं पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। साथ-ही-साथ दोनों ही एक दूसरे को पतन के गर्त की ओर ले जाने वाले भी। दोनों ही एक-दूसरे को बहकाते, फुसलाते और छलते हैं, दोनों ही एक-दूसरे को अपने पतन का दोषी ठहराते हैं, पर दोनों ही अपना सक्रिय भाग भूल जाते हैं।

वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। दोनों एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते रहे और पग-पग करके पल-पल समाज की व्यवस्था का उल्लंघन कर प्रकृति के हाथों खण्ड-खण्ड होने के लिए तत्पर हो उठे।

एक क्षण और''अब सम्भव था। कौमार्य अपना अस्तित्व मिटाकर सुहागिन बन जाता, परन्तु वह क्षण न आया।

संयोग कहिए या सौभाग्य, पतन के गहन अन्धकाराच्छन्न गह्वर गर्त में फंसे हुए दो भोगी सहसा मुख्य द्वार की कुण्डी खटकने के कारण अपने मुंह पर कालिमा लगने के पूर्व ही सचेत होकर विरक्त बन गये।

निरावरण कामिनी ने अपने तन को झट से ढक लिया और समय के अभाव में खाट के नीचे गजेन्द्र को छिपाकर वह द्वार खोलने चली गयी।

पिता को भोजन कराने के उपरान्त जब कामिनी पुनः अपने कमरे में आयी तो तूफ़ान गुजर चुका था। उसके द्वार बन्द करते ही गजेन्द्र खाट के नीचे से निकला और उसका हाथ पकड़कर अत्यन्त मंद स्वर में फुसफुसाते हुए बोला—"आज भगवान् ने लाज रख ली, अन्यथा कल के प्रकाश को मैं अपना मुंह न दिखा पाता। अब मैं अधिक विलम्ब न करके कल प्रातः तुमको काका से माँग लूंगा। तुम मेरी प्रतीक्षा करना और समीप ही रहना। सबसे छिपकर किन्तु मेरी दृष्टि के सम्मुख, जिससे मैं तुम्हारा सम्बल पाकर निडर हो जाऊँ, तुमको सहज ही तुम्हारे पिता से माँग लूं।"

"मैं तुम्हारी हूं, तुम्हारी थी और सदैव तुम्हारी ही रहूँगी। तन के मिलन की औपचारिकता निभाने के लिए जो चाहो सो करो।"

कुछ समय प्रतीक्षा करने के बाद कामिनी जाकर अपने पिता को

सोता हुआ देख आयी और नित्य की भाँति चुपचाप गजेन्द्र पीछे के दरवाज़े से बाहर निकल गया।

कामिनी ने द्वार बन्द किया। उस समय उसे यह शंका भी न हुई कि क्या ऐसा अवसर वास्तव में इस जीवन में आयेगा ?

अपने शयन-कक्ष में पलँग के ऊपर रात-भर गजेन्द्र पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा। कामिनी भी एक क्षण के लिए न सो सकी। दोनों के मन में एक ही प्रकार के विचार उठ रहे थे, दोनों ही अपने मन में ग्लानि और लज्जा का अनुभव कर रहे थे।

कामिनी लज्जा के साथ एक पुलक सिहरन का भी अनुभव कर रही थी। उसकी स्थिति उस सौभाग्यमयी नारी की भाँति थी जो प्रथम मिलन के पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल दर्पण के सम्मुख खड़ी-खड़ी अपनी देह-यष्टि को निहार-निहारकर पति की विनोद-वार्ता का स्मरण कर लजा उठती है।

और गजेन्द्र बार-बार भगवान् को धन्यवाद दे रहा था कि उसने आज उसे इस दुष्कर्म से बचा लिया।

इन्हीं उलझनों में गजेन्द्र सूर्योदय से बहुत पहले नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर पूर्व निश्चय के अनुसार ठाकुर वीरबहादुरसिंह की हवेली के सम्मुख जा पहुँचा।

इस हवेली ने कभी सुनहले दिन भी देखे थे। आज के यत्र-तत्र बिखरे हुए लखौरी ईंटों के अवशेष अपनी गाथा सुनाते तो राहगीर बरबस थमकर उनका गीत सुनते और खण्डहरों के बीते हुए दिनों की कल्पना करते। समय का क्रूर-चक्र अपने पाटों के बीच में हर एक को पीस देता है। जिस समय उनके पूर्वजों ने इसका निर्माण किया था, उस समय ऐसा समझा जाता था कि लक्ष्मी का निवास यहाँ सदैव रहेगा। परन्तु निर्माण

और विध्वंस शाश्वत और चिरन्तन सत्य हैं। चल और अचल दोनों की एक आयु निर्धारित है। जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु निश्चित रहती है। जिसका निर्माण होता है उसका विनाश निश्चित है। प्रकृति-निर्मित किसी वस्तु को स्थायित्व प्राप्त नहीं है। विकास की दृष्टि में देखें तो हमें प्रतीत होगा कि सृष्टि स्वयं स्थायी नहीं है।

नित्य बदलने वाली इस ब्रह्मा की सृष्टि में केवल एक सत्य है, एक वस्तु है जिसको चिरन्तन स्थायित्व प्राप्त है, जिसकी उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई थी और अन्त तक रहेगी। वह है दुःख। उसका अभाव स्वर्ग में भी नहीं है। अन्यथा देवताओं, गन्धर्वों को पृथ्वी पर आकर लड़ने की आवश्यकता न पड़ती। वहाँ भी दुःख के सिवा किसी अन्य वस्तु को स्थायित्व नहीं प्राप्त है।

गजेन्द्र की विचारधारा कुछ इस प्रकार की थी कि वह दुःख को जीवन का एक अंग मानता था। जाति के अन्य गुणों के अनुसार दुःख से लड़ने की, सहन करने की क्षमता का अभाव उसमें न था। सुख को जहाँ पर भगवान् की कृपा मानता था वहीं दुःख को भी उन्हीं का आशीर्वाद समझता था। उसकी विचारधारा के अनुसार सुख और दुःख उसी प्रकार थे जिस प्रकार दिन और रात्रि। जिस प्रकार दिन के प्रकाश में रात्रि का अन्धकार छिपा रहता है, उसी प्रकार सुख के अन्दर दुःख का अस्तित्व विलीन रहता है। उसका विश्वास था कि जिस प्रकार रात्रि का गहन-तम अन्धकार दिवस के आते ही छँट जाता है, उसी प्रकार दुःख का भी समय समाप्त होकर सुख में परिणत हो जाता है। जिस प्रकार रात्रि का अपना सौन्दर्य और उपयोगिता है, उसी प्रकार दुःख की भी है।

इसी विश्वास के कारण उसमें हर स्थिति का सामना करने की आस्था और साहस उत्पन्न हो गया था।

वह चुपचाप हवेली के द्वार के सम्मुख टूटे हुए एक शिलाखण्ड पर टिक गया।

धीरे-धीरे प्राची की अरुणिमा में वृद्धि होने लगी। सूर्योदय के साथ

ही ठाकुर वीरबहादुरसिंह नित्य-क्रिया से निवृत्त हो मुँह में नीम की दातुन दबाये हुए द्वार खोलकर बाहर आये। बाहर निकलते ही उनकी दृष्टि गजेन्द्र पर पड़ी और उनके मन का चोर काँप उठा; परन्तु एक ही क्षण में वे पुनः प्रकृतिस्थ हो गये। जिस प्रकार अन्य मार्ग न मिलने पर, घिर जाने पर भी कायर अपने प्राणों का मोह त्याग समरांगण में डट जाता है, उसी प्रकार ठाकुर साहब भी अपने पक्ष को लेकर लड़ने को सन्नद्ध हो गए। उनके अवचेतन-मन ने उनको इस बात की शंका उत्पन्न करा दी कि गजेन्द्र का आगमन एकमेव कामिनी के विवाह की इच्छा लेकर हुआ है।

वे बोले—"अरे बेटा तुम ? इतनी सुबह ! कहो, कुशल तो है ?"

गजेन्द्र ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुए कहा—"बस, यों ही चला आया काका !"

"अच्छा, बैठो-बैठो।"

और कथन के साथ ही वे स्वयं भी उसी के समीप बैठ गये। मुँह से दातुन निकालकर ज़मीन पर पिच् से थूक दिया और पुकार उठे—"कामिनी बेटा, देखो गजेन्द्र भइया आये हैं। ज़रा जल्दी से जलपान ले आ। और हाँ कुल्ला करने के लिए एक लोटा पानी भी यहीं दे जा।"

कामिनी के नाम ने गजेन्द्र के बिखरे हुए विचारों को एक सूत्र में गूँथ दिया। फिर एकाएक उसके हृदय में साहस का संचार हो उठा।

"इसकी क्या आवश्यकता है काका ? अभी-अभी मैं चाय पीकर घर से निकला था।"

जैसे विपक्षी अपने पत्ते मेज़ पर बिछा दे जिससे बचाव पक्ष आक्रमण के लिए तैयार हो जाय। एक दक्ष वकील की भाँति उन्होंने सहज भाव से प्रश्न किया—"आखिर बात क्या है ? बिना किसी कारण इतनी सुबह तुम्हारा आना सम्भव नहीं। कोई कचहरी-मुक़दमे की बात तो नहीं है ?"

"नहीं, नहीं काका, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तो बस यों ही चला

आया था।"

"मुझे तो लगता है तुम कुछ छिपा अवश्य रहे हो। मैं कोई ग़ैर तो हूँ नहीं।"

"अपना ही समझकर तो आया हूँ काका! बचपन से जब कभी किसी विपत्ति या संशय में पड़ा हूँ, तब आपके पास ही तो दौड़ा हुआ आया हूँ।"

"पहेलियाँ न बुझाकर साफ़-साफ़ कहो, क्या बात है?"

एक कटोरे में भीगे हुए चने, जिसमें नमक, अदरख और कतरी हुई हरी मिर्च पड़ी हुई थीं, इसी समय लाकर कामिनी ने मध्य में रख दिए और जल-भरा लोटा अपने पिता के हाथ में थमा दिया।

कामिनी ने किंचित् फड़कते हुए अधरों से मुस्कराकर गजेन्द्र की ओर चोरी-चोरी एक दृष्टि डाली। साहस और विश्वास के साथ गजेन्द्र का वंशपरम्परागत आत्म-सम्मान जाग उठा। वह अपना हृदय खोलने अवश्य आया था, पर आत्म-गौरव बेचने के लिए प्रस्तुत न था।

कामिनी के वापस जाते ही वह बोला—"काका, आप बुज़ुर्ग हैं, मैं आपका बच्चा हूँ। आज मैं आपसे कुछ माँगने आया हूँ। क्या आप अपने बेटे की माँग पूरी न करेंगे?"

ठाकुर वीरबहादुर ने मन-ही-मन में सोचा—'ओः, तो मेरा अनुमान सत्य है। पर इसने इतनी जल्दी क्यों की? दस दिन रुक जाता तो इसका क्या बिगड़ता? उस समय मैं सीना ठोककर कह देता कि विवाह चतुरसिंह के साथ तय हो गया। पर इस समय इस भेद को प्रकट करना जान-बूझकर अग्नि में हाथ डालना है। बात के फैल जाने के बाद चतुरसिंह से रुपया मिलेगा या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं। अब मैं क्या करूँ? बड़ी गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी है।'

एकाएक उन्होंने अनुभव किया कि उनका कंठ सूख रहा है। सोयी हुई बुद्धि को जगाने के लिए शराब की आवश्यकता प्रतीत हुई।

अपने को संयत करने की चेष्टा में उन्होंने कुछ उत्तर न देकर

कुल्ला करना प्रारम्भ कर दिया।

ठाकुर वीरबहादुरसिंह की इस चुप्पी ने गजेन्द्र के अविचल विश्वास की नींव हिला दी। वह दुविधा में पड़ गया कि बात कैसे आगे बढ़ाऊँ ?

उसी क्षण उसकी दृष्टि द्वार पर पड़ी, जिसका एक पल्ला खुला हुआ था और बंद पट की आड़ में खड़ी कामिनी का लहराता हुआ आंचल दिखाई पड़ रहा था।

प्रेम और कामना ने उसे बोलने के लिए विवश कर दिया और वह बोला—"काका, आप जानते हैं कि मेरे पास धन-धान्य, खेती-बारी किसी चीज का अभाव नहीं है। थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा भी हूँ। स्वास्थ्य भी मेरा बुरा नहीं है। सब-कुछ होते हुए भी एक शून्यता का अभाव मुझे आपके पास खींच लाया है।"

एक क्षण वह चुप रहा, फिर अपनी धोती में ठाकुर साहब को मुँह पोंछते देख उसने उनके मनोभावों को पढ़ने की चेष्टा की। उसने अनुभव किया कि उसकी इतनी बातों ने उनके मन में कोई विस्मय या आश्चर्य नहीं उत्पन्न किया।

अब ठाकुर साहब का निर्विकार चेहरा देखकर वह मन-ही-मन झुंझला उठा। परिणाम की चिन्ता न कर उसने कह दिया—"काका, मैं कामिनी को अपने सूने घर की रानी बनाना चाहता हूँ।"

"क्या कहा ? समझते भी हो, तुम क्या बक रहे हो ? कान खोलकर सुन लो, मैं कामिनी का विवाह वहाँ करूँगा, जहाँ मेरी इच्छा होगी। वैसे अन्य लोगों के साथ-साथ मेरा ध्यान तुम्हारी ओर भी है और अब तुम्हारा विचार जान लेने के बाद तो मैं अवश्य ही इस प्रश्न पर विचार करूँगा।"

कथन के बाद चतुर राजनीतिज्ञ की भाँति वह क्षण-भर रुके और धीरे से बोला—

"काका, मेरा ही नहीं, कामिनी का भी यही विचार है।"

"अच्छा, तो तुम मुझे समझाने आये हो। शायद तुम भूल गये कि मैं

कामिनी का पिता हूँ। उसकी इच्छा मैं अधिक समझता हूँ। मुझे उसके सुख का पूरा ध्यान रखना है। वह अभी इतनी नादान है कि अपना भला-बुरा कुछ नहीं समझती। पर अबोध शिशु की भाँति दीप-शिखा या सर्प की लपलपाती जिह्वा को पकड़ने की उसकी कामना तो पूरी नहीं की जा सकती।"

"काका, बदलते हुए युग की यह मांग है कि विवाह के पहले लड़की की इच्छा जान ली जाय।"

"मैं बच्चा नहीं हूँ गजेन्द्र ! मैंने दुनिया देखी है, धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं। फिर भी मैं इस विषय में सोचूंगा।"

"काका, मैं प्राचीन विधियों को तोड़कर, अपनी मर्यादा को भूलकर आपके सम्मुख भीख माँगने आया हूँ। अगर अभी आप अपना निर्णय ...।"

"यह कोई गुड्डे-गुड़ियों का विवाह नहीं है। तुम्हें अपने अपमान का इतना ही ध्यान था तो आने के पहले सोच लेना था कि 'हाँ'-'ना' के अलावा इसका और भी कुछ उत्तर मिल सकता है।"

अपमान शब्द मात्र ने गजेन्द्र की सोयी हुई ठकुराई को झिंझोड़कर जगा दिया। उसके मस्तक पर स्वेद की बूंदें झलक उठीं, चेहरा तमतमा उठा। कानों की लव गर्म हो उठी। एक गहरी साँस ली उसने। उसका सीना फूल गया और शरीर एकदम से अकड़ उठा।

वह झट बोला—"अपने मानापमान से अधिक मुझे आपकी प्रतिष्ठा का ध्यान था और है। अन्यथा मैं भिक्षा माँगने के लिए न आता, बल्कि रीति के अनुसार बल से अपनी इच्छा पूर्ण करता।"

"इस जगह गजेन्द्र यह भूलो मत कि मैं भी राजपूत हूँ। बदलते हुए युग का उपदेश देते हो और स्वयं भूल जाते हो कि यह मध्य युग नहीं बीसवीं सदी है। तुम्हें पता होना चाहिये कि अगर ऐसा हो जाता तो मैं तुमको जन्म-भर जेल में सड़ा डालता।"

"काका, इस बहस से कोई लाभ नहीं। कामिनी वयस्क है। उसको अपना पति चुनने का अधिकार है और फिर यह तो हमारी जाति की

रीति रही है।"

ठाकुर साहब ने अनुभव किया कि वे बाजी हार गये हैं। उनको कामिनी के ऊपर स्वयं विश्वास न था। वे एकाएक कुछ उत्तर न दे सके। उन्हें स्पष्ट दीख पड़ा कि सभी तर्क गजेन्द्र के पक्ष में हैं। पंचायत भी ऐसे में उसी का पक्ष लेगी। धन, बल या जनमत किसी में भी तो वे उसका मुकाबला नहीं कर सकते।

गजेन्द्र ने अनुभव किया कि उसने अपनी विजय का झंडा शत्रु के सीने पर फहरा दिया है, ठाकुर साहब का मौन उनकी पराजय का द्योतक है।

तभी उसकी दृष्टि कामिनी पर जा पड़ी जो दरवाजे के बाहर आकर खड़ी हुई इन दोनों की बातें सुन रही थी। उसका आनन, अपनी आन पर मर मिटने वाली नारी के गौरव की आभा से देदीप्यमान हो रहा था।

तभी सहसा उसने कह दिया—"कामिनी, इधर आओ। जीवन में कभी-कभी ऐसे मोड़ आ जाते हैं जहाँ हर एक को एक निश्चय करना पड़ता है। आज वह मोड़ तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है। मैं तुमसे केवल एक, केवल एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ।"

मंद गति से चलती हुई कामिनी आकर उन दोनों के सम्मुख खड़ी हो गयी।

कामिनी को इस प्रकार निःसंकोच आकर खड़े होते देखकर ठाकुर साहब समझ गये कि वह सब-कुछ सुन रही थी, इस घटना का सामना करने के लिए वह पहले से तैयार है।

हारे हुए जुआरी की भाँति उन्होंने एक दाँव और खेला। बोले—"बेटा, बैठ जाओ। एक प्रश्न मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ। आज तुम्हारी माँ जीवित होती तो यह काम वही करतीं। मैं केवल यह जानना चाहता हूँ कि बचपन से लेकर आज तक मैंने कभी कोई ऐसा काम किया है जिससे तुम्हारे हृदय को दुःख पहुँचा हो। मैं जानना चाहता हूँ। पिता का कर्त्तव्य निभाने में मुझसे कब और कहाँ भूल हुई है। अगर तुम न

बतलाना चाहो तो न बतलाओ; परन्तु अपने पिता की मर्यादा और धर्म को चिता में झोंकने के पहले सोच-समझ लो, खूब विचार कर लो। बस इसके अतिरिक्त मुझे तुमसे कुछ नहीं कहना है।"

मौन कामिनी के नेत्रों में आंसू छलछला आये। एक तरफ पिता दूसरी ओर उसका अपना जीवन-संकल्प।

तभी गजेन्द्र बोला—"बिना किसी जोर दबाव के, बिना हिच-किचाहट के तुम मेरे प्रश्न का उत्तर देना। मैं तुम्हीं से तुमको माँगता हूँ! बोलो, क्या तुम मुझे अपने पति रूप में स्वीकार करोगी?"

अत्यन्त शांत तथा गम्भीर वाणी में उसने कहा—"जहाँ तक वचन का प्रश्न है मैं मन-प्राण से आपको पति मान चुकी हूँ। परन्तु पिताजी की इच्छा के विरुद्ध मैं विवाह नहीं कर सकती। हाँ, मैं सौगन्ध खाती हूँ कि किसी अन्य व्यक्ति के साथ मेरा नहीं मेरे शव का विवाह होगा। मैं अन्तिम क्षण तक प्रतीक्षा करूँगी और वेदी पर बैठने की अपेक्षा कटार को अपने हृदय में बैठा दूँगी।"

गजेन्द्र को ऐसा लगा मानो वह जीती हुई बाजी हार गया, परन्तु कामिनी की सौगन्ध उसके सिसकते हुए घाव के लिए मरहम थी।

ठाकुर साहब हतप्रभ हो उठे। कामिनी का उत्तर उनके आशा के विपरीत न था, किन्तु उसकी सौगन्ध ने उनको तत्काल कुछ उपाय सोचने पर विवश कर दिया। वे जानते थे कि कामिनी सिर्फ कहकर ही नहीं रह जायगी, वह सचमुच आत्महत्या कर लेगी।

अतः उन्होंने कहा—"इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी न करूँगा। तुम दोनों जब तैयार हो तो मुझे क्या ऐतराज हो सकता है? दुःख केवल इस बात का है कि तुम लोगों ने मेरा विश्वास नहीं किया। खैर जाओ, विवाह की तैयारी करो। पहले ही शुभ-महूर्त में मैं इस भार से मुक्त हो जाऊँगा।"

कथन के साथ ही वह उठ खड़े हुए और बिना कुछ कहे-सुने एक तरफ बढ़ गये।

निःश्वास के साथ गजेन्द्र बोला—"कामिनी, मुझे आशा थी कि काका इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लेंगे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अपनी इच्छा के विरुद्ध स्वीकृति दी है।"

कामिनी ने निर्विकार भाव से उत्तर दिया—"अन्य कोई उपाय भी तो न था। पिताजी स्वयं ही दो-चार दिन में इस घटना को भूल जायेंगे। मैं उनके स्वभाव को जानती हूँ।"

गजेन्द्र उठकर खड़ा हो गया और बोला—"अच्छा अब मैं चलता हूँ। शाम को भेंट होगी।"

"नहीं!" अब हम लोगों का इस भाँति मिलना उचित नहीं। कल रात की घटना की पुनरावृत्ति अच्छी नहीं। धैर्य धरो। अब तो थोड़े दिन की बात है।"

"अच्छी बात है। परन्तु एक शर्त तुम्हें स्वीकार करनी पड़ेगी।"

"बोलो, मुझे स्वीकार है।"

"प्रति दिन कम-से-कम एक बार दर्शन हुए बिना मेरा यह मन-प्राण मानेगा ?"

"हटो भी, तुम तो अभी से अधिकार जमाने लगे।"

"तो क्या मेरा तुम पर अधिकार नही है ?"

"है! मैं प्रतिदिन सूर्योदय के साथ छत पर खड़ी-खड़ी तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। तुम सामने वाले पीपल के नीचे आ जाया करना।"

गजेन्द्र ने पहले तो उसका हाथ पकड़ लिया। फिर कुछ सोचकर तुरन्त बोला—"अच्छा, मैं गजाधर पण्डित के घर चलता हूँ।"

"अभी ?"

"शुभ कार्य में देर नहीं करनी चाहिये।"

दोनों हँस पड़े।

कुछ क्षण पश्चात् जब गजेन्द्र मोड़ पर जा रहा था तो कामिनी ने झुककर जहाँ वह खड़ा था, वहाँ की धूल लेकर मस्तक पर लगा ली। इसके पश्चात् वह भीतर चली गयी।

४

ठाकुर वीरबहादुरसिंह को गजेन्द्र के ऊपर उतना क्रोध नहीं आ रहा था जितना कामिनी के ऊपर। उनके मस्तिष्क में रह-रहकर दस हज़ार रुपयों के नोट उड़ रहे थे। रुपयों का लोभ उनको चैन न लेने दे रहा था। वे कचहरी के दाँव-पेच सोच रहे थे। मुकदमे की बात होती तो सर्वोच्च न्यायालय का द्वार खटखटा सकते थे। परन्तु इस अदालत का निर्णय अन्तिम निर्णय था। इसकी अपील कहाँ और कैसे की जाय यह उनकी समझ में न आ रहा था।

आज गजेन्द्र का एक-एक शब्द प्रायः उनके कानों में गूँज जाता और उनके घावों पर जमी हुई पपड़ी को कुरेद कर उसे हरा कर देता।

अनजाने ही उनके क़दम गाँव की सीमा पर बहती हुई छोटी-सी नदी के किनारे पहुँच गये। स्फटिक शिला पर वे चुपचाप बैठ गये और प्राकृतिक सौन्दर्य में नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करने लगे। समस्त दुःख-दर्द कुछ क्षणों के लिए उनका साथ छोड़ गया।

विस्मृति का परदा हट गया और उनको अपनी बाल्यावस्था का स्मरण हो आया। जब वे छोटे से थे और स्कूल जाने के बहाने इसी स्थल पर आकर दिन भर पेड़ों की छाँव में खेला करते थे। फिर वह दिन भी याद आया जब उनकी भेंट राजरानी से हुई थी। वह अपने परिवार की अन्य महिलाओं के साथ स्नान करने आयी थी और अचानक

पैर फिसल जाने के कारण डूबने लगी थी, तो उन्होंने ही प्राणों का मोह त्याग कर बरसात की उफ़नती धारा के बीच तैर कर उसे निकाल लिया था।

उस दिन का मिलन धीरे-धीरे प्रेम में परिणत हो गया और एक दिन वे दोनों प्रणयसूत्र में बँध गये।

प्रेम की लीला वे जानते थे। जीवन-सौख्य की दृष्टि से उसके महत्व को भी पहचानते थे। वे सोचते थे—चतुरसिंह से सौदा होने के पहले अगर गजेन्द्र ने यह प्रस्ताव रक्खा होता तो वे सहर्ष स्वीकार कर लेते। परन्तु धनाभाव की दशा में आयी हुई लक्ष्मी का हाथ से यों निकलना उन्हें फूटी आँखों न सुहा रहा था। उनकी दशा उस बहेलिये की-सी थी जो कई दिन का भूखा-प्यासा शिकार के लिये भटक रहा हो और पक्षी जाल में आकर फँस तो जाय, किन्तु फिर पकड़ने के पहले ही जाल काट कर उड़ जाय। पक्षी भी उड़ जाय और पकड़ने का साधन जाल भी नष्ट हो जाय।

धन की लालसा ने उनके विचारों में विष घोल दिया। तीखी कड़ुवाहट से उनका मुँह भर गया और अन्तःकरण पीड़ा से कराह उठा।

अचानक उन्हें गजेन्द्र का वाक्य स्मरण हो आया—'···रीति के अनुसार बल से अपनी इच्छा पूर्ण करना।'

नदी किनारे का प्रदेश अट्टहास से गूँज उठा। प्रातःकालीन चिड़ियों के चहचहाने का स्वर उसी अट्टहास में समा गया। अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके हृदय पर रक्खी हुई चट्टान हट गयी है। उत्फुल्ल मन से उठकर वे चतुरसिंह की बैठक की ओर चल दिये।

रात्रि में अधिक देर तक बैठक जमने के कारण चतुरसिंह देर से सोया था। ठाकुर वीरबहादुर जब उसके घर पहुँचे उस समय वह सो रहा था। द्वार पर बैलों को सानी दे रहे मजदूर से उन्होंने अपने आगमन की सूचना अन्दर भिजवायी तो चतुरसिंह तुरन्त ही आँख मींजता हुआ बाहर आ गया।

ठाकुर साहब का इस समय का आगमन उस काम कीजिये और
का विषय न था। उसने कौतूहल भरे स्वर में प्रश्न कि ाय मेरे हाथ
है काका इतने सवेरे ?"

ठाकुर साहब ने प्रातःकाल की घटना उसे सुना दी, तो उसे ल. "
गजेन्द्र ने पुनः उस पर वज्रप्रहार कर उसके पौरुष को ललकारा है। चोट का दर्द उसके मुख पर अंकित हो गया।

उसने शंकित मन-म्लान मुख से प्रश्न किया—"मेरे लिये क्या आज्ञा है काका ?"

ठाकुर साहब ने झुक कर उसके कान में कुछ फुसफुसा दिया। दोनों हँस पड़े। ठाकुर साहब ने कहा—"इसका किंचित आभासमात्र भी किसी को न होने पाये।"

"तुम निश्चिन्त रहो काका; पहले तो क्या, बाद में भी किसी को इसका गुमान न होगा।"

कुछ देर और दोनों मन्द स्वर में फुसफुसाते रहे। उसके बाद ठाकुर साहब उठकर अपनी योजना को मूर्त्तमान स्वरूप देने के हेतु गजाधर पण्डित के घर की ओर चल दिये।

गजेन्द्र ने बिना कुछ कहे एक दिन ठाकुर साहब के यहाँ विवाह के उपयोग में आने वाली समस्त वस्तुओं के साथ पर्याप्त अनाज भेज दिया, तो उनको एक क्षण के लिये ऐसा प्रतीत हुआ कि वे जाकर चतुर्सिंह को रुपयों का प्रबन्ध करने के लिये मना कर दें। परन्तु लोभ ने उन्हें ऐसा न करने दिया।

विवाह का दिन पास आता जा रहा था और गजेन्द्र के द्वारा भेजे हुए आदमियों ने ठाकुर साहब के यहाँ समस्त तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दी थीं।

ठाकुर साहब की संध्या पूर्ववत् चतुरसिंह के यहाँ व्यतीत होती रहीं। वे उसी प्रकार डगमगाते क़दमों से लौटते और चुपचाप सो जाते। कामिनी से उन्होंने बात करना लगभग बन्द-सा कर दिया था। अत्यन्त आवश्यक होने पर एकाध शब्द बोलते और उसके कुछ कहने पर हाँ-हूँ करके टाल जाते।

धीरे-धीरे दस दिन बीत चले। दसवें दिन ठाकुर साहब सवेरे ही चतुरसिंह के यहाँ उपस्थित हो गये।

चतुरसिंह के बाहर आते ही वह बोले—"चतुर बेटा, आज दसवाँ दिन है। मैं तुमको तुम्हारा वादा याद दिलाने आया हूँ।"

चतुरसिंह ने झट उत्तर दिया—"काका, परिस्थिति बदल गयी है। आपने अपने वादे में संशोधन कर लिया। उस दशा में मेरे पक्ष में भी संशोधन स्वाभाविक है।"

"मैं कुछ समझा नहीं।"

"इसमें आपका कुछ दोष नहीं। आप अपना स्वार्थ देखते हैं मेरा ध्यान नहीं करते। आप ही क्यों आपके स्थान पर प्रत्येक व्यक्ति यही करता है।"

"मैंने क्या किया? मैं अपना वादा निभाने को तैयार हूँ। तुम्हारी इच्छा तो पूर्ण हो जायगी, किसी भी ढंग से हो?"

"जहाँ तक किसी भी ढंग का प्रश्न है वहाँ मैं स्वयं भी अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकता हूँ। उस प्रकार अगर मुझे करना होता तो मैं आपकी शर्त क्यों मानता?"

"परन्तु इस अवस्था में भी तुम्हें मेरा सहयोग प्राप्त रहेगा।"

"इसी कारण मैं भी अपना वादा पूरा करने के लिए तैयार हूँ परन्तु एक संशोधन के साथ। आज मैं आपको रुपया दे देता और आगामी पंचमी को गजेन्द्र के स्थान पर मैं दूल्हा बनकर कामिनी को ब्याहने आता। आज सबको मालूम हो जाता कि हमारा सम्बन्ध स्थिर हो गया है।"

"मैं तुमसे कह चुका हूँ कि यह सब खिलवाड़ और दिखावा मात्र है।

विवाह तुम्हीं से होगा।"

"काका, वहस से कोई लाभ नहीं। आप अपना काम कीजिये और मुझे अपना करने दीजिये। जिस समय आप कामिनी का हाथ मेरे हाथ में देंगे, उस समय थैली आपके हाथ में होगी।"

"स्पष्ट क्यों नहीं कहते चतुर कि तुमको मुझ पर विश्वास नहीं है।"

"मैं इस विषय में आपका ही अनुकरण कर रहा हूँ। आप रुपया लिये वगैर सम्बन्ध स्थिर नहीं कर रहे थे; क्योंकि आपको मेरे ऊपर विश्वास न था। कल ही अन्तिम क्षण में यदि आपका विचार बदल जाय, या गजेन्द्र आपकी योजना को विफल कर दे तो? ...उस दशा में मेरा रुपया खटाई में न पड़ जायगा! मैं व्यापारी हूँ। खरे सौदे पर विश्वास करता हूँ। सटोरिया नहीं, जो भविष्य की कल्पना-मात्र पर सब कुछ दाँव पर लगा देता है।

ठाकुर साहब एक क्षण चुपचाप खड़े रहे। उन्होंने कोई उत्तर न दिया। उनकी मुद्रा से स्पष्ट झलकता था कि वे कुछ सोच रहे हैं।

चतुर को मनोविज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान था और यही उसकी सफलता का रहस्य था। इसी के सहारे वह राजनीति में प्रवेश कर अपनी धाक जमा रहा था। ठाकुर साहब को कुछ उत्तर न देते देख कर वह तुरन्त भाँप गया कि दाल में कुछ काला अवश्य है।

वह झट बोला—"काका, आपकी योजना में मैंने थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है। आप जानते हैं कि गजेन्द्र से लोहा लेना आसान नहीं है। इसलिये मैं सब कुछ बेच कर किसी अन्य शहर में बसने की सोच रहा हूँ। रुपया आपको मिल जायगा और हम दोनों जब गाँव छोड़ कर अन्यत्र चले जायेंगे तो कभी न लौटेंगे। आप भी कुछ दिनों के पश्चात् हमारे पास आकर रहने लगियेगा। यहाँ रहने पर हर समय गजेन्द्र का भय रहेगा। दूसरे किसी शहर में उसका कुछ जोर न चलेगा।"

"ठीक है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु यह जरूर याद रखना कि रुपया न मिलने पर सारी योजना उसी प्रकार विफल हो जायगी, जिस

प्रकार किसी शक्तिशाली मशीन का एक छोटा-सा पेंच निकाल लेने मात्र में वह ठप हो जाती है।"

कथन के साथ ही वह मुड़ कर चल दिये।

जैसे कुछ हुआ ही न हो चतुरसिंह ने सहज भाव से कहा—"तम्बाकू तो खाते जाओ काका। और हाँ, शाम को ज़रा जल्दी आ जाना, एक बढ़िया बोतल मंगाई है।"

ठाकुर साहब के बढ़ते हुए क़दम रुक गये और वे पुनः लौट पड़े। चतुरसिंह के हाथ से बटुआ लेकर उसे खोला और तम्बाकू और चूना मिलाकर हथेली पर रगड़ने लगे। बरसों के अभ्यास से सधे हुए हाथ तीव्र गति से चल रहे थे। हथेली पर जमी हुई दृष्टि उठाकर उन्होंने चतुरसिंह की ओर देखा, जो मन्द-मन्द मुसकरा रहा था।

एक क्षण वे चुप रहे फिर बोले—"शहर से अंग्रेजी मँगाई है।"

"हाँ और कलुआ को मछली पकड़ लाने के लिये सुबह ही कह दिया था। अब तक वह जाल लेकर तालाब पर पहुँच भी गया होगा। बस आप ज़रा ठीक समय पर पहुँच जाइयेगा अन्यथा ठंडी मछली मजा न देगी।"

"अरे मेरा क्या ? कहो तो अभी से बैठ जाऊँ।"

दोनों ठहाका मार कर हँस पड़े। थोड़ी देर बाद ठाकुर साहब जब वापस जा रहे थे, तब उनकी आँखों के आगे अंग्रेजी शराब की बोतल नाच रही थी। बिना पिये उनको सैकड़ों बोतल का नशा चढ़ गया था।

नित्य की भाँति आज निश्चित समय और पूर्व निर्धारित स्थल पर जब गजेन्द्र पहुँचा, कामिनी अपनी छत पर उसे न दिखाई दी। उसे आश्चर्य हुआ, फिर उसने सोचा कि सम्भव है वह जल्दी आ गया हो, या वही किसी कार्य में फँस गयी हो। बार-बार वह कलाई में बँधी सुनहरी

घड़ी की ओर देखता और पुनः छत की ओर देखने लगता। टिक-टिक करती हुई सेकेन्ड की सुई अपने परों पर समय को उड़ाती चली जा रही थी और प्रत्येक टिक-टिक के साथ उसकी व्याकुलता बढ़ती जा रही थी।

गजेन्द्र सोचता था—जिसमें अब तक कोई व्यवधान न पड़ा उसमें यह व्यतिक्रम कैसा ? उसकी समझ में कोई कारण न आता था।

खड़े-खड़े प्रातः साढ़े छै बजे से घड़ी की दोनों सुई बारह पर आकर एक-दूसरे में समा कर एक हो गयीं।

उसका सर चकराने लगा। उसे लगा कि इस चमकती धूप में काली आँधी की गर्द-गुबार समस्त आकाश पर आच्छादित हो गयी है।

विवाह में केवल दो दिन बाकी थे। परन्तु उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह एक भयंकर झंझावत में फँस गया है। नाविक के भरोसे नाव को उसने मझधार में छोड़ दिया और वह तूफ़ान में साथ छोड़कर चला गया है।

लौटने के लिये प्रथम पग उठाते ही उसका मन काँप उठा। एक विचार उसके मस्तिष्क में उठा और तीर-सा हृदय में बिंध गया—'क्या मुझे कामिनी के दर्शन से भी वंचित होना पड़ेगा ? कहीं जीवन दुःख की भँवर में डूब न जाय ! उफ़्...।'

बोझिल हृदय लिये थके-हारे जुआरी की भाँति गजेन्द्र घर आकर अपने पलँग पर पड़ रहा। शंकालु हृदय मानव प्रियजन के अनिष्ट की कल्पना मात्र से अपना शान्ति-सौख्य खो बैठता है।

थोड़ी देर में बूढ़े रमेसर काका ने आकर भोजन के लिये पूछा तो उसने भूख न लगने का बहाना कर के टाल दिया।

रमेसर का नाम रामेश्वर था। उसने गजेन्द्र को तब से पाला था जब उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया था। तब उसकी आयु लगभग एक वर्ष की थी। गजेन्द्र ने जब तुतला कर उसे रामेश्वर की जगह रमेसर पुकारा था, उसी दिन से उसका नाम रमेसर हो गया था और अब स्थिति यह थी कि किसी को उसके नाम का शुद्ध रूप याद भी न था। गजेन्द्र

का रमेसर काका गाँव भर का रमेसर काका बन गया था।

रमेसर ने गजेन्द्र के मोह में पड़कर विवाह नहीं किया था और आज भी उस के सर का हलका-सा दर्द उसको व्याकुल कर देने के लिये पर्याप्त था। उसे इस प्रकार अन्यमनस्क लेटा देख उसका मन बेचैन हो उठा। वह गजेन्द्र पर अपना विशेष अधिकार समझता था। यही नहीं उसका मान और पद सचमुच ही परिवार के वरिष्ठतम सदस्य की भाँति था। गजेन्द्र की उपेक्षा तो एक बार सम्भव थी, परन्तु उसकी उपेक्षा करना किसी के बस की बात न थी।

जिस रमेसर का इस घर में एक छत्र राज्य था उसी को आज जब गजेन्द्र ने कह दिया कि तंग न करो तो उसे बड़ा दुःख हुआ। आत्मीयता की झलक के स्थान पर उपेक्षा और परायेपन की दुर्गन्ध ने उसके हृदय को बड़ा आघात पहुँचाया। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये।

चुपचाप कन्धे पर टँगे हुए लाल चारखाने वाले अँगौछे से आँसू पोंछता हुआ वह अपनी कोठरी में जा कर अपनी बाँस की ढीली चारपाई पर बैठ गया। गजेन्द्र का व्यवहार उसकी समझ में किसी भावी आशंका का द्योतक था।

विवाह की तैयारियाँ यहाँ पर भी पूरी तेज़ी से की जा रहीं थी। गजेन्द्र की बुआ व अन्य नाते-रिश्तेदार आ चुके थे। उस भीड़-भाड़ के अन्दर गजेन्द्र की अनुपस्थिति की ओर सहसा किसी का ध्यान न गया।

रिश्तेदारों में उसके समवयस्क मौसेरे भाई कुँवरसिंह की पत्नी शोभा और उसकी छोटी बहन सुखदा भी आयी थी। शोभा और गजेन्द्र में आत्मीयता सगे देवर-भाभी से कहीं अधिक थी। विवाह के समय ही जब शोभा ने उसे देखा था, उसी समय उसने तय कर लिया था कि अपनी बहन सुखदा का विवाह वह गजेन्द्र से ही करेगी। सुखदा को उसने अपने यहाँ इसी हेतु अपने मायके से बुलवाया भी था। उसका विचार था कि गजेन्द्र को पहले उसे दिखला दिया जाय, फिर चर्चा चलाई जाय। परन्तु उसकी चाह पूरी न हो सकी और इसके पहले कि गजेन्द्र को अपने यहाँ

भुला सके, उसे गजेन्द्र के विवाह का निमंत्रण मिल गया। मन की चाह को मन में ही दबाकर वह सुखदा को लेकर हरिपुर आ गयी।

विवाह के सम्बन्ध में सुखदा के अपने विचार थे। वह कानपुर में बी० ए० में पढ़ती थी और वहाँ के वातावरण में घुल-मिलकर उसमें आधुनिकता की खुशबू आ गयी थी। वह विवाह को एक बन्धन मात्र मानती थी। पढ़-लिख कर नौकरी करके नारी को अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिये—इस विचार को वह सदैव अपनी सखी-सहेलियों में ही नहीं कालेज व घर में भी प्रतिपादित करती थी।

परन्तु अपनी बहन शोभा के साथ हरिपुर आते ही उसके विचारों को एक नयी दिशा मिली। गजेन्द्र को देखते ही प्रथम दृष्टि में ही उसे ऐसा लगा कि यही व्यक्ति उसके विचारों के अनुरूप आदर्श पति है। पुरुषोचित-सौन्दर्य, सुन्दर स्वास्थ्य एवं आकर्षक मुखाकृति के साथ उच्च शिक्षा और प्रभावशाली व्यक्तित्व। एक स्थल पर सभी गुण मुश्किल से मिलते हैं। फिर धन उसकी अतिरिक्त योग्यता थी। स्वभाव की सिधाई और सच्चाई उसमें चार चाँद लगा रही थी।

यह ज्ञात होने पर कि उसी के विवाह-समारोह में सम्मिलित होने के लिये वह दीदी और जीजा के साथ यहाँ आई है, उसका हृदय एक अज्ञात पीड़ा से भर उठा। मन-ही-मन वह कामिनी के प्रति ईर्ष्या से भर उठी। अपने मनोभाव को वह बड़ी ही कठिनाई से अपने अन्तर में दबा पायी। गजेन्द्र के साहचर्य के लिये वह उत्कंठित हो उठी, परन्तु वह चाहती यही थी कि किसी को उसकी मनोदशा की रंचमात्र भी खबर न हो। हर समय वह उसी के ध्यान में खोई रहती और चाहती थी कि वह उसके सम्मुख बैठा रहे और वह उसे निहारा करे।

उसे यहाँ आये चार दिन हुए थे। गजेन्द्र के आगे-पीछे फिरते रहने से उसे गजेन्द्र का सुबह से बारह बजे तक घर से गायब रहने की बात मालूम थी। उसे उसके वापस लौट आने का भी ज्ञान था। यह सोच कर कि वह भोजन करने के लिये अवश्य ही आयेगा सुखदा रसोई-घर के आस

पास चक्कर काटने लगी। परन्तु जब काफी देर हो गयी और गजेन्द्र न आया तो उसने सोचा कि चल कर देखना चाहिये। क्या कारण है जो वह खाने नहीं आया और रमेसर भी नहीं आया। वह उसके कमरे की ओर चल दी।

अभी वह आँगन पार कर ही रही थी कि उसकी दृष्टि रमेसर पर पड़ी जो चुपचाप अपनी कोठरी में खाट पर बैठा हुआ था। उसके उदास मुख को देखते ही वह समझ गयी कि कुछ दाल में काला अवश्य है। आगे लटकती हुई चोटी को पीठ के ऊपर फेंकती हुई वह रमेशर के कमरे की ओर बढ़ गयी।

द्वार पर ही चौखट के सहारे टिक कर वह बोली—"काका, बड़े उदास गुमसुम बैठे हो। क्या बात है?"

रमेसर उसकी ममतामयी वाणी सुनकर अपना धैर्य खो बैठा। उसकी आँखें छलछला आयीं। अपनी आँख पर अँगोछा लगाकर रुंधे कंठ से वह बोला—"कोई खास बात नहीं है बिटिया। बस यों ही बैठे-बैठे कुछ उदास हो गया।"

"कुछ बात तो है काका, वर्ना तुम्हारी आँख में आँसू न आते।"

"आँसू नहीं बेटा, वह तो एक तिनके के करकराहट का प्रभाव था। मुझे किस बात का दु:ख जो मैं रोऊँ। फिर काम-काज के भरे घर में भी कोई रोता है। अपने गज्जू भैया का ब्याह है। कितनी चाह से मैं इस दिन की बाट जोह रहा था।"

"तुम दूसरों की आँख में धूल झोंक सकते हो काका; लेकिन मुझे फुसला नहीं सकते। कहाँ हैं तुम्हारे गज्जू भैया?"

"अपने कमरे में है। अभी कहीं से आये हैं। थके हैं। खाना नहीं खायेंगे।"

"तो यह बात है। मैं समझ गयी। तुम्हारे गज्जू भैया, खाना नहीं खायेंगे। इसी बात पर तुम उदास हो गये। अरे वाह काका, थाली परोस कर ले जाती हूँ, देखना कैसे नहीं खाते।"

"ज़रूर ले जाओ बिटिया, शायद तुम्हारे संकोच में खा लें।"

"तुम भी तो चलो। पानी कौन ले जायगा!"

रमेसर झट् उठ खड़ा हुआ और बोला—"चलो।"

और दोनों रसोई घर की तरफ़ जाने के लिए आँगन पार करने लगे।

गजेन्द्र का मकान बहुत पुराना न था। उसके पिता ने अपने विवाह के बाद अपनी पत्नी के लिए इसका निर्माण विशेष रूप से कराया था। गजेन्द्र का जन्म इसी नये मकान में हुआ था।

गाँव में यही एक तिमंजिला मकान था। तीसरी मंज़िल पर बने हुए दो कमरे गजेन्द्र के अपने निजी व्यवहार में आते थे। एक उसका शयन-कक्ष था और दूसरा पुस्तकालय एवं अध्ययन-कक्ष। दूसरी मंज़िल पर बना ड्राइंग रूम ही यदा-कदा किसी के आने पर खुलता था, अन्यथा सभी कमरे बन्द पड़े रहते थे।

नीचे की मंजिल में द्वार पर ही सहन के बाहर एक नीम का पेड़ था और दूसरा पीपल का पेड़ ठीक कुएँ की जगत् के ऊपर था। सहन के बाद पश्चिम की ओर का कमरा कचहरी के काम में आता था और इसी के बगल से भीतर रास्ता जाता था जो एक बड़े आँगन में खुलता था। आँगन में पीछे की ओर रसोईघर था और एक तरफ़ अनाज रखने के कमरे और दूसरी ओर भूसा आदि रखने के लिये। इसी ओर रमेसर का कमरा भी था। इसके बाद जो हिस्सा पड़ता था उसमें एक ओर जानवरों के रहने का प्रबन्ध था और दूसरी ओर नौकरों का। रास्ता उसका पीछे मैदान की ओर से भी था।

गजेन्द्र ने जब से सुधि सम्हाली थी, तब से तीसरी मंज़िल पर सिवा उसके रमेसर काका के अन्य कोई न गया था। इस कारण आज जब सीढ़ियों पर चूड़ियों की खनक के साथ किसी के चढ़ने की आवाज़ उसके

कानों में पड़ी, तो वह चकित हो गया। इसके पहले कि वह इस शब्द के रहस्य को जानने की चेष्टा करता; उसके शयन-कक्ष के द्वार पर सुखदा हाथ में भोजन का थाल लिये खड़ी हुई थी।

उस पर दृष्टि पड़ते ही वह अचकचा कर उठ बैठा और अपनी अस्त-व्यस्त मनोदशा ढकने की चेष्टा करने लगा।

पुराने ढंग का नक्काशीदार शीशम का पलँग, जिसके विशाल पाये पीतल की सुनहरी पच्चीकारी से सुशोभित थे और दो फुट ऊँची जाली का सिरहाना और पायताना था, कमरे की पच्छिमी दीवार के सहारे बिछा हुआ था। चारों ओर दरवाज़े और खिड़कियाँ थीं, जिससे वायु और प्रकाश आने का समुचित प्रबन्ध था। दीवार पर चारों ओर देवी-देवताओं के बड़े-बड़े चित्र शीशे के फ्रेमों में मढ़े हुए टँगे थे। उन्हीं के बीच में राष्ट्रपिता बापू और उनके दाहिने-बायें नेहरूजी तथा शास्त्रीजी के भव्य दर्शन प्राप्त होते थे। इन चित्रों के सबसे ऊपर भारत माता का एक तैल चित्र था।

कमरे में सजावट के अन्य उपकरण भी थे जो अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाये हुए थे। पूर्व की ओर बने हुए मेन्टलपीस के ऊपर पीतल का एक सिंहासन रक्खा हुआ था, जिसमें गजेन्द्र की कुल-देवी अष्टभुजा दुर्गा अपने वाहन सिंह पर विराजमान थीं।

एक ही दृष्टि में सुखदा ने सम्पूर्ण वातावरण का अध्ययन कर लिया और उसका मन गजेन्द्र की परिष्कृत सुरुचि की ओर श्रद्धा से भर गया।

आश्चर्य पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करने में गजेन्द्र अपने मनोभाव न छिपा सका और उसके मुँह से निकल गया—"ओः आप!"

सुखदा के अधरों पर मंद मुस्कान थिरक उठी। रक्ताभ श्वेत गालों पर अमृत कूप बन गये। आँखें शरारत से चमक उठीं। वह एक विचित्र आह्लादभरी वाणी में, जो गजेन्द्र के लिए सर्वथा नवीन थी, बोली—"जी हाँ मैं।"

कथन के साथ ही उसने एक कदम आगे बढ़ाया और एक अनोखी

चेष्टा, जिसमें शरारत एवं ममता का अद्भुत समन्वय था, दर्शाती हुई मुक्ता जैसी श्वेत दन्तावलि झलका कर वह बोली—"बड़ी निराशा हुई क्या ? शायद किसी और की प्रतीक्षा थी।"

गजेन्द्र उसकी मोहक भंगिमा एवं स्वर के सहज कम्पन से विचलित हो उठा। सारा वातावरण उसके आगमन से मादक हो गया। एक-एक कण प्राणमय होकर उसके स्वागत में अपने पलक-पाँवड़े बिछाये हुए है।

आज प्रथम बार एक अव्यक्त पीड़ा उसके हृदय में जागृत हो उठी। एक बार सोचा—कामिनी का स्थान अगर इस सुखदा को प्राप्त होता तो अवश्य ही जीवन अधिक सुखमय, अधिक रसमय और प्रेरणादायक होता। जिसके दर्शनमात्र से हृदय की धधकती हुई अग्नि शीतल हो जाती है, वह वास्तव में मानवी न होकर देवी है।

यों कामिनी एवं इसमें अधिक समानता है; परन्तु अन्तर भी उतना ही अधिक है। कामिनी का ध्यान आते ही उसको प्राप्त करने की इच्छा होती है और इस को पूजने की। कामिनी का सौन्दर्य सुषुप्त वासना को कोड़े मार-मार कर जागृत करता है पर इसका मादक सौन्दर्य स्वर्गीय सुख-शांति का निमन्त्रण देता है।

फिर उसके मन में विचार उठा कभी-कभी मैं स्वप्न देखता था कि एक दिवस ऐसा भी आएगा जब कामिनी इस भाँति भोजन का थाल लिए प्रवेश करेगी।

परन्तु स्वप्न साकार हुआ सुखदा द्वारा।

इठलाती हुई सुखदा जब कमरे के मध्य तक आ पहुँची, तो अचानक उसके विचारों में एक झटका सा लगा। वह सचेत हो गया और तन्द्रा त्यागकर झट कूद कर खड़ा हो गया और सुखदा के प्रश्न के उत्तर में वह बोला—"आपने क्यों कष्ट किया ?"

मुसकान की एक चपला-सी कौंध गयी और विहँसती हुई नागिन-सी लहराती हुई वह बोली—"कष्ट ही किया है; अपराध नहीं।"

गजेन्द्र को उससे इस उत्तर की आशा न थी। नारी के इस मार्मिक

स्वरूप को उसने न देखा था। उसे प्रतीत हुआ कि सुखदा ने शिला-खण्ड पर उत्कीर्ण संदेश की भाँति उसके मानस की अँधेरी गह्वर घाटी में छिपे हुए मनोभाव पढ़ लिये हैं और उसका यह उत्तर शब्द मात्र न होकर मानो उसके कलुषित मुँह पर एक तमाचे के समान हैं।

इस मार्मिक आघात से वह तिलमिला उठा। वह बोला—"नहीं-नहीं, मेरा आशय तो यह था कि भूख लगने पर मैं स्वयं खाना खाने आ जाता या मंगवा लेता।"

"जी हाँ, यह मैं भी जानती हूँ, पर आपने इस बात का भी विचार किया है कि आपके इस प्रकार न खाने से किसी अन्य व्यक्ति को कितना दुःख पहुँच सकता है।"

विस्मय भरे शब्द में वह बोला—"आ···प।"

"जी, अपने मन में किसी ग़लतफ़हमी को स्थान न दे बैठियेगा। आपके न खाने से रमेसर काका को कितना दुःख हुआ इसका अनुमान भी आप कदाचित् नहीं लगा सकते। मुझे उनकी उदासी सहन न हो सकी और मैं उनके विषाद को दूर करने की औषधि लेकर उपस्थित होने की धृष्टता कर बैठी।"

गजेन्द्र को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह आज जीवन में प्रथम बार ऐसे मोड़ में अचानक आ खड़ा हुआ है जहाँ उसके प्रतिद्वन्दी ने उसे पराजित ही नहीं, निरुत्तर भी कर दिया है। वह इस ठगिनी के जाल से बचकर नहीं निकल सकता। फलतः निरंकुश गजेन्द्र ने पराजय स्वीकार करने में भलाई समझी।

पराजय का भी अपना एक निजी वैभव होता है, सुख होता है और किसी-किसी प्रतिद्वन्दी से पराजित होने में विजय-श्री के गौरव की अनुभूति होती है। उस क्षण वही सुख, वही अनुभूति उसके विषाक्त हृदय को धो कर आह्लादित अमृत से परिप्लावित कर गयी। एक उत्तेजनापूर्ण उल्लास से उसका मन-प्राण पुलकित हो उठा और सम्पूर्ण शरीर में एक सिहरन-सी व्याप्त हो गयी।

वह बोला—"ओः तो आप रमेसर काका के दुःख को दूर करने के लिए आयी हैं। मैं तो समझा था कि आप मेरे दुःख से द्रवित होकर कृपा की वर्षा करने पधारी हैं।"

"दो दिन और धैर्य रखिए। आपके प्रतीक्षा संकुल दुःख से द्रवित होकर आने वाली देवी पधारने की तैयारी में व्यस्त हैं। आज""इस अकिंचन का ही पूजा-अर्घ्य स्वीकार करने की कृपा करें।"

गजेन्द्र खिलखिलाकर हंस पड़ा और बोला—"मैं चकित हूँ कि साक्षात कविता यहाँ कैसे आ गयी।"

"कविता से पेट नहीं भरता कवि महाराज! भोजन प्राप्त कीजिये।"

खिलखिलाहट की आवाज को लाइन क्लीयर का सिगनल समझकर द्वार के बाहर छिपा हुआ रमेसर स्वच्छ जल से भरा हुआ लोटा और गिलास लिये अन्दर आ गया और साइड टेबुल पर रखता हुआ बोला—"यहीं रख दो बिटिया! गज्जू भैया अभी आ लेंगे।

गजेन्द्र बिना कुछ कहे-सुने कुर्सी पर बैठ गया और सामने रखे हुए थाल को अपने समीप खींचकर खाना आरम्भ कर दिया।

सुनन्दा कुर्सी खिसका कर उसके समीप बैठ गयी और हर्षित रमेसर दौड़-दौड़ कर भोजन कराने में जुट गया।

५

प्रातः सूर्योदय के साथ-साथ शहनाई का स्वर गांव के सोते हुए वातावरण को गुंजित कर उठा। सोते हुए छोटे-छोटे बालक बिस्तर त्यागकर हर दिशा से आ-आकर सीधे स्वर के सहारे गजेन्द्र के सिंहद्वार पर रोशन चौकी वालों के समीप इकट्ठा हो गये। सभी प्रसन्न थे। हर एक का मन उत्साह से परिपूर्ण था। अविवाहित युवतियां भविष्य की सुखद कल्पना लेकर, नव-विवाहित प्रमदाएँ निकट अतीत की मादक सिहरन को स्मरण कर और बड़े-बूढ़े सुदूर धुंधले अतीत में छिपे अविस्मरणीय जीवन सौख्य की सुधियों में मन्द-मन्द मुसकराते निमंत्रण में सम्मिलित होने की खुशी में जल्दी-जल्दी अपना काम निपटाने में लग गये।

सूर्यास्त के बाद गजेन्द्र की बारात कामिनी के घर की ओर जिस समय चली उस समय बैण्ड-बाजों के शोर-शराबे से कान के परदे फटने लगे। गैस के हंडों की रोशनी ने रात्रि को दिनके आलोक में परिणत कर दिया। सब से आगे शहनाई वादक थे, उनके पीछे आतिशबाज़, फिर ढोल-ताशे वालों का दल। उसके बाद सजे हुए घोड़ों की क़तार; फिर आया रंगीन मखमली वर्दी पहने बैण्ड-बाजे वालों का नम्बर। गंगा-जमुनी हौदे, मखमली झूलें अपने-अपने स्वामियों के वैभव को प्रदर्शित करते हुए हाथियों का समूह और इन्हीं के बाद था शहर से बुलवाया

हुआ पुलिस-बैण्ड।

बरातियों की संख्या निश्चित करना कठिन था। नाते-रिश्तेदार, जान-पहचान वालों के अतिरिक्त बारह गाँव सुपारी फेरी गयी थी। गजेन्द्र ने निमंत्रण देने में किसी प्रकार की कंजूसी नहीं की थी; क्योंकि कन्या-पक्ष का व्यय वह स्वयं वहन कर रहा है यह बात सभी जानते थे; जिसके कारण यह उसकी प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था।

गाँव का नारी-वृन्द कामिनी के यहाँ एकत्र था और पुरुष वर्ग गजेन्द्र की बारात में। गाँव के लिए यह प्रथम अवसर था, जब इतनी बड़ी बारात चढ़ी हो। निमंत्रण के अतिरिक्त आकर्षण का मुख्य केन्द्र शहर से आये हुए डेरे और लखनऊ से बुलाये हुए भाँड़ थे।

ऐसे में हरिपुर निवासी कैसे पीछे रहते। गाँव का प्रत्येक घर खाली हो गया था। किसी को भी अपनी सुधि न थी। सभी अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहने हुए थे। कुछ लोग, जिनको मिल सकी, शराब या भंग भवानी का सेवन भी किये हुए थे।

चतुरसिंह को ठाकुर वीरबहादुरसिंह ने अपना मुख्य प्रबन्धक एवं प्रतिनिधि घोषित कर रक्खा था। गजेन्द्र द्वारा नियुक्त प्रबन्धकगण उसी की देख-रेख में कार्य कर रहे थे। अब जब बारात आने का समय हुआ तो चतुरसिंह ने अपने कतिपय विश्वासी व्यक्तियों को बुला लिया और गजेन्द्र के आदमियों को बारात में सम्मिलित होने के लिये छूट दे दी।

बारात के स्वागतार्थ चतुरसिंह स्वयं ठाकुर साहब के पास उपस्थित था।

पूर्व योजना के अनुसार बारात आ पहुँची और आतिशबाजी शुरू हो गयी। सुनहरे और रुपहले अनारों की ज्योति में वातावरण प्रदीप्त हो उठा। आकाशबाण छूट रहे थे, चरखियाँ नाच रही थीं। आदमी पर आदमी टूटा पड़ रहा था। फुलवारी लूटने में लोग बढ़-बढ़ कर हाथ मार रहे थे।

द्वार पर बारात आ चुकी थी और ठाकुर साहब के यहाँ उपस्थित नारी-वृन्द बारात की शोभा देखने के लिये उत्सुक कामिनी को एकान्त कमरे में छोड़कर छत पर बाहर चली आयीं।

ठाकुर साहब और चतुरसिंह ने इसी मनोवैज्ञानिक दृष्टि के आधार पर अपनी योजना बनाई थी। अवसर देखकर कामिनी के पास जा पहुँचे। गुड़िया-सी सजी हुई कामिनी हाथों में मेंहदी रचाये साक्षात् लक्ष्मी का रूप धारण किये बैठी थी। पिता और चतुरसिंह को सम्मुख देख उसने नत मस्तक होकर अपनी दृष्टि धरती पर गड़ा दी। ठाकुर साहब कमरे के एक कोने की ओर बढ़े और उन्होंने चतुरसिंह को समीप आने का संकेत किया।

उसी क्षण ठाकुर साहब के सम्मुख एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ। तराजू के पलड़ों में से एक पर कामिनी का सुख था और दूसरे पर उनका अपना। फिर उनके नेत्रों के सम्मुख नोटों की गड्डियाँ लहरा उठीं और कानों में रुपयों की खनक गूँजने लगी। वह सोच न पा रहे थे कि क्या करें ?

तभी चतुरसिंह ने समीप आकर कामिनी की ओर अपनी पीठ की आड़ करके ठाकुर साहब को सौ-सौ के नोट की एक मोटी गड्डी दिखा कर मन्द स्वर में कहा—"मैं अपने वादे के अनुसार रुपया लेकर आया हूँ। आप अपना वादा पूरा करिये।"

ठाकुर साहब ने झट अपना हाथ फैला दिया। नोटों की झलक मात्र से उनके हृदय में उत्पन्न हुई दुविधा सदैव के लिये सो गयी।

नोटों की गड्डी को दूर करता हुआ चतुरसिंह बोला—"ऐसे नहीं काका। प्रोग्राम के अनुसार ही क़दम उठाना अच्छा रहता है। पीछे के दरवाज़े के समीप ही जीप खड़ी है। आप कामिनी को लेकर वहाँ पहुँच जाइये। उसी क्षण भगदड़ मच जायगी और किसी को कुछ पता न चलेगा। नोटों की यह गड्डी आपके जेब के अन्दर होगी।

ठाकुर वीरबहादुर का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उनका मन

लज्जा और ग्लानि से भर गया था, परन्तु परिस्थिति की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने क्रोध को चुपचाप पी लेने में ही भलाई समझी।

खिसियानी हँसी हँसते हुए वे बोले—"तुझे अपने काका पर इतना भी भरोसा नहीं है रे!"

चतुरसिंह ने गर्व मिश्रित हँसी के साथ बाँयीं आँख की कोर को तनिक दबाते हुए, कहा—"काका, हमारा आपका सम्बन्ध तो व्यापार का है—एण्ड बिजनेस इज बिजनेस।"

ठाकुर साहब को हँसी में साथ देना पड़ा।

दुष्टों का दमन करने हेतु भगवान शंकर ने भी विषपान किया था और शिव रूप होकर पूज्य बन गये थे। परिस्थितियों से घिरे ठाकुर साहब ने भी स्वार्थ हेतु विषपान किया। स्वयं पुत्री को उन्होंने धन के लालच में सूली पर चढ़ा दिया। और धन भी किस लिए, जिससे वे अपनी शराब की प्यास बुझा सकें!

ठाकुर वीरबहादुरसिंह जब अपनी बेटी के पास गये, तो बोले—"बेटा, बारात दरवाजे पर आ गयी है। हमारे घर की रीति के अनुसार द्वाराचार के पहले तुमको मंदिर में जाकर माता का आशीर्वाद प्राप्त करना आवश्यक है।"

भोली कामिनी उठ खड़ी हुई। उसे क्या पता था कि आशीर्वाद प्राप्त करने के बहाने उसके पिता कन्यादान के पहले ही उसे गुप्तदान किये दे रहे हैं!

कामिनी को उस क्षण तनिक आश्चर्य भी हुआ, जब जीप पर उसके पिता ने उसे सहारा दे कर चढ़ाया और पिता के स्थान पर एकाएक जीप में चतुरसिंह घुस आया; परन्तु यह सोचकर कि विवाह की व्यस्तता

के कारण सम्भव है पिताजी ने उसे भेजा हो, वह चुप रही। जीप के स्टार्ट होने के साथ ठाकुर साहब ने अपनी धोती के फेंटे में नोटों की गड्डी बांधते हुए पिछवाड़े का दरवाजा बन्द कर दिया। फिर वे चुपचाप अपने आंगन को पार करते हुए बाहर की भीड़-भाड़ में मिल गये। उसी क्षण चतुरसिंह की योजना का अन्तिम चरण एक आकस्मिक घटना के रूप में संघटित हो गया।

द्वेष के वशीभूत होकर कभी-कभी लोग अत्यन्त घृणित कार्य कर बैठते हैं। गजेन्द्र से बदला लेने की इच्छा चतुरसिंह के मन में वट वृक्ष की जड़ों की भांति पैठ गयी थी, ऐसा वट वृक्ष जिसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ भी जड़ें बन जाती हैं।

अचानक एक हंगामा मच गया और सभी चकित हो उठे। एक क्षण के लिए मानो साक्षात् मृत्यु सजीव हो उठी हो। विवाह के गाजे-बाजों और शोर-शराबे में डूबे हुए व्यक्तियों ने देखा कि विनाश का ताण्डव नृत्य हो रहा है। दूर-पास, इधर-उधर सभी दिशाओं में अग्नि की लप-लपाती जिह्वा झोपड़ियों, खलिहानों यहां तक कि बाग-बगीचों के हरे-सूखे वृक्षों को जलाती चली जा रही थीं।

सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि आग वृत्ताकार रूप धारण कर सम्पूर्ण गांव अपने घेरे में लिए हुए थी। गांव की सीमा पर हर वस्तु जल रही थी। लोग हाहाकार मचाते हुए दौड़ पड़े। एक क्षण के लिए चतुर्दिक् भागती हुई भीड़ को गजेन्द्र ने देखा। सहसा एक निःश्वास धड़कते हुए हृदय से निकल पड़ा और उसे दो दिन पहले की घटना याद आ गयी, जब उसने एक बार यह भी सोचा था कि अब क्या कामिनी के दर्शन न होंगे!

एक क्षण वह स्थिर रहा, मानो मिट्टी का संज्ञाहीन पुतला हो, जिसे अपने धर्म और कर्त्तव्य का कुछ भी ध्यान न हो। वह जाती हुई भीड़ को खड़ा-खड़ा तब तक देखता रहा, जब तक कि अन्तिम व्यक्ति रमेसर भी उसे छोड़ कर न चला गया।

एकाकी होते ही सहसा उसकी चेतना लौट पड़ी और वह भी एक ओर दौड़ निकला।

ठाकुर साहब सब दृश्य खड़े-खड़े देख रहे थे। उनका एक हाथ धोती में बँधे कसे हुए नोटों की गड्डी पर था। उन्हें इस बात की रंचमात्र भी आशा न थी कि परिस्थिति ऐसा अकल्पित रूप धारण कर लेगी कि उनको किसी के सम्मुख अपनी सफाई देनी पड़ेगी।

प्रज्वलित अग्नि की लपलपाती लपटों को देखते-देखते एकाएक उन्हें चतुरसिंह का वह कथन याद आया, जिसे वह सदैव दोहरा देता था। जब कभी भी वे योजना की सिद्धि के विषय में शंका प्रकट करते, चतुरसिंह ऐसे अवसरों पर एक ही वाक्य कहा करता था—'आप चिन्ता न कर आपकी योजना जहाँ समाप्त होगी, वहीं से मेरी योजना प्रारम्भ हो जायगी।'

—उफ्! तो यह है चतुरसिंह की योजना का प्रारम्भ! जिसका आरम्भ विनाश की चरमसीमा से उत्पन्न हुआ हो, उसका अन्त...?

—कल्पना मात्र से ही मन काँप उठता है।

हाय! मेरे ज़रा से लालच ने सारे गाँव का विनाश कर दिया! यह अग्नि तो दो-चार गाँव की सुख-समृद्धि नष्ट कर देगी!

और मुझे मिला क्या? दस हज़ार मात्र।

हाय, कामिनी का सुख और सम्पूर्ण गाँव का विनाश! शराब के चन्द घूंट के लिये!!

यह है मनुष्य का वास्तविक रूप। यही है मनुष्य के भीतर से निकलती मनावात्मा की वह चेतन वाणी, जो इस समस्त सृष्टि का मूल आधार है। उसकी आत्मा सिहर उठी। उसकी चीत्कार अन्तस्थल में समा गयी।

उसका मन-प्राण चीत्कार कर उठा। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

निकलती हुए चीत्कार को रोकने की चेष्टा में ठाकुर साहब ने अपने

हाथ से मुँह को कसकर बन्द कर लिया। दारुण यंत्रणा से उसका चेहरा विकृत हो उठा।

स्वर्ग और नरक दोनों इसी पृथ्वी पर हैं। मनुष्य को अपने कर्मों का फल यहीं भोगना पड़ता है।

कंठ से निकलते हुए स्वर को रोकने में ठाकुर साहब सफल तो अवश्य हो गये। परन्तु कुछ ऐसा हुआ कि पुनः उनके कंठ से स्वर न फूटा।

सभी लोगों ने मिलकर अग्नि पर विजय प्राप्त कर ली। अन्य लोग एक-एक करके पुनः ठाकुर साहब के द्वार पर एकत्र होने लगे। उस समय अर्ध-रात्रि से अधिक व्यतीत हो चुकी थी।

ठाकुर साहब की तलाश होने लगी। कुछ लोग भीतर गये। उन्होंने आकर बतलाया कि वह अचेत पड़े हुए हैं। वैद्यजी और सरकारी अस्पताल के डाक्टर वहाँ उपस्थित थे।

लोग उनको अन्दर लिवा ले गये। देखते ही उन्होंने एक स्वर में कह दिया—"दायें अंग पर लकवा मार गया है।"

ठाकुर साहब को चेतना आ चुकी थी। लोगों ने उठाकर उनको पलंग पर लिटा दिया। हृदय के उभरते हुए स्वर को रोकने में वे उस समय तो सफल हो गए थे। परन्तु उसके पश्चात् उसका कंठ सदैव के लिए स्वरहीन हो गया।

गजेन्द्र को भी ये सब समाचार विदित हुए। उसने तुरन्त कामिनी को सांत्वना देने के लिए उसे खोजना प्रारम्भ किया। किन्तु वह मिल न सकी।

एक क्षण के लिए उसे लगा कि उसकी समस्त चेतना लुप्त हो गयी है। स्नायविक उत्तेजना से उसकी नसें उभर आईं। उसे प्रतीत हुआ कि उसका रक्त बरफ हो गया है। अब उसकी धमनियाँ फट जायँगी।

तभी रमेसर काका का स्वर उसके कानों में पड़ा। वह गरज-गरजकर कह रहा था—"किस डाकू का यह काम है। मैं उसका खून पी जाऊँगा।"

एक हंगामा मच गया। जितने मुँह, उतनी बातें। सभी उत्तेजित

थे। क्रोध और आवेश में सबके हाथ अपनी मूंछों पर जाते थे परन्तु विवशता के कारण वे तुरन्त हथेली मलने लगते। एक-दूसरे की बात सुनना तो दूर रहा, कान पड़ी बात सुनाई नहीं पड़ती थी।

गाँव के एक वयोवृद्ध बोले—"बाहर के किसी व्यक्ति का यह काम नहीं है। इतने व्यक्तियों के समुदाय में परिन्दे का पर मारना भी असम्भव है। आग की घटना इसी काण्ड का एक अंश मात्र है। इस षडयन्त्र के लिए उस दुष्ट को पाँच-छै घण्टे का समय मिल गया।"

रमेसर काका ने अपने उद्गारों पर नियंत्रण करके गजेन्द्र के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"गज्जू भैया, चलो खेल समाप्त हो गया।"

एक निःश्वास के साथ गजेन्द्र भी बुदबुदा उठा—"हाँ, खेल समाप्त हो गया।"

उसके जाने के पश्चात् एक-एक करके सभी चले दिए।

ठाकुर साहब अकेले पलंग पर पड़े थे और उनकी धोती के फेंटे में बंधी हुई नोटों की गड्डी भी जाने वालों में से किसी के साथ चली गयी थी!

रात्रि के तीसरे पहर के अन्त के समीप गजेन्द्र चुपचाप आकर सबकी नज़रों से छिपकर, ऊपर अपने शयन कक्ष में जाकर, अपनी कुलदेवी सिंह वाहिनी अष्टभुजा दुर्गा के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया। एकान्त मिलते ही उसने आगत भूकम्प में ध्वस्त मन की स्थिति का अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। जिन आँखों से इतनी बड़ी घटना घटित हो जाने पर भी आँसू की एक बूंद न निकली थी उन्हीं से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी।

उसे रह-रहकर आश्चर्य हो रहा था कि उसने इस सम्भावना की ओर क्यों नहीं ध्यान दिया कि जब वह कामिनी को बल प्रयोग द्वारा

चतुराई की आवश्यकता थी, वह उसमें पर्याप्त मात्रा में है।

स्नायविक उत्तेजना से उसका सारा शरीर झनझना उठा। अपने आप पर अब उसे क्रोध आ रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि इतनी साधारण-सी बात उसके समझ में अब तक क्यों नहीं आयी?

इतनी बड़ी घटना हो गयी हो और चतुरसिंह का ध्यान नहीं आया। और अब ध्यान आते ही बिखरे हुए सब सूत्र मिल गये और शृंखला की प्रत्येक कड़ी अपने स्थान पर स्वयं फिट हो गयी।

उसे ध्यान आया कि इस योजना को कार्यान्वित करने में स्वयं उसका प्रमुख हाथ रहा है। उसी ने दूध पिलाकर जिस सर्प को पाला उसी ने उसे डस लिया।

चतुरसिंह अपनी सम्पूर्ण जायदाद उसी के हाथ बेच गया था। बेचने के समय कहे हुए शब्दों की सत्यता इस समय प्रकट हुई।

उसने कहा था—'इस जायदाद को बेच देने में ही मेरी भलाई है। मैं जो कुछ भी करने जा रहा हूँ उसके पश्चात् अन्य लोगों की बात तो जाने दो, तुम स्वयं ही मेरा मुँह देखना पसन्द न करोगे।'

कितनी सत्यता थी उसके इन शब्दों में। मैंने उसे सहायता दी सम्पूर्ण जायदाद को खरीद कर। अन्यथा कोई अन्य व्यक्ति एकाएक उसकी जायदाद खरीदने को तैयार न होता और वह धनाभाव में अथवा भविष्य के टकराव की सम्भावना से इस प्रकार का काम कभी न करता।

मुझे उसके हृदय में छिपी हुई इस योजना का क्या ज्ञान था? अन्यथा मैं लालच में पड़कर आधे मूल्य पर भी उसे न खरीदता।

यह सब ठीक है। परन्तु कामिनी की स्वीकृति के बिना ऐसा होना सम्भव नहीं।

यह सच है कि आग लगने के कारण सबका ध्यान बँट गया था। हर दिशा में लोग आग बुझाने में लगे थे। उसके घर में नौकरों स्त्रियों की भीड़ थी। ऐसी दशा में बल-प्रयोग असम्भव है।

अवश्य ही कामिनी अपनी स्वेच्छा से उसके साथ गयी होगी। इस योजना की मुख्य कड़ी कामिनी ही है।

एक ओर वह मुझसे प्रेम करने का अभिनय करती रही और दूसरी ओर चतुरसिंह के साथ...।

—तभी ठाकुर साहब की इतनी आवभगत होती थी !

—ऐसा भी सम्भव है कि वह जिस भाँति मुझसे मिलती रही है उसी भाँति उससे भी छिप-छिपकर अभिसार करती रही हो।

शायद ठाकुर साहब को उसकी मनोदशा का ज्ञान था। तभी वह विवाह के लिए इन्कार कर रहे थे। परन्तु वह अपने हृदय में छिपे प्रेम के कारण लाचार था। उसने कामिनी पर विश्वास किया, यही उसका दोष है।

परन्तु विश्वास प्रेम का आधार है। युग-युग से पुरुष अपनी प्रेयसी का विश्वास करता आया है...और प्रत्येक युग में नारी पुरुष को धोका देती आयी है। उसे अनुभव हो रहा था कि उसके रोम-रोम को कोई खींच रहा है।

मन में उठते हुए उद्‌गारों को रोकने के लिए उसने दाँतों से अपने निचले होंठ को भींच लिया। असह्य दारुण यंत्रणा को सहन करने की शक्ति के संचय-हेतु उसने परमपिता से सहायता की प्रार्थना करना प्रारम्भ किया।

परन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत। दुःख के आवेग के सम्मुख उसके संयम का बाँध पुनः टूट गया। वह अपनी हास्यास्पद स्थिति के विचार मात्र से अधीर हो उठा, अपनी बेबसी पर उसे रोना आ गया। साथ ही उसे कामिनी के ऊपर क्रोध आने लगा। चतुरसिंह को दोष न देकर उसने इस कृत्य के लिए कामिनी को दोषी ठहराया। क्रोध के कारण उसके होंठ नीले पड़ गये।

अपमान की अग्नि में वह झुलसने लगा। बन्द कमरे की उष्णता के

कारण उसे प्रतीत हुआ कि समस्त भूलोक धधकती हुई अग्निपुंज में घिर गया है।

उसी क्षण उसे ध्यान आया कि इस भयंकर अग्निकाण्ड का कारण भी कामिनी है। यह विनाश का ताण्डव नृत्य उसी के द्वारा प्रारम्भ किया गया है।

—उसे जाना था तो वह बिना इसके भी जा सकती थी।

—उफ़, यह अग्नि मेरी चिता क्यों न बनी ?

—मेरी अंत्येष्टि के लिए इतनी अग्नि यथेष्ट न थी क्या ?

—मैं मरकर भी क्यों जीवित हूँ ? अब इस संसार में मेरा क्या है ?

—हाँ, प्रतिशोध……मैं प्रतिशोध लेने के लिए ही जीवित हूँ। मैं अवश्य ही प्रतिशोध लूँगा।

उसी क्षण उसे बचपन का वह दिन स्मरण हो आया जब चतुरसिंह ने खेल में बेईमानी की थी और उसने क्रोध में आकर उसको कुयें की जगत पर पटक दिया था और चीखते-चिल्लाते चतुरसिंह को कुयें में ठकेल दिया था। संयोगवश रमेसर जो चीख-पुकार सुनकर दौड़ा आ रहा था, छलांग मारकर कुयें में कूदकर चतुर को बचा लाया था। उस दिन उसके पिता ने उसकी खूब पूजा की थी और उसे चतुरसिंह के घर जाकर क्षमा-याचना करनी पड़ी थी। उस दिन गजेन्द्र ने अपने पिता को वचन दिया था कि वह चतुरसिंह के प्रति कभी प्रतिशोध की भावना को अपने हृदय में जन्म न लेने देगा।

अनजाने ही गजेन्द्र उठकर खड़ा हो गया और पिता के चित्र के सम्मुख जाकर खड़े होकर उन्हें सम्बोधित करके बोला—'आप चिन्ता न कीजिये। मैं चतुरसिंह से प्रतिशोध न लूँगा। मुझे अपने वचन का ध्यान है। परन्तु मैं कामिनी से प्रतिशोध अवश्य लूँगा। केवल इसलिए लूँगा, जिससे अपने कुल पर उसके द्वारा थोपी हुई कालिमा धुल जाय।'

आवेश में उसके दोनों हाथ की हथेलियाँ मुट्ठी बनकर कस उठीं। धड़कते हृदय से वह धीरे-धीरे अपने पलंग की ओर बढ़ गया और चुप-चाप औंधे मुंह उन्हीं कपड़ों में लेट गया। फिर न जाने कब वह सो गया।

६

आनन्द का वातावरण विषाद से भर गया। सम्पूर्ण गाँव में ऐसा कोई न था जिसकी हानि इस अग्निकाण्ड के कारण न हुई हो। उस पर कामिनी का इस प्रकार अपहरण हो जाना रिसते हुए घाव पर नमक छिड़कना बन गया। जिन लोगों की झोंपड़ियों की एक-एक वस्तु जलती हुई आग की भेंट हो गयी थी उनके हृदय में भी अन्य सभी ग्रामवासियों की भाँति एक ही डर था कि अपहरण की घटना संक्रामक रोग की भाँति फैलकर कहीं उनका भी आँचल न मैला कर जाय। हर व्यक्ति को यही चिन्ता थी कि कहीं इस काण्ड की पुनरावृत्ति उनके घर में न हो जाय। रात भर लोग इधर-उधर झुण्डों में बैठकर इसी विषय की चर्चा करते रहे। दूसरे गाँव से आये हुये मेहमान चुपचाप बिना गृहस्वामी से मिले विदा होकर जाने लगे।

गजेन्द्र सो रहा था और रमेसर आँखों में आँसू भरे हर व्यक्ति को विदा कर रहा था। प्रातः होते-होते गजेन्द्र के घर में केवल शोभा भाभी, सुखदा और एक बूढ़ी बुआ बचीं और पुरुषों में केवल उसका मौसेरा भाई कुँवरसिंह।

उषा की लाली से जिस समय दूर क्षितिज पर अग्निपुंज-सा प्रदीप्त हो उठा, उस समय रमेसर अपनी कोठरी में कुदाल लिए अपनी खाट खिसकाकर फ़र्श खोद रहा था। जरा ही देर बाद वहाँ से निकाले हुये लोटे में से उसने कुछ गिन्नियाँ निकालीं और अपनी टेंट में सम्हाल कर

बाँध लीं। गद्दे को पुनः बराबर करके वह अपना कुर्ता पहनकर सर पर साफ़ा बाँधने लगा।

रमेसर ने रात में घूमकर लोगों से बातचीत की थी। उससे उसे इस बात का अनुमान हो गया था कि चतुरसिंह का इस काण्ड से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य है। साफ़ा सर पर लपेट लेने के बाद उसने ताख पर रखे हुये छोटे से शीशे में अपनी सूरत देखी और स्वयं अपने प्रतिबिम्ब से बोल उठा—'अब किधर बचकर जाओगे, यही देखना है ?'

सफ़ेद मूंछों के नीचे उसके मोटे काले होंठ मुसकरा उठे। उसके नेत्रों में हिंसा की ज्वाला थी, चेहरे पर उभरा हुआ भाव उस हिंस्र पशु के समान था, जो अपने शिकार द्वारा घायल कर दिया गया हो और जिसके सम्मुख वही शिकार विवश खड़ा हो। मन की छिपी हुई भावना के वशीभूत बार-बार उसका हाथ अपनी मूंछों की ओर उठ जाता था और अनायास ही वह उनको ऐंठ देता था। बाहर बरामदे में घर के सभी नौकर बैठे हुए आपस में मन्द स्वर में बातचीत कर रहे थे। वातावरण की गम्भीरता से झलकता था कि मानो सब लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे हुए हों।

अन्दर कमरे में गजेन्द्र के मौसेरे भाई कुंवरसिंह अपनी पत्नी शोभा और साली सुखदा से बातें कर रहे थे। विषाद की झलक से सबके चेहरे म्लान थे किन्तु इन सब में सुखदा तो मानों दुःख की मूर्ति हो गयी थी।

उसके हृदय को रह-रहकर एक विचार उद्विग्न कर रहा था कि इस घटना की ज़िम्मेदारी उसी पर है। मन का अवसाद एकत्र होकर उसकी आत्मा को प्रताड़ित कर रहा था कि वासना में पड़कर उसने गजेन्द्र को प्राप्त करने की जो इच्छा की थी, मन-ही-मन प्रार्थना की थी कि कुछ विघ्न उपस्थित हो जाय, जिससे विवाह न हो और कुछ ऐसा हो जाय, जिसमें वह उसका बन जाय, वही इस घटना का मूलाधार है। वह अपने को इस सीमा तक अपराधिनी मानती थी कि मानों उसी ने योजना बना

कर स्वयं ही उसका अपहरण किया है और अपनी इच्छा को, कामना को, वासना को सिद्ध करने हेतु दो प्रेमियों के बीच व्यवधान उपस्थित कर दिया हो।

कुँवरसिंह अपनी पत्नी शोभा से बोले—"रमेसर काका का कहना ठीक है, परन्तु मेरे लिये इतवार से अधिक रुकना सम्भव नहीं है। नौकरी छोड़ नहीं सकता और गज्जू को छोड़ा नहीं जा रहा है।"

शोभा ने कहा—"इतवार तक काका लौट आयेंगे। नहीं तो सुखदा और मैं रुक जाऊँगी। बुआ रहेगी ही।"

उसी समय कमरे के अन्दर पग रखता हुआ रमेसर, जो सम्भवतः द्वार के उस पार ही अन्दर होने वाली वार्ता सुन चुका था, बोला—"कुँवर बेटा, तुम चिन्ता न करो। मैं इतवार को प्रातः इसी समय लौट आऊँगा। मैं बाद में भी जा सकता था परन्तु केवल इस बात को ध्यान में रखकर कि तुम लोग रहोगे तो गज्जू भैया को सम्हाल लोगे और बाद में दो-तीन दिन उनको अकेला रहना पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि बिटिया का कहना भैया अवश्य मान लेंगे और यही कहने मैं आया भी था कि चलकर मुझे चार दिन की छुट्टी दिला दो।"

सुखदा को ऐसा प्रतीत हुआ कि यह संसार में कोई समझे या न समझे, परन्तु इस बूढ़े की अनुभवी आँखों से कुछ भी छिपाना सम्भव नहीं। उसका मन काँप उठा कि जब एक अन्य व्यक्ति उसके अन्तर्मन में छिपे रहस्य को पढ़ सकता है तो उस दशा में उसका भेद किसी से भी छिपा नहीं रह सकेगा। उसे लगा कि वह निराकरणा बीच चौराहे पर खड़ी है और सारा संसार ठहाका मार कर हँस रहा है। उसने दृष्टि उठाकर जीजाजी और दीदी की ओर देखा।

उत्तेजना के कारण उसके मस्तक पर स्वेद बिन्दु झलक उठे। उसे लगा कि दोनों कुछ न समझने और अनजान बनने का अभिनय कर रहे हैं, जबकि वास्तविकता कुछ और है।

वह झट बोल उठी—"मेरा मन इस घटना के कारण बहुत दुःखी

हो उठा हूँ। विषाद भरे इस वातावरण में मेरा दम-सा घुटा जा रहा है। आप लोग यहाँ ठहरिये, पर मैं काका के साथ ही स्टेशन चली जाती हूँ। फिर वहाँ से जो भी गाड़ी मिलेगी उससे मैं कानपुर निकल जाऊँगी।"

कथन के साथ ही वह उठकर खड़ी हो गयी।

निमिष मात्र के लिये सभी हत्प्रभ हो उठे। परन्तु रमेसर तुरन्त हाथ जोड़ कर इसके सम्मुख रास्ता रोक कर खड़ा हो गया और बोला—"बिटिया, मेरा अधिकार तुमको रोकने का है नहीं, मैं केवल प्रार्थना कर सकता हूँ। सिर्फ़ तुम हो जिसका कहना गज्जू भैया ने एक बार माना है। सम्पूर्ण जीवन में केवल एक बार ऐसा हुआ है। जब भैया ने किसी दूसरे के कहने को मान कर अपने फैसले को बदला हो।"

सुखदा ने झट उत्तर दिया—"काका, उनको भूख लग आयी होगी इस कारण खा लिया होगा। वस्तुतः इस बात में तथ्य नहीं है कि मेरे कारण उन्होंने ऐसा किया। उस समय तुम्हीं भोजन लेकर जाते तो वह खा लेते। सत्य तो यह है कि मैंने तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर उसे पोंछना चाहा था।"

रमेसर काका को सूत्र मिल गया। वह समझ गये कि इस लड़की में इतनी सामर्थ्य है कि इसकी भावना को जागृत कर के काम निकाला जा सकता है। वह तुरन्त बोले—"बिटिया, मैं केवल इसी अभिप्राय से आया था तुम्हारे पास। आँखों से बहते हुए आँसू सब देखते हैं, परन्तु हृदय के बहते हुए घाव को कोई नहीं देखता। मैं इस विश्वास को लेकर ही तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि तुम मेरे संतप्त हृदय पर मरहम रख दोगी।"

सुखदा ने अपना होंट दाँत के नीचे दबा लिया और एक निःश्वास उसके मुँह से अनजाने ही निकल गया। अपने अन्तःकरण में उमड़ते भावों के अन्धड़ को दबा कर वह बोली—"काका, दूसरों के बीच में बोलना मुझे शोभा न देगा। व्यर्थ ही अनधिकार चेष्टा करने से क्या लाभ!"

उसी क्षण बीच में कुँवरसिंह बोल पड़े—"काका, सच बात तो यह

है कि इस समय तुम्हारा यहाँ रहना बहुत आवश्यक है। वैसे इतवार तक तो हम लोग यहाँ बने ही हैं। कोशिश करेंगे कि गजेन्द्र दुखी न हो।"

रमेसर काका ने कहा—"ठीक है बेटा। पर बिटिया का कहना वह अवश्य मान लेगा। संकोच में ही सही क्योंकि हम सब लोग तो घर के हैं और यह बाहर की।" कभी-कभी आँगन में चमकी बिजली बरामदे तक में उजाला भर देती है।

शोभा के हृदय में उसी क्षण एक विचार उठा। साकार भविष्य उसकी कल्पना के सम्मुख उपस्थित हो गया है। उसे लगा कि हो न हो, परिस्थिति का यह स्वरूप उसकी इच्छा को पूरी करने के लिये ही उत्पन्न हुआ है। उसने सोचा सम्भव है कि सहानुभूति प्रदर्शित करते-करते ऐसी कोई स्थिति भी उत्पन्न हो जाय, जिसकी कल्पना उसने की थी। अतः वह बोली—"काका, तुम चिन्ता न करो। हम सब लोग मिलकर सब ठीक कर लेंगे। तुम्हारी गाड़ी का समय हो रहा है। स्टेशन दूर है। तुम जाओ, लेकिन जल्दी वापस आने की चेष्टा करना।"

उपकृत रमेसर सबको आशीर्वाद देकर चले गये।

उसके जाने के पश्चात् सुखदा बोली—"दीदी, तुम व्यर्थ ही इस मुसीबत को मोल ले बैठीं। जिद्दी प्रकृति के मनुष्य से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। फिर इस समय आवेश में आकर अगर वे तुम्हारा अपमान कर बैठे तो?"

"पगली, ऐसे समय में अगर अपने भी साथ छोड़ देंगे तो क्या पराये साथ देंगे? फिर मुझे विश्वास है कि गज्जू लाला एक बार मुझे या तुम्हारे जीजाजी को भला ही कुछ कह दें परन्तु तुमको कुछ कहने का साहस उसे न होगा। रमेसर काका का सोचना ठीक है। तुम पराई हो, यह वह जानता है। तुम्हारा अपमान करने का उसे कभी साहस न होगा।

सुखदा के हृदय को एक आघात-सा लगा। उसने कुछ उत्तर न दिया, किन्तु एक तीव्र दुःख की रेखा उसके हृदय देश में बिजली की भाँति कौंध गयी। उसने सोचा—'मैं पराई ही तो हूँ। मेरा इनका क्या सम्बन्ध? रैन-

यात्रा में मिले हुए दो सहयात्री ठहरे। अपना-अपना गन्तव्य स्थान आते ही बिछुड़ जाते हैं। कल को मैं भी चली जाऊँगी। परन्तु...परन्तु क्या मैं उन्हें भूल पाऊँगी? अच्छा होता मैं आई ही न होती। मिलन न हुआ होता तो विछोह भी न होता।'

एकाएक उसकी विचारधारा अपने जीजाजी के शब्दों से भंग हो गयी। वह अपनी पत्नी शोभा से कह रहे थे—"तुम जाकर चाय बना लो, फिर सुखदा के हाथ ऊपर भेज दो।"

सुखदा बोली—"मैं...।"

जीजा और दीदी दोनों एक साथ ही बोले—"हाँ, तुम।"

कथन के साथ ही शोभा उठ खड़ी हुई।

कुँवरसिंह ने अपना मत प्रकट करने के लिये कहा—"तुम उसे एक बार खाने के लिये विवश कर चुकी हो और अब चाय पिला दोगी तो सब ठीक हो जायगा बाकी बातें हम लोग सम्हाल लेंगे।

कामिनी को अपने पिता की बात सुन कर तनिक आश्चर्य तो अवश्य हुआ कि बारात जब द्वार पर पहुँच गयी उस समय उसे पूजा के लिये भेजा जा रहा है। मन-ही-मन उसने सोचा कि अगर रीति के अनुसार पूजा के लिये माता के मन्दिर में जाना आवश्यक था तो उसका प्रबन्ध पहले करना चाहिये था। किन्तु उसके मन में ऐसा कोई सन्देह न उत्पन्न हुआ कि इसमें कोई रहस्य है।

संसार का सारा निर्माण विश्वास के शिलाखंड पर आधारित है। अगर प्रत्येक प्राणी विश्वास का अवलम्ब त्याग दे, तो साधारण जीवन-व्यापार कभी अपनी गति से न चले। मनुष्य अपनों पर ही नहीं, परायों पर भी विश्वास करता है। फिर कामिनी अपने पिता पर किस भाँति अविश्वास करती, जो उसका सृष्टा और पोषक था; चतुरसिंह भी कोई

अजनबी न था। बचपन से ही वह उससे परिचित थी।

फिर भी एक बार उसका माथा ठनका, जब उसने पिछवाड़े के द्वार पर जीप को खड़ी देखा। उसने समझा कि विवाह के प्रबन्ध का यह भी एक अंग होगा।

वह जीप के पिछले भाग में जा बैठी। चतुरसिंह उसके समीप किन्तु सामने की दूसरी सीट पर बैठ गया। ड्राइवर के अतिरिक्त दो व्यक्ति आगे बैठ गये और जीप तीव्र गति से चल पड़ी।

गाँव की उत्तरी सीमा और फ़तेहपुर की ओर जाने वाली ग्रैन्डट्रन्क रोड के बीच में एक टीला था। जीप जिस समय उस टीले पर पहुँची तो चतुरसिंह ने उसको रोकने का आदेश दिया और सबका ध्यान गाँव के चतुर्दिक फैली अग्नि की ओर आकर्षित कराया।

अभिनय की चरम सीमा प्रदर्शित करते हुए उसने कहा—"सम्पूर्ण गाँव का जीवन संकट में है। लौट कर हम लोग इस प्रज्वलित अग्नि-रेखा को पार कर के उनको कोई सहायता नहीं पहुँचा सकते क्योंकि हममें से कोई भी इस ओर धधकती हुई आग को न तो बुझा सकता है और न पार कर सकता है।"

स्तब्ध कामिनी सिसकते-से स्वर में बोली—"हाय तो क्या सब लोग इस चिता में जीवित जल जायेंगे ?"

चतुरसिंह ने आश्वासन भरे स्वर में कहा—"नहीं। सामूहिक रूप से वे सब प्रयास करके किसी-न-किसी ओर से बाहर निकलने का रास्ता बना लेंगे।"

कामिनी के अंग-अंग से विवशता फूट पड़ी और वह बोली—"क्या हम लोग उनकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। चतुर !"

चतुरसिंह बोला—"कर क्यों नहीं सकते ? फ़ौरन चलकर फ़ायर-ब्रिगेड को सूचना देनी चाहिये। धन और जन को जितना बचाया जा सके उतना ही उत्तम होगा।"

कथन के साथ ही वह जीप की ओर बढ़ गया। सब पुनः उसी भाँति

जीप पर चढ़ कर चतुरसिंह के आदेश पर फ़तेहपुर की ओर चल दिये।

इस समय चतुरसिंह ने अपना सम्पूर्ण चातुर्य मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि के निर्माण में लगा दिया। उसने आशंका और भय के एक काल्पनिक भूत की सृष्टि कर दी। रास्ते भर वह सबके मंगल की कामना करता रहा।" अब कामिनी की स्नायुविक उत्तेजना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।

अमंगल की भावना के अतिरिक्त अब कामिनी के मस्तिष्क में कुछ भी शेष न रहा। वह भावनाशून्य ही नहीं, अपितु ज्ञान-शून्य भी हो गयी।

सम्पूर्ण कार्य-कलाप चतुरसिंह की योजना के अनुसार चल रहा था। उसे चेतना-विहीन देखकर वह मन-ही-मन मुसकराने लगा। उसने अपने एक सहयोगी से कहा—"लो भाई, यह तो बेहोश हो गयी। बस यही अवसर है, रूमाल क्लोरोफ़ार्म से भिगो कर इसकी नाक पर रख दिया जाय, जिससे बाक़ी रास्ता इसकी अचेतावस्था में ही तय हो जाय।"

भाग्य कहें, संयोग कहें या बुद्धि का चमत्कार। चतुरसिंह ने जिस उद्देश्य से योजना बनाई थी उसमें उसे सफलता मिल गयी।

कामिनी को लेकर वह अपने एक मित्र के यहाँ उन्नाव पहुँच गया। उसके मित्र पण्डित रामकिशोर शर्मा कलकत्ते में व्यापार करते थे, उनका घर खाली पड़ा रहता था। चतुरसिंह ने उसी का अपना निवास-स्थान चुना था। वह जानता था कि कोई भी व्यक्ति स्वप्न में भी उसका पता न पा सकेगा। उसने यहाँ रहने का सारा प्रबन्ध पहले से कर रक्खा था और अचेत कामिनी अब शयनकक्ष में एक पलँग पर लिटा दी गयी थी।

चतुरसिंह की स्थिर की हुई सारी योजना इस स्थल पर समाप्त हो गयी। इसके आगे का कार्यक्रम उसने सोचा न था। उसके क्लान्त मस्तिष्क से मानो किसी ने विचार करने की शक्ति ही छीन ली थी। उसकी समझ में न आ रहा था कि वह अगला पग किस दिशा में बढ़ाये

कि सफलता का भावी क्रम अपने आप उसे प्राप्त होता रहे।

जब उसकी समझ में कुछ न आया तो भाग्य पर निर्भर होकर वह पलँग के समीप पड़ी हुई आराम कुर्सी पर बैठ गया और विश्राम करने के हेतु आँख मूँदते ही सो गया।

सूर्य की प्रथम किरण सोये हुए गजेन्द्र के मुँह पर जा पड़ीं; उसकी उष्णता से वह जाग गया। आँख खोलते ही सामने ही कुर्सी पर बैठी सुखदा को देखा। उसे अपने समक्ष इस प्रकार बैठी देख कर वह कुछ ऐसे सोच में पड़ गया कि हड़बड़ाकर उठ बैठा।

सुखदा के सामने छोटी गोल मेज पर चाय की ट्रे रक्खी हुई थी और उसमें रक्खी हुई चाय की केतली के ऊपर चाय को गर्म बनाये रखने के हेतु काश्मीरी कढ़ाई से सुसज्जित नमदे की टीकोजी ढकी हुई थी। ट्रे में दो प्याले खाली रखे थे और साथ ही दो प्लेटों में जलपान-सामग्री भी ढकी हुई थी।

सुखदा ने पहले ही अनुमान कर लिया था कि गजेन्द्र की मनोदशा इस समय ऐसी न होगी कि वह सहज ही इतनी बड़ी घटना की उपेक्षा कर सके और उस पर कोई प्रतिक्रिया न हो। इसलिये उसने पहले से प्रबन्ध कर लिया था। वह न केवल उसके लिये चाय और जलपान लेकर आयी थी, वरन् अपने लिये भी साथ ही ले आयी थी। वह जानती थी कि गजेन्द्र यदि इनकार करेगा तो उस दशा में अगर वह कह देगी ठीक है, फिर मैं भी चाय न पीऊँगी, तो वह चायपान को विवश हो जायगा।

गजेन्द्र के उठकर बैठते ही सुखदा की विचारधारा टूट गयी। वह मन्द बोली—"चलिये आपकी नींद तो टूटी। मैं सोच रही थी कि आज आपके कारण मुझे भी चाय न मिलेगी।"

उठकर गजेन्द्र बैठा, तो उसे एक आघात लगा। उसका मन हाहाकार कर उठा। उसने आँख खुलते ही इसी प्रकार चाय के साथ कामिनी को बैठा देखने की कल्पना की थी। अन्तर केवल इतना है कि कामिनी के स्थान पर सुखदा है।

उसने धीरे से दृष्टि उठाकर चोरी से सुखदा की ओर देखा। चित्र खचित-सी सुखदा को बैठा देख उसका घाव पुनः ताजा हो गया। मन में हूक उठी—'या तो जीवन में कामिनी न आयी होती या यह सुखदा ही कुछ पहले आ जाती।'

उसी क्षण सुखदा के स्वर ने उसकी विचारधारा भंग कर दी। प्रश्न सुनकर उसने उत्तर दिया—"आपने व्यर्थ कष्ट किया। रमेसर काका चाय ले ही आते। वैसे भी आज मुझे कुछ इच्छा नहीं हो रही है। आप ही पी लीजिये।"

सुखदा ने अपनी बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें उसकी आँखों से मिलाकर कहा—"रमेसर काका बाहर गये हैं। जीजी ने नाश्ता तैयार करके मुझे आपको चाय पिलाने का भार सौंप दिया। जब मुझे आपको चाय पिलाना है तो उस दशा में मैं स्वयं अकेले कैसे चाय पी सकती हूँ।"

"परन्तु आज मुझे चाय पीने का मूड नहीं है।"

"यह मूड की बात आपने खूब कही। चाय पीने में भी मूड की आवश्यकता होती है, इसका मुझे ज्ञान न था। फिर मूड बनाने से बनता है। झट से आप मूड बना लीजिये अन्यथा चाय ठंडी हो जायगी और मुझे चौथी बार गरम करनी पड़ेगी।"

"आप व्यर्थ ही जिद कर रही हैं। मैंने बतलाया न कि इस समय मुझे कुछ लेने की इच्छा नहीं है। अच्छा तो यह होगा कि आप नीचे जायँ और चाय पी लें। मेरी मनोदशा इस समय ऐसी नहीं है कि मैं कुछ बात भी कर सकूँ।"

"रात्रि की घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न दुःख की मैं सहज ही कल्पना कर सकती हूँ। परन्तु जीवित रहने के लिये मनुष्य दुःख को

भूलने की चेष्टा करता है। आप भी अपने ध्यान से उस घटना को हटा दीजिये। दुःख तो जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। सुख आता है क्षण-मात्र के लिये और चला जाता है जैसे अंधेरे में जुगनूं। उसकी स्मृति मात्र रह जाती है। भोजन करने के पश्चात् जिस तरह स्वादिष्ट भोजन की तृप्ति।"

अचानक वह भूल गया कि उसका सम्बन्ध घनिष्टता की सीमा से परे है। वह भावना के उद्रेक में वह गया और अपनत्व के निकटतम किनारे पर पहुँच कर उसे उसके नाम से सम्बोधित कर बैठा। वह बोला—"सुखदा, मैं तुम्हारे विचारों से सहमत हूँ। सुख की छटा तप्त मरुस्थल में एक बूंद बरसा कर चली जाती है, जिसका आभास भी किसी को नहीं हो पाता। किन्तु दुःख तो जीवन का एक प्रकाश-स्तम्भ है। उसी के सहारे अन्धकार से छुटकारा पाने के लिये मनुष्य जीता है।"

चाय की केतली से टीकोजी हटाकर सुखदा ने गर्माहट का अन्दाज लगाने के लिये हाथ से टटोला। यह अनुमान करके कि चाय काफ़ी गर्म है उसने ढकी हुई जलपान की प्लेट उसके सम्मुख कर दी और बोली—"आपको आभास भी न हुआ होगा कि मैं स्वयं कितनी दुखी हूँ, केवल एक आशा के सहारे मैं अपने हृदय की पीड़ा को हृदय में दबाये भविष्य की सुखद कल्पना में लीन जीवित हूँ। आपने आशा का आँचल क्यों छोड़ दिया, इस बात को मैं स्वतः नहीं समझ पा रही हूँ।"

कथन के साथ ही उसने मिठाई की प्लेट गजेन्द्र की ओर बढ़ा दी।

सुखदा के कथन ने उसके विचारों को एक नया मोड़ दे दिया। बिना कुछ सोचे-समझे उसने मिठाई की प्लेट थाम ली। वह सोचने लगा—'क्या उसको भी मेरी तरह प्रेम में निराशा मिली है?' तभी एक विचार उसके मन में उठा कि वंश बेल को न सूखने देने के लिये विवाह तो करना ही पड़ेगा। उस दशा में यदि मेरा सुखदा से विवाह हो जाय तो...!

—तो मेरे मन की इच्छा पूर्ण हो जाय। इससे भेंट होने के

प्रथम मैं ऐसा कुछ नहीं समझता था। मैं सोचता था कामिनी से ही मैं प्रेम करता हूँ। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि प्रेम तो मैंने इससे किया है। प्रथम दृष्टि में ही इसके रूप-यौवन और सौजन्य ने मेरे हृदय में अपना स्थान बना लिया है।

—कामिनी से वस्तुतः मेरी वासना का ही सम्बन्ध था, आत्मा का सम्बन्ध कदापि न था।

उसी क्षण एक दूसरी शंका उसके मन में उत्पन्न हो उठी—ऐसा भी तो सम्भव है कि इसी से मेरी वासना का सम्बन्ध हो। आखिर कोई कसौटी तो होनी चाहिये।

इसी क्षण सुखदा ने चाय के खाली कप को प्लेट पर सीधा रखकर उसमें केतली से चाय उँडेल दी। कप गजेन्द्र के समक्ष रख दिया।

तभी गजेन्द्र बोला—"यह तुम ठीक कहती हो सुखदा कि आशा के सम्बल पर ही तो जीवन आधारित है। मैं भी उसी के सहारे जीवित हूँ। एक आशा का आश्रय न मिलता, तो कल ही मैं अग्नि-समाधि ले लेता।"

कथन के साथ उसने मिठाई की प्लेट सुखदा की ओर बढ़ाई और कहा—"लो तुम भी खाओ।"

सुखदा को लेशमात्र भी इस बात की आशा न थी कि गजेन्द्र इतनी आसानी से उसकी बात मान जायगा। एक क्षण के लिये वह चकित हुई। उसने सोचा कि मनुष्य कितना निष्ठुर और स्वार्थी होता है। फिर तुरन्त ही सम्हलकर उसने अपने बहकते हुये विचारों को स्थिर कर लिया और स्थिति पर नियंत्रण बनाये रखने के हेतु सामने हाथ में लिये प्लेट में से एक गुलाब जामुन उठा ली।

अपने-अपने विचारों में मग्न दोनों चाय पीने लगे।

अब दोनों एक-दूसरे की दृष्टि बचाकर उसे देख लेते और नाना-प्रकार की भावी कल्पनाओं में लीन हो जाते।

रमेसर काका का इतिहास एक पहेली की भाँति था। प्रारम्भ में जब वह हरिपुर आकर गजेन्द्र के पिता के यहाँ नौकरी करने लगा था, उस समय सबको उसके सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता हुई थी। गजेन्द्र के परिवार के मुखिया सदैव से बड़े ठाकुर कहलाते आये थे और वह निजी सेवक था उनका। इससे अधिक कि वह जाति का ठाकुर है, किसी को और कुछ मालूम न हो सका।

गाँव में एक सजातीय नवयुवक का आगमन स्वतः कन्याओं के पिताओं के मन में और विशेषतः अविवाहित युवतियों के मन में एक भावी सम्बन्ध की आशा का संचार कर देता है। फिर आज का बूढ़ा रमेसर काका उस समय हृष्ट-पुष्ट दस-पाँच गाँव के पहलवानों को अखाड़े की मिट्टी चखाने वाला सुन्दर एक पच्चीस वर्ष का नवयुवक था।

बहुतों ने उससे उसके वंश के सम्बन्ध में जानना चाहा। परन्तु वह इस प्रश्न का उत्तर सदैव मौन भाव से देता रहा। कुछ लोगों ने साहस करके उससे विवाह का प्रस्ताव भी किया, किन्तु उसने उन्हें भी विनम्रता से नकारात्मक उत्तर दे दिया। एकाध ने बड़े ठाकुर के समक्ष भी प्रस्ताव रखा, किन्तु उनको भी निराशा ही हाथ लगी।

वस्तुतः उसका भेद केवल बड़े ठाकुर को मालूम था। वह अपने गाँव के जमींदार का क़त्ल कर के भागा था। एक रात्रि हरिपुर में वह विश्राम करने के हेतु मन्दिर में रुका और वहीं उसकी भेंट बड़े ठाकुर से हो गयी थी। बड़े ठाकुर को उसने अपना यह भेद बता दिया कि वह खून करके आया है; क्योंकि एक रात जमींदार ने उसकी बहन को धोखे से अपने कमरे में बन्द कर लिया था और वह प्रातः वहाँ से निकलकर कुएँ में कूद पड़ी थी।

बड़े ठाकुर ने उसे अभयदान दिया और सदैव अपनी शरण में रखने का वचन दिया। दोनों के हृदय मिल गये और दोनों एक-दूसरे के लिये अपनी जान निछावर कर देने को तत्पर हो गये। ठकुरानी की मृत्यु के बाद वह परिवार का सदस्य बन गया। उसने भी इस परिवार को

अचानक अन्धकार के हृदय को चीरती हुई एक तीव्र रेखा क्षितिज पर आलोकित हो गयी। क्षण-मात्र के लिए सम्पूर्ण वन-प्रदेश ज्योतिर्मय हो गया। कानों के परदे को फाड़ देने वाले भयानक गड़गड़ाहट से शान्त वातावरण गूंज उठा।

रमेसर ने देखा कि सामने एक बरगद का विशाल वृक्ष है और एक व्यक्ति उसके नीचे अपने को वर्षा से बचाने के असफल प्रयास में तने के समीप खड़ा है। साथ ही उसकी दृष्टि पड़ी एक विशालकाय अजगर पर, जो ठीक उसी व्यक्ति के ऊपर डाल से लटक रहा था, जीवन और मृत्यु में एक क्षण का अन्तर था। मुंह बाए हुए अजगर उदरस्थ करने के लिए केवल एक हाथ ऊपर तैयार था।

एकाएक रमेसर जीवन का मोह छोड़कर, दैवी-प्रेरणा से उछला, उस मोह को, जिसके कारण वह इस दशा को प्राप्त हुआ था। उसकी लाठी हवा में घूमी और अजगर धम्म शब्द के साथ धरती पर गिर गया। दूसरी ओर उसने इस अनजान व्यक्ति को खींचा।

एक भीषण नाद से रमेसर की चीख हवा में गूंज गयी—'साँप।'

वह व्यक्ति इस आकस्मिक टक्कर से पहले तो घबरा गया और उसके कंठ से भी भयाक्रान्त चीख निकल गयी। परन्तु दूसरे ही क्षण उसने परि-स्थिति पर नियन्त्रण पा लिया। उसके हाथ से तलवार निकल पड़ी।

दोनों सतर्क हो गए। मन में एक-दूसरे के प्रति संशय होते हुए भी सम्मिलित रूप से मृत्यु के दूत से लड़ने को प्रस्तुत हो उठे।

दोनों ने गिरने के शब्द के सहारे यमदूत से दूर दूसरी दिशा में भागने का प्रयास किया। संकट अनजाने ही अपरिचित और अनचीन्हों को एक श्रृंखला में बाँध देता है। आपत्ति काल में शत्रु भी मित्र हो जाते हैं और अपने भी साथ छोड़ देते हैं। परन्तु जो साथ पकड़ते हैं उनमें से कुछ सदैव के लिए साथी बन जाते हैं।

पहले तो रमेसर और कल्लू ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ा, फिर वे भागने लगे। दोनों मौन थे। दोनों थके थे। दोनों लड़खड़ाते, एक-दूसरे

को सहारा देते लम्बे-लम्बे डग भरते उन्मत्त शराबियों की भाँति चल रहे थे। केवल एक विचार उन दोनों के मस्तिष्क पर छाया हुआ था कि इस खतरे की परिधि के बाहर दूर—कहीं दूर निकल जाना है।

एकाएक भागने में उनको दिशा का ज्ञान न रहा। अकस्मात् उन्होंने अपने को नदी तट पर ऐसी जगह पाया जहाँ जंगल समाप्त हो गया था। वर्षा थम चुकी थी। भीगी-भीगी बालू पर उनके पैर पड़े तो दोनों वहीं बैठ गए। अब मेघाच्छादित आकाश में पूर्व की ओर हल्का उजाला फैलने लगा था। दोनों ने ही पड़े-पड़े वातावरण का अध्ययन किया। वर्षा ऋतु की उफ़नती हुई नदी हरहरा कर अपनी शक्ति का उद्घोष कर रही थी। एक तट पर यह दोनों और जंगल था, दूसरे तट पर दूर-दूर तक खेत लहलहाकर जीवन की सूचना दे रहे थे।

उगते हुए दिन के उजाले ने उन दोनों के समक्ष दूसरा भय उपस्थित कर दिया। दोनों का मन एक-दूसरे के प्रति आशंकित हो उठा। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। एक-दूसरे से नज़रें उलझ गयीं मानो दोनों एक-दूसरे के मन में उठते हुए विचारों को पढ़ लेना चाहते हों।

परिस्थिति ने उन्हें मिलाया और उसी ने एक-दूसरे को एक-दूसरे पर विश्वास करने के लिए विवश कर दिया। फिर दोनों का परिचय हुआ। दोनों की स्थिति लगभग एक-सी थी। दोनों न्याय और क़ानून से भागकर छिपना चाहते थे। लेकिन बहुत कुछ समानता होने पर भी थोड़ी-सी विभिन्नता अवश्य थी। एक ने क़ानून को अपने हाथ में लिया था पापी को दंड देने के लिए और दूसरे ने विवश होकर पेट भरने के लिये।

एक को अब क़ानून तोड़ने की कोई आवश्यकता न रह गयी थी, दूसरे को उदरपूर्ति के लिए प्रतिदिन क़ानून तोड़ना पड़ता था।

कल्लू ने संसार और समाज का नियम उस समय तोड़ा था जब भूख से तड़प-तड़प कर उसकी पत्नी मर गयी थी और उसका एक मास का शिशु दूध के अभाव में भूख से चिल्ला रहा था।

धैर्य की एक सीमा होती है। दुःखी मन और तन अबोध शिशु का मार्मिक क्रन्दन न सहन कर सका। परन्तु संसार हृदयहीन शिलाखंडों पर आधारित है। वह न पिघला, न पसीजा और कल्लू को एक चुल्लू दूध दुह लेने के जुर्म में उसके विपक्षियों ने उसे थाने में बन्द करा दिया। वह चीखता रहा, चिल्लाता रहा। परन्तु न उसकी प्रत्यक्ष पुकार किसी ने सुनी और न उसकी झोंपड़ी में गूंजती हुई भूखी अप्रत्यक्ष आत्मा की पुकार !

दूसरे दिन न्यायाधीश के सम्मुख जब वह उपस्थित किया गया तो उसने रो-रोकर सारी घटना कह सुनाई। न्यायाधीश के आदेश पर क़ानून के रखवाले उसकी झोंपड़ी की ओर दौड़ पड़े।

माता और पुत्र के दो शव ठंडे और अकड़े पड़े थे। जो संसार को ललकार रहे थे, उससे पूछ रहे थे—'बोलो, ऐसे में अगर कल्लू ने चोरी की, तो क्या जुर्म किया ?'

सचमुच कोई जुर्म नहीं किया और वह छोड़ दिया गया।

कचेहरी से निकल कर कल्लू वापस झोंपड़े में नहीं गया। जीवन का तो एक मोह भी होता है, मृतक से क्या मोह ?

इस घटना को चार वर्ष से अधिक हो गए थे, और कल्लू का जीवन एक दस्यु के जीवन में बदल गया था।

दोनों ने एक-दूसरे को जाना-पहचाना। परन्तु न तो कल्लू दस्युवृत्ति छोड़ने को प्रस्तुत हुआ और न रमेसर ने उस जीवन को अपनाया।

अब कल्लू और रमेसर एक-दूसरे को आत्मिक सहारा देते हुए बढ़ चले।

रमेसर को हरिपुर में आसरा मिला और कल्लू को चम्बल की बीहड़ घाटी में।

उनकी अपनी दृष्टि में न रमेसर हत्यारा था और न कल्लू चोर। एक जाति का ठाकुर और दूसरा पासी, सहानुभूति धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तित हो गयी। अलग होकर भी वे आपस में मिलते रहे।

कल्लू साल में एक बार रमेसर से मिलने हरिपुर आता। दोनों मित्र गाँव के बाहर वाले मन्दिर में मिलते जहाँ से वे अलग हुए थे। और रमेसर भी साल में एक बार चम्बल की घाटियां में जाता और वे दोनों एक-दूसरे को गले लगाकर पुरानी यादों को दोहराते। सच तो यह था कि दोनों एक-दूसरे को अपना पूरक मानते थे। सिद्धान्त की विभिन्नता उनके व्यवहार में कोई कटुता न उत्पन्न कर सकी थी। वे इन बहुतेरे नेताओं से ऊपर थे, जिन्हें देश की एकता की लाज-हरण तक का कभी ध्यान नहीं रहता।

आज रमेसर अपने सामान्य नियमों के विरुद्ध एक वर्ष में दूसरी बार चम्बल नदी के शीतल जल में स्नान कर रहा था।

खिन्न और उदास रमेसर को देखते ही कल्लू तत्काल समझ गया कि रमेसर का आगमन निष्प्रयोजन नहीं है। परन्तु कोई उतावली न दिखा कर वह शान्त भाव से उसके बोलने की प्रतीक्षा करने लगा।

रमेसर ने सम्पूर्ण वस्तुस्थिति से उसे अवगत कराते हुए कहा कि वह इसी समय चतुरसिंह से बदला लेने में असमर्थ है; क्योंकि वह अपने गज्जू भैया को छोड़कर चतुरसिंह का पीछा करने की परिस्थिति में नहीं है।

कल्लू ने सौगंध खायी और प्रतिज्ञा की कि अब वह अपने धन्धे को बदल देगा। उसके इस जीवन का लक्ष्य इस क्षण से रमेसर का ऋण चुकाना मात्र रह जायगा। तत्पश्चात् वह रमेसर के साथ मिलकर अपने जीवन के बाक़ी दिन भगवत् भजन में काट देगा।

और दूसरे दिन रमेसर जो वापस लौटा, तो वह अकेला न था।

हरिपुर में दोनों साथ आये। और कल्लू चार दिवस पूर्व ग़ायब हुये चतुरसिंह का सूत्र ढूंढ़ने लग गया।

७

कुनमुनाहट भरी कराह का शब्द चतुरसिंह के कान में पड़ा तो व
सोते से जाग गया । प्रातः का सूर्य चमक रहा था । उसने देखा कि कामि
होश में आ रही है । साँसों का आरोह-अवरोह अपनी स्वाभाविक गति
वक्षस्थल के उठने और गिरने से स्पष्ट परिलक्षित हो रहा था ।

निद्रावस्था में नारी का स्वाभाविक सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है
एक क्षण वह अपने स्वप्न को साकार रूप में सम्मुख देखता रहा । स्ना
विक उत्तेजना और जागरण के खुमार के कारण अचानक उसने सोचा कि
कहीं सचमुच वह स्वप्न तो नहीं देख रहा है । उसने हथेली से अपन
दोनों आँखें मलीं । एक क्षण पश्चात् तन्द्रा दूर हो गयी और उसे सार
घटना स्मरण हो आयी ।

निमिष मात्र में उसका मस्तिष्क सजग हो गया । यहाँ तक सफलत
तो मिली, अब ? इस स्थल पर उसकी योजना समाप्त हो चुकी थी
भविष्य क्या और कैसे एक जटिल प्रश्न बन कर उसके सामने खड़ा हो
गया । उसने सतर्क हो कर कामिनी को पुनः देखा और उसे कुछ ऐस
आभास हुआ कि अब इसे होश में आने में अधिक विलम्ब नहीं है ।

पूर्व की ओर दीवार पर दो खिड़कियों के मध्य एक टीन का कैलेण्डर
टँगा हुआ था । महर्षि विश्वामित्र के सम्मुख मेनका नृत्य कर रही थ
और उसी के सुन्दर चरणों के समीप माह, दिवस और तिथि की सूचन

देने के लिये लाल रंग के टुकड़ों पर काले अंक दीख रहे थे। प्रतिदिन उनको बदलना पड़ता था। पूर्व दिवस की तिथि देखते-देखते उसके अधरों पर मुसकान फैल गयी।

वह तुरन्त कुर्सी से उठकर कैलेण्डर के समीप जा पहुँचा। जिस समय वह वहाँ से लौटा तो रविवार के स्थान पर मंगलवार का कार्ड लगा था और पांच तारीख़ की जगह सात। अपने चमत्कार से चतुरसिंह ने सोमवार तारीख़ छः को उस कमरे में आने ही न दिया। उसकी योजना थी कि कामिनी के जीवन में यह चौबीस घंटे एक भ्रम उत्पन्न कर देने को यथेष्ट होंगे।

इसके पश्चात् वह अन्य तैयारियों में संलग्न हो गया। तुरन्त आवाज़ देकर अपने साथ आये हुए दो-व्यक्तियों में से उसने एक को बुलाया।

भगवानदीन ने कमरे में प्रवेश किया तो उसे वहीं ठहर जाने का संकेत करते हुए चतुरसिंह उठकर स्वयं उसके समीप पहुँच गया। धीरे से फुसफुसा कर उसने सारी योजना समझा दी। साथ ही ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि कामिनी के सम्मुख केवल इन दोनों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से भेंट ही न हो, जिसमें किसी प्रकार से भेद खुलने का भय न रह जाय।

कामिनी ने करवट बदली। चतुरसिंह चाय लाने का आदेश दे झट कामिनी के पास पहुँच गया। कुछ देर वह खड़ा देखता रहा, फिर सुराही से गिलास में जल उँडेल कर वह कामिनी के मुँह पर चुल्लू भर-भर कर छींटें मारने लगा। छींटें कभी पलकों के ऊपर पड़ते, तो उसके कपोल, मुख और अधर पल्लवों को भी न छोड़ते। एकाएक कामिनी सिहरन से भर गयी। वह स्पन्दित हो उठी।

क्लोरोफ़ार्म का प्रभाव समाप्त हो चुका था। केवल उसकी तन्द्रा शेष थी। इसलिये चतुरसिंह के उपचार ने तत्काल उसे सचेत कर दिया।

एकाएक थकी-थकी बोझिल पलकें खोलते कामिनी ने अपने को एक अपरिचित वातावरण में पाया। उसकी दृष्टि ज्योंही चतुरसिंह पर जा

पड़ी, त्योंही उसकी स्मृति अग्नि पर आहुति पड़ने के समान दहक उठी।

वह मन-ही-मन कांप उठी। जिज्ञासा को शान्त न कर सकने के कारण पहले तो परिस्थिति के सम्बन्ध में उसने कुछ जानने की चेष्टा की। उठने का असफल प्रयास कर वह चतुरसिंह की ओर उन्मुख हो उसकी दृष्टि में दृष्टि डाल कर विचित्र लाचार स्वर में बोली—"चतुर···!"

वह अधिक कुछ न बोल सकी। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होकर उसके म्लान श्वेत कपोलों पर लुढ़क चले।

चतुरसिंह को अधिक कुछ सुनना न था। वह परिस्थिति को अपने पक्ष में समेट लेना चाहता था। गर्म लोहा ही अपनी इच्छानुसार तोड़ा-मोड़ा जा सकता है। उचित समय पर उचित आघात लाल-लाल पिघले लोहे को अपना स्वरूप अपनी कठोरता को भूलने के लिए विवश कर देता है।

खिलाड़ी चतुरसिंह वाणी में संसार भर की करुणा भर कर, कृत्रिमता को सत्यता की वेश-भूषा में सजा कर, अवरुद्ध कंठ से बोला—"सब कुछ समाप्त हो गया कामिनी।"

कथन के साथ उसके नेत्रों से अबाध गति से जल प्रवाहित हो चला। यहां तक कि नाटकीय ढंग से उसने हाथ भी हिला दिये।

फिर एक क्षण रुककर पुनः बोला—"प्रभु की इच्छा ! हरिपुर का अस्तित्व···अब केवल कुछ जले और अधजले अवशेष के रूप में रह गया है। गजेन्द्र और तुम्हारे पिता के साथ-साथ चौदह पन्द्रह प्राणी आग को बुझाने के प्रयत्न में···।"

चतुरसिंह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि बीच ही में कामिनी चीख उठी—"ऐसा मत कहो, ऐसा···!"

भावना के आवेग में उसकी सुन्दर ममतामय मुखाकृति विकृत हो गयी।

चतुरसिंह ने आगे बढ़ कर सांत्वना देने के भाव से उसके मस्तक पर हाथ धर कर थपथपा दिया। कामिनी फफक-फफक कर फूट पड़ी। उसने

अपने सर को तकिये पर पटक दिया। तुरन्त ही चतुर ने आगे बढ़ कर उसे अपने वक्ष से चिपका लिया और वह भी सहारा पा प्रतिदान में उसके कन्धे पर सिर रख कर सिसकने लगी।

सहसा हिचकी लेती हुई वह बोली—"मुझे भी वहाँ ले चलो। मैं उसी आग में जल कर प्राण त्याग दूंगी।"

चतुरसिंह ने उसे उठा कर बैठा दिया और अपने हाथों से उसके कपोल को पोंछते हुए उत्तर दिया—"अब वहाँ क्या रक्खा है! निर्मम प्रकृति के सम्मुख मनुष्य कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता। अब तो धैर्य्य ही रखना हमारा धर्म है।"

"मैं गजेन्द्र के बिना जीवित नहीं रह सकती। उसी की चिता पर मैं अपने प्राणों की आहुति दूंगी।"

"गजेन्द्र की चिता की राख भी अब ठंडी हो चुकी होगी।"

"तो क्या मैं उसका अन्तिम दर्शन भी न कर सकूंगी।"

"नहीं। परसों से तुम बेहोश थीं। शव को कहाँ तक रखा जा सकता था। कौन रखता? हर व्यक्ति अपने-अपने संकट-निवारण में लगा हुआ था।"

"उफ़...! क्या सोचा था और क्या हो गया? मैं आत्महत्या कर लूंगी। चतुर, मैं मर जाऊँगी। गजेन्द्र के वियोग में मेरा जीवन स्वयं ही बुझ जायगा।"

पागल न बनो कामिनी। तुमको जीना है। किसी अन्य के लिये न सही, अपने स्वयं के लिये भी न सही, कम-से-कम मेरे लिये ही सही।"

कामिनी ने चीख कर कहा—"तुम...क्या अन्य लोगों की भाँति तुम भी पशु हो! मृत्यु की इस विभीषिका के अन्तराल में तुम्हें शृंगार और विलास सूझ रहा है!"

"यह शृंगार और विलास का प्रश्न नहीं। प्रश्न है जीवन का; सांत्वना और विवेक के सहारे का। मनुष्य न अपनी इच्छा से जीता है और न अपनी इच्छा से मरता है। जीवन और मरण प्रकृति के अधीन

है। जब मनुष्य मरना चाहता है तो उसे जीना पड़ता है और जब वह जीना चाहता है तो क्रूर और निर्मम नियन्ता उसे मृत्यु के हाथों में सौंप देता है।"

चतुरसिंह के मुंह से जीवन-दर्शन के गहनतम तथ्य को सुन कर कामिनी अवाक् हो गयी। उसे इस बात का आभास भी न था कि वह जीवन के रहस्य को इस प्रकार सरल ढंग से रख देगा जिसका उत्तर ही वह न दे पायेगी।

तब अत्यन्त दुःखी स्वर में वह बोली—"यह मैं मानती हूँ। जीना सम्भव है मनुष्य के हाथ में न हो परन्तु मरना तो है ही। केवल एक क्षण का आत्म-विश्वास और दृढ़-निश्चय यथेष्ट होता है और कुयें, नदी, तालाब की गोद को अपना कर अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। जरा-सा विष या मिट्टी का तेल और दियासलाई की एक तीली सदैव-सदैव के लिए धधकते हृदय को शान्ति प्रदान कर सकती है। अन्य लोगों के विषय में मैं कुछ कह नहीं सकती; परन्तु अपने सम्बन्ध में तो कह ही सकती हूँ कि मुझमें आत्म-विश्वास और दृढ़-निश्चय का रंचमात्र भी अभाव नहीं है।"

"मैं मानता हूँ, मैं जानता हूँ कि तुम आत्महत्या करने का निश्चय कर लोगी तो वह अवश्य पूर्ण होगा। परन्तु मैं केवल इतना कह रहा था कि उसके पूर्व प्रस्तुत विषय पर शान्त और संयत भाव से विचार कर लेने में क्या हानि है?"

चतुरसिंह ने कामिनी को पुनः निरुत्तर कर दिया। अगर उसने आत्म-हत्या के विरुद्ध उसे रोकने का किंचित प्रयास भी किया होता, तो वह उससे लड़ जाती और तर्क करती, परन्तु उसके इस उत्तर को सुनकर वह एकाएक हतप्रभ् हो उठी।

उसके मन में आया—'चतुरसिंह शायद ठीक कह रहा है। विचार करने के बाद ही कोई निश्चय करना चाहिये। फिर एक बार दृढ़-निश्चय

कर लेने के बाद प्राणपण से उसे कार्यान्वित करने का प्रयास करना चाहिये।'

उसके मन का तार्किक सांसारिक ज्ञान में पला था। अतः वह बोला —"पहले सोच-समझ लो।"

अतः वह बोली—"निश्चय मैं कर चुकी हूँ और वह अपने स्थान पर अडिग है परन्तु तुम कहते हो तो मैं विचार कर लूँगी।"

"ऐसे नहीं। कोई घड़ी-साइत तो निकली नहीं जा रही है। मुँह-हाथ धोकर चाय पी लो फिर स्थिरचित्त होकर विचार करो।"

अनुभव ने चतुरसिंह को सिखा दिया था कि उत्तेजना में पड़ कर ही मनुष्य दुष्कर, असाध्य एवं अनुचित कार्य कर बैठता है। अतः उसने कामिनी को धरातल की उस पृष्ठभूमि पर ला खड़ा करना चाहा जहाँ से उसकी उत्तेजना समाप्त हो जाय और वह जीवन के कटु सत्य से समझौता करने के लिये विवश हो जाय।

विचारमग्न कामिनी को उसी भाँति छोड़ कर वह कमरे के बाहर आ गया और उसने भगवानदीन को पुकारकर चाय लाने का आदेश दिया। कमरे में प्रवेश करने के पहले उसने देखा कि कामिनी उसी प्रकार विचारलीन बैठी है।

फतेहपुर बड़ा शहर नहीं था; परन्तु गाँव भी न था। वहीं पली हुई कामिनी चाय की आदी बचपन में ही हो गयी थी। चतुरसिंह को इस बात का ज्ञान था। उसने इसी बात का लाभ उठाने का निश्चय किया। वह कमरे में आकर चाय-पान के प्रबन्ध में लग गया।

सर्वप्रथम उसने एक गोल-मेज़ को अपनी कुर्सी और कामिनी के पलँग के बीच में रख दिया। जेब से रूमाल निकाल कर मेज पर जमी हुई धूल को साफ़ किया और चुपचाप कुर्सी पर बैठ कर अँगुली के नाखूनों से एक लोक-प्रिय गीत की धुन की लय बजाने लगा।

चाय पीने का निमंत्रण, मेज़ का रखना और उसके आगमन की प्रतीक्षा ने कामिनी के मन में चाय पीने की इच्छा उत्पन्न कर दी।

ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था उसकी अधीरता बढ़ती जा रही थी।

उसी क्षण भगवानदीन सुन्दर चायदानी और प्यालों से सजी हुई ट्रे लेकर कमरे में आया और मेज पर रखकर उसने एक कप-प्लेट कामिनी और दूसरा चतुरसिंह के सम्मुख रख दिया। चायदानी उठाकर वह प्यालों में उँडेलना चाहता ही था कि चतुरसिंह ने रुकने के लिये संकेत किया तो वह रुक गया।

अब चतुरसिंह बोला—"तुम जाओ, मैं चाय बना लूंगा।"

शराबी के सम्मुख शराब रक्खी हो तो उसका नियंत्रण टूट जाता है। नित्य न पीने की प्रतिज्ञा करने पर भी वह समय हो जाने पर उसे तोड़ देता है।

रात्रि की थकान, कृत्रिम साधनों से उत्पन्न की गयी बेहोशी और मानसिक उथल-पुथल ने कामिनी के मन में चाय की इच्छा इस सीमा तक उत्पन्न कर दी कि वह मन-ही-मन सोचने लगी कि चतुरसिंह बैठा क्यों है? ...चाय झट से बना कर उसे दे क्यों नहीं रहा है? .. वह स्वयं ही क्यों न संकोच त्याग कर चाय बनाना प्रारम्भ कर दे।

अब उसके मन में चाय के अतिरिक्त अन्य कोई विचार न रह गया था। तन की प्यास के सम्मुख मन की प्यास गौण हो गयी थी।

मनोविज्ञान का ज्ञाता होने के कारण ही चतुरसिंह नेता बन गया था। उसी के सहारे वह कामिनी पर भी विजय प्राप्त करना चाहता था। उसने धीरे से चायदानी का ढक्कन खोला। चम्मच से गहरे सुनहरे रंग की चाय को चलाया और एक चम्मच चीनी मिलाकर ढक्कन बन्द कर दिया। इस कौशल के साथ उसने इस क्रिया को सम्पन्न किया कि ताजी चाय की सुगन्ध कामिनी के नासापुट में पहुँच गयी। सुगन्ध और रंग ने पेट्रोल पर जलती हुई दियासलाई का कार्य किया। कामिनी की इच्छा अधीरता की सीमा पर पहुँच गयी। उसके नेत्र एक चाह-भरी लोलुपता से चमक उठे।

चतुरसिंह ने देखा, समझा और धीरे से बोला—"क्या निश्चय किया

तुमने ? आत्महत्या के कई तरीके हैं। गले में फन्दा लगा कर, पानी में डूब कर, आग में जल कर व विषपान के द्वारा।"

प्रत्युत्तर में कामिनी ने केवल "हूं" कहा और उसकी दृष्टि चाय की धार की ओर जम गयी। चतुरसिंह ने केवल अपने प्याले को चाय से भरा और चायदानी नीचे रख दी। चीनी और दूध मिलाकर उसने एक सिप लिया। तृप्ति की चटकार भरते हुये वह बोला—"तुम तो चाय पियोगी नहीं। शीघ्र निर्णय कर लो जिसमें मैं प्रबन्ध करके फुरसत पाऊँ।"

कामिनी का मन कांप उठा। विचार आया—'हाँ, आत्महत्या···उसमें समय तो लगेगा ही। तब तक चाय क्यों न पी ली जाय ?

यह चाय के लिये पूछ क्यों नहीं रहा है ? इसने अभी से मुझे मृत समझ लिया है। हाय आज मैं इतनी उपेक्षित हो गयी हूँ···!'

सहसा उसकी आँखें भर आयीं।

उसके अन्तर्मन को एक धक्का लगा—'कल मुझे कोई स्मरण करके दो आँसू बहाने वाला भी नहीं रहेगा। गजेन्द्र की याद करने वाला भी कौन होगा ? भाग्य की विडम्बना कितनी क्रूर और निर्मम है।'

तभी चतुरसिंह बोला—"कुछ समझ में न आ रहा हो तो पहले चाय पी लो फिर सोचना। कोई ऐसी जल्दी तो है नहीं ?"

कामिनी के मुँह से अनजाने ही धीरे से निकल गया—"हाँ, कोई जल्दी नहीं है।"

कथन के साथ ही उसकी समझ में आया कि चतुरसिंह सोचेगा कि मैं डर रही हूँ। वह तुरन्त बोली—"यह तो निश्चय है कि मुझे आत्म-हत्या करनी है। केवल साधन के विषय में तय करना शेष है।"

उसके सम्मुख चाय तैयार कर प्याला प्रस्तुत करता हुआ चतुरसिंह बोला—"ठीक है। तुम समझदार हो, अपना भला-बुरा, आगा-पीछा सोच-समझ सकती हो। मैं तुम्हें रोकता नहीं हूँ। तुम सर्वथा स्वतंत्र हो, जो इच्छा हो करो। परन्तु चाय पी लो। जब तक आत्महत्या नहीं कर लेतीं तब तक तन को कष्ट देने में क्या लाभ ?"

कामिनी ने बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप कप उठा कर पीना आरम्भ कर दिया। चतुरसिंह को इसी क्षण की अपेक्षा थी। कामिनी के मुखमण्डल पर सन्तोष की आभा परिलक्षित हो उठी।

अत्यन्त शान्त और संयत वाणी में उपदेश देने की मुद्रा धारण कर वह बोला—"ऐसा साधन विचार करके स्थिर करो जिसमें कम-से-कम कष्ट हो। मैंने सुना है कि मृत्यु के पहले जब दम घुटने लगता है उस समय बड़ी भीषण पीड़ा होती है।"

कामिनी का मन-प्राण काँप उठा। पीड़ा की कल्पना भाँति-भाँति के स्वरूप धारण कर उसके सम्मुख नाचने लगी।

तब सहसा उसके मन में आया कि अब चतुरसिंह चुप हो जाय, उसे अकेला छोड़ दे।

तभी वह फिर बोला—"साधन अचूक होना चाहिये। भूल से कहीं कोई त्रुटि रह गयी तो पुलिस तुरन्त गिरफ्तार कर लेगी और आत्महत्या के जुर्म में तुम्हें लम्बी सजा भुगतनी होगी।"

"सजा"...कामिनी विस्मय के साथ कम्पित हो उठी।

"पानी कभी-कभी धोखा दे देता है। प्रायः डूबते हुए को लोग निकाल लेते हैं। प्राण भी एक दम नहीं निकलते। दम घुटने का दर्द, यन्त्रणा से घबरा कर मनुष्य स्वयं तैरने लग जाता है। तुम तालाब में तैरती रही हो, तो क्या कुएँ और नदी में न तैर लोगी? पानी में दम घुटने का अनुभव तो तुमको है ही। अब रहा आग में जल कर मरने का प्रश्न। उसमें समय बहुत अधिक लगता है, फिर प्राण निकलने में सम्भव है, समय अधिक लगे। कभी-कभी अस्पताल में आग से जले हुए लोग महीनों तड़पा करते हैं। मरते ही नहीं, बच भी जाते हैं। कुरूप होकर जीने की कल्पना मात्र से मेरा मन, तन-बदन सिहर उठता है।"

कामिनी का मन काँप उठा। उसका तन सिहर उठा। हाथ काँपने से कप-प्लेट में टकराकर खड़खड़ा उठा।

चतुरसिंह बोले जा रहा था—"रेल से कटकर मरना अधिक

सुविधाजनक होगा। बस रात्रि के नीरव अंधकार में आंख मूंद कर मौत-सी सर्द पटरी पर लेट जाना! एक ही झटके में दो खण्ड! यही ठीक रहेगा। तुम आज रात को आत्महत्या कर ही डालो!"

एक क्षण रुक कर वह पुनः बोला—"केवल एक बात का ध्यान रखना कि झटका लगने से तुम इधर-उधर सरक न जाओ, अन्यथा अंग-भंग होकर रह जायगा और मुक्ति न पा सकोगी! तुमसे ठीक से मरते भी न बनेगा। विष-पान क्यों न कर लो?"

कामिनी का अन्तराल निराशा से भर गया था। उस से सोचने-विचारने की शक्ति समाप्त हो गयी थी। वह चुपचाप चतुरसिंह की बातें सुन रही थी। सहसा उसने आंख उठाकर चतुरसिंह की आँख में देखा। उसके नेत्रों में उपहास स्पष्ट झलक रहा था। उसने सकुचा कर दृष्टि हटा ली।

चतुरसिंह बोला—"विष का प्रबन्ध कुछ कठिन है। एक भय उसमें भी है कि मिलावट करने वालों ने अगर शुद्ध न दिया, तो सब गड़बड़ हो जायगा!—बड़ी कठिन समस्या तुमने उत्पन्न कर दी है। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम्हें प्रथम प्रयास में ही सफलता मिल जाय। अंग-भंग होकर या कुरूप होकर जीना पड़ा, तो जीवन दुष्कर हो जायगा!"

कामिनी के मन में आया कि सचमुच मरना आसान नहीं है। परन्तु साहस एकत्र कर वह बोली—"जब मरना ही है तो कोई भी साधन अपनाया जा सकता है।"

"यही मैं भी कह रहा हूँ। मैं केवल इतना चाहता हूँ कि तुम्हें इस पवित्र कार्य में सफलता अवश्य मिले और कष्ट अधिक भी न हो।"

कामिनी के अधरों पर अचानक हास की रेखाएं झलक उठीं। बोली—"तुम तो मजाक पर उतारू हो। लेकिन मैं...मैं चिरन्तन शान्ति के लिये असीम पीड़ा को गले लगाने को तैयार हूँ।"

"कामिनी, तुम मेरी भावनाओं से परिचित हो। फिर भी तुम चाहे

जो समझो, पर मैं तुम्हारा कष्ट नहीं देख सकता। मृत्यु के पूर्व तुम तड़पती रहो यह मुझे स्वीकार नहीं। मैं आत्महत्या से तुम्हें रोक नहीं सकता; क्योंकि इसका अधिकार तुमने मुझे नहीं दिया है।"

उसके मन में आया कि रोक नहीं सकता या रोकना नहीं चाहता।

तभी वह पुनः बोला—"दुःख तो मुझे इसी बात का है कि तुम्हें पता नहीं मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ। काका ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली थी। मेरा विवाह तुम्हारे साथ हो जाता, अगर तुम गजेन्द्र को वरण न कर चुकी होतीं। तुमको जीवन भर वियोग की अग्नि में जलना न पड़े, इसलिये मैं भी यही चाहता हूँ कि तुम आत्महत्या करके वियोग के इस दारुण दुःख से छुटकारा पा जाओ।"

घात-प्रतिघात के इस खेल को कामिनी समझ न सकी। गजेन्द्र की चर्चा करके उसने उसकी दुखती रग को फिर छेड़ दिया था। एकाएक उसकी आँखें सजल हो उठीं। वियोग से या विवशता से, वह स्वयं इसका निर्णय नहीं कर सकती थी।

"यह कंचनकाया बड़े भाग्य से मिलती है, कामिनी डार्लिंग! तन का सुख संसार में दुर्लभ होता है। दुःख की औषध स्वयं समय है। काया नश्वर है। पति या पत्नी के मर जाने पर भी कोई आत्महत्या तो नहीं कर लेता। इकलौती संतान के न रह जाने पर भी मृत्यु के द्वार पर खड़े बूढ़े असहाय व्यक्ति भी जीते रहते हैं। तुम्हारा प्रेम क्या केवल गजेन्द्र के तन से था, जो उसके नष्ट हो जाने पर तुम अपने तन को नष्ट करके उसके प्रेम को समाप्त कर देना चाहती हो, या उसकी आत्मा से था। सच-सच कहो। तुम जीवित रहकर उसकी स्मृति का मन्दिर बना सकती हो। आत्मा अमर है और प्रेम अमर होता है। आवेश में उठाया हुआ पग हो सकता है आगे चलकर दुःख का कारण बन जाय।"

"मेरा प्रेम आत्मा का है। इसी कारण मैं इस तन के पिंजड़े से उसे मुक्त कर देना चाहती हूँ, जिससे हमारा मिलन हो जाय।"

"परन्तु तुम एक बात भूलती हो डार्लिंग। आत्मघात से मरा हुआ

प्राणी कभी मोक्ष नहीं पाता। उसकी आत्मा भटकती रहती है। तुम्हारा विचार गलत है कि मिलन हो जायगा। हाँ, तुम जब अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरोगी, उस समय सम्भव है कि तुम्हारी आत्मा उनकी आत्मा से मिल जाय।"

कामिनी का निश्चय पहले ही रेत के महल की भाँति ढह चुका था। यह कथन सुनकर उसका संशय पुनः जागृत हो गया।

वह बोली—"मुझे बहकाओ मत चतुर। मैं किसी भी दशा में जीवित रहना नहीं चाहती।"

"मैं कब कहता हूँ कि तुम जीवित रहो। मैं इस विषय में यथा-सम्भव तुम्हारी सहायता करने के लिये प्रस्तुत हूँ। मैंने तुमसे प्रेम किया है। और इसीलिये मैं तुमको सुखी देखना चाहता हूँ।"

"तो तुम मुझे मर जाने दो।"

"असफलता का नैराश्य कहीं जीवन को विषमय न बना दे बस मैं यही सोचता हूँ। अच्छा, अगर तुम्हें स्वीकार हो तो मैं तुमको आत्महत्या के पाप से बचा लूँ।"

"कैसे ?"

"केवल इस जन्म में ही नहीं। जन्मजन्मान्तर तक रौरव नरक में जलना मुझे स्वीकार है, अगर तुम्हें सुख मिल जाय। मैं तुम्हारी हत्या ...।"

जीवन का मोह चीख उठा। आश्चर्य के साथ उसके सूखे मुँह से निकल गया—"हत्या !"

"हाँ, हत्या ! जिस तन की मैंने पूजा की, केवल तुम्हारे संतोष के लिये, उसी को मैं मिटा दूँगा, तुम्हारे सुख के लिये। फाँसी का फन्दा स्वयं अपने हाथ से अपने गले में डाल लूँगा।"

कथन के साथ ही वह झपट कर खड़ा हो गया और इसके पूर्व वह कुछ सोच या समझ सकती उसके दोनों हाथ कामिनी की गरदन पर आ पड़े !

चतुरसिंह ने [कुछ ऐसे नाटकीय ढंग से उसका गला दबोचा कि कामिनी अपना विवेक एवं सन्तुलन खो बैठी। प्राणों का मोह प्रकृतिजन्य है। प्रत्येक जीवधारी उसकी रक्षा प्राणप्रण से करता है। बड़े-बड़े ऋषि मुनि, सन्त, महात्मा भी अपवाद नहीं हैं।

कामिनी समझी कि वह सचमुच ही उसकी हत्या कर देगा। उसने अपनी रक्षा हेतु उसको पीछे ढकेलने की भी चेष्टा की।

शिकंजा कसता गया। कामिनी की श्वास-प्रक्रिया अवरुद्ध होने लगी। भय और घबराहट के कारण उसके मस्तक पर स्वेद-बिन्दु झलक आये।

अस्फुट स्वर से चीखती हुई बोली—"छोड़ो, जंगली"'जानवर"'।"

फिर अब उसका स्वर 'गों-गों' में परिणित हो गया और हृदय की धड़कन चरम सीमा पर पहुँच गयी। उसे प्रतीत हुआ कि रक्तचाप के कारण एक-एक स्नायु एवं धमनी फट जायगी। धीरे-धीरे उसका शरीर शिथिल पड़ने लगा और उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया।

यह सब कुछ था, किन्तु वास्तव में चतुरसिंह ने उसका गला एकदम से इतना नहीं दबा दिया था कि उसका दम निकल जाता। उसका ध्येय केवल उसके मन में मृत्यु के प्रति एक भयंकर डर उत्पन्न करना था जिससे उसे जीवन के प्रति मोह उत्पन्न हो जाय और उसका मरने का विचार जीने की चाह में परिणित हो जाय।

जब कामिनी को प्रतीत हुआ कि अब तो अन्त समीप है। तब कष्ट के कारण छुटकारा पाने की चेष्टा में उसने छटपटाते हुए अपने को बन्धन-मुक्त करने का अन्तिम प्रयास किया।

उचित अवसर और अपने अनुकूल उत्पन्न प्रभाव को देखकर चतुर-सिंह ने अपनी पकड़ ढीली कर दी और उसे बन्धनमुक्त पर अत्यन्त मृदु स्वर में आश्वासन देने के लिये अपने आलिंगन में इस प्रकार आबद्ध कर लिया जिस प्रकार बेबस शिशु को माँ अपने अंक में छिपा लेती है। बोला—"कष्ट अधिक होता है क्या ?"

अवरुद्ध श्वास-नलिका खुल जाने के कारण कामिनी जोर-जोर से

तन का भी।

कामिनी शान्त, मौन, चुपचाप सब सुन रही थी। चतुरसिंह के वक्षस्थल से चिपक कर उसके आलिंगन का सहारा पाकर वह ठीक उसी प्रकार सब कुछ भूल गयी जिस तरह बालक अपनी माँ की गोद में छिप कर, संसार भर के भय से मुक्ति पाकर, समस्त दुःख-दर्द भूल जाता है।

पल भर चुप रह कर चतुरसिंह पुनः बोला—"जरा सोचो, तुम सुन्दर हो, जवान हो। कौन कह सकता है कि पेट की भूख के अतिरिक्त तन की भूख भी तुम्हें न सतायेगी ?"

कथन के साथ ही उसने झट से कामिनी के आरक्त कम्पित अधरों को चूम लिया। अब तक कामिनी की मनोदशा बदल चुकी थी। आत्मा के सम्बन्ध की अनिवार्यता उसके तन से विलग हो गयी थी।

चतुरसिंह ने उसकी प्रशंसा का रूपक इस भाँति रचा कि सारा वातावरण शृंगारमय हो गया।

पुरुष और नारी एक साथ हों, एकान्त हो और अवसर हो, तो प्रकृति विजयी हो ही जाती है। यह मनुष्य स्वभाव है।

कामिनी की सुषुप्त नारी भी जागृत हो गयी और फल यह हुआ कि चतुरसिंह का पुरुष विजयी हो गया !

कामिनी उस क्षण अविवाहित सुहागिन बन गयी।

८

०००

अतीत के दुःख को मनुष्य भविष्य की सुखद कल्पना में डुबो कर भुला देने की चेष्टा करता है। वर्तमान को अतीत के सुख-दुःख से परे रख कर वह भविष्य निर्माण में संलग्न रहता है।

गजेन्द्र को कामिनी के इस प्रकार भाग जाने का अत्यन्त दुःख था। वह जितना अधिक विचार करता था, उसे यही समझ में आता था कि कामिनी स्वयं सब उपद्रव की जड़ है। उसे अपनी हानि का उतना दुःख नहीं था, जितना उस अग्निकाण्ड से उत्पन्न गाँव वालों की दयनीय अवस्था का था। चतुरसिंह के प्रति उसे तनिक भी क्रोध न था। उसके क्षोभ का विशेष कारण अग्निकाण्ड था, जिसे वह इन लोगों की योजना का एक अंश मानता था।

सुखदा के सम्पर्क ने उसके मन में सोये हुए मानव को जागृत कर दिया। वह अधिक-से-अधिक उसके सम्पर्क में रहता और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता कि सुखदा चाहकर भी उससे दूर न रह पाती। उसकी इस योजना में शोभा की अपूर्ण इच्छा भी सहायक हो गई थी। विवाह में इस प्रकार व्यवधान पड़ जाने के कारण वह सोचती थी कि सम्भव है अब सुखदा का विवाह गजेन्द्र के साथ सम्पन्न हो जाय। इस कारण वह स्वयं ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करती रहती थी जिससे उन दोनों का सम्पर्क बढ़े और अधिक दृढ़ हो जाय।

रमेसर के वापस आने पर शोभा ने, अपने पति कुंवरसिंह के प्रस्थान के पूर्व, उसको अपनी इच्छा से अवगत करा दिया।

उसने कहा—"काका, तुम्हारे अनुरोध पर हम लोग रुक गये। दो-चार दिन अभी मैं और सुखदा दोनों जन बने भी रहेंगे। परन्तु सदैव रहना तो सम्भव नहीं है। अगर तुम समझते हो कि सुखदा के रहने से कुछ लाभ है, तो उसको सदैव यहाँ रखने का प्रबन्ध करना पड़ेगा।"

बूढ़ा रमेसर कथन के तथ्य को समझ गया। उसने हुँकार भरते हुए कहा—"यही तो मैं चाहता हूँ। सुखदा बिटिया इस घर में बहू बनकर आ जाय तो सब झंझट ही समाप्त हो जाय।"

कुंवरसिंह बोले—"पर परिस्थिति तो इसके विपरीत है। कुछ समय के पश्चात् विवाह का प्रस्ताव रक्खा जा सकता है, क्योंकि इस समय उसकी मनोदशा ऐसी न होगी कि वह विवाह के सम्बन्ध में कुछ सोच-विचार कर सके।"

रमेसर ने कहा—"बेटा, सुखदा मेरी निज की बेटी के समान है। मैं उसके हितों की रक्षा करूँगा। क्या यह सम्भव नहीं है कि बेटी आप के पास रह सके? मैं वचन देता हूँ कि मेरे जीते जी उसपर किसी प्रकार की आँच न आने पायेगी। मैं आज ही गज्जू भैया से इस विषय में चर्चा कर दूंगा। अगर उनका मन्तव्य विवाह का हुआ तो मैं उसे यहाँ रोकूँगा अन्यथा आज ही तुम्हारे साथ भेज दूंगा।"

रमेसर ने गजेन्द्र से जब इस सम्बन्ध की चर्चा की तो वह चकित हो गया। उसे आशा न थी कि उसका अभीष्ट इतनी सरलता से सिद्ध हो जायगा।

उसने केवल इतना कहा कि वह सुखदा से स्वयं इस सम्बन्ध में बात करके उसकी धारणा जानने के उपरान्त निर्णय करेगा।

दोपहर को भोजन के समय यह अवसर भी उपस्थित हो गया। कमरे में केवल सुखदा और गजेन्द्र थे। विचारों की ऊहापोह को वाणी का जामा पहना कर वह बोला—"सुखदा आज मेरे जीवन के समक्ष एक विकट

प्रश्न आ गया है। उसका उत्तर मैं तुम्हारी सहायता के बिना देने में असमर्थ हूँ।"

सुखदा की समझ में न आया कि गजेन्द्र का तात्पर्य क्या है? उसने अत्यन्त भोले और स्वाभाविक ढंग से उत्तर दिया—"प्रश्न, कैसा प्रश्न?"

अत्यन्त सहज भाव से एक आत्मीयता-सी स्थापित कर गजेन्द्र ने रमेसर काका का प्रस्ताव उसके सम्मुख उपस्थित कर दिया।

एकाएक सुखदा का आनन लज्जा से रक्ताभ हो उठा। उसके मन में एक प्रकार का क्षोभ उठ खड़ा हुआ। वह अपने मनोभावों को नियन्त्रित करती हुई बोली—"आप मेरा अपमान कर रहे हैं।"

"नहीं, मेरा यह आशय कदापि न था। मेरे सम्मुख प्रस्ताव रखा गया और मैंने तुम्हारे मन का भाव केवल इसलिए जानना चाहा कि अगर तुमको कोई आपत्ति हो, तो तुम स्पष्ट कह दो, ताकि मैं अपनी ओर से नाहीं कर दूं, जिससे तुम्हें नाहीं कहने का अवसर ही न आये। दूसरे यह भी सम्भव है कि तुम अपनी दीदी से सकोचवश कुछ न कह सकीं और मौन तुम्हारी सम्मति का द्योतक दनकर अर्थ का अनर्थ कर दे।"

"आपको मेरा इतना ध्यान है उसके लिए धन्यवाद। आपको स्वयं ही ऐसी दशा में मेरा उत्तर समझ लेना चाहिये था। मुझे आपसे सहानुभूति है। इसका यह अर्थ तो नहीं कि मेरे हृदय में आपके प्रति किसी अन्य प्रकार का भाव भी है।"

"मैं समझा नहीं।"

"आप समझे नहीं; या समझना नहीं चाहते! स्पष्ट है आप कामिनी से प्रेम करते थे। उससे विवाह कर रहे थे। इस दशा में मेरे या अन्य किसी के साथ विवाह करके आप खुशी हो सकेंगे? नहीं! आपका सन्तप्त हृदय कामिनी की याद में तड़पता रहेगा। ठीक उसी प्रकार, जैसे विवाह के पश्चात् पत्नी के स्वर्गवास हो जाने पर, उस विधुर का, जो वासना-पूर्ति के लिए पुनः आपद् धर्म की आड़ लेता और विवाह का ढोंग रचकर एक नारी को पुनः पत्नी रूप में ले आता है।"

"परन्तु मेरा विवाह न तो सम्पन्न हुआ था और न मैं कामिनी से प्रेम ही करता था। वस्तुस्थिति केवल इतनी है कि एक लड़की, जिसका विवाह उसके पिता ने एक अनदेखे वर के साथ निश्चित कर दिया हो, फिर यदि वह अचानक विवाह के पूर्व मर जाय तो क्या कन्या विवाहिता पत्नी मान ली जायगी? यहां अन्तर केवल इतना है कि गांव-समाज के नाते वह मेरी जान-पहचान की थी। परन्तु प्रत्येक परिचित नारी के लिये मनुष्य के हृदय में प्रेम का भाव अवश्य ही हो, ऐसी कल्पना करना भी मेरी दृष्टि में पाप है।"

"न जाने कितने स्वप्नों का सृजन आपने उसको पत्नी रूप में स्वीकार करके किया होगा। वे सब स्वप्न सिनेमा की-सी हिरोइन के परिवर्तन के कारण खण्ड-खण्ड न हो जायेंगे!"

"खैर मैं व्यर्थ की बातों में नहीं पड़ना चाहता।"

सुखदा के मुंह से अनजाने एक निःश्वास निकल गयी। उसने सोचा कि जीवन-सौख्य स्वयं साकार होकर उसके सम्मुख खड़ा गिड़गिड़ा रहा है कि मुझे गले लगा लो। मनचाही वस्तु कभी-कभी अपनाने में संकोच का सामना करना पड़ता है।

जिस क्षण से उसने गजेन्द्र को देखा था, उसी क्षण से वह उसको पति रूप में पाने के लिए उत्सुक थी। प्रथम दर्शन का प्रेम इतना साहसी नहीं होता कि वह लोकोपचार और लज्जा को त्याग दे। अपने हृदय के असीम गह्वर में छिपी हुई प्रेम की आत्मा को प्रकट करना नारी के लिए सदैव से दुष्कर रहा है।

सुखदा के मानस में अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। उसका हृदय हाहाकार कर चीख उठा। वह सोचने लगी कि भाग्य की विडम्बना ही तो है कि मैं लज्जा से घबड़ाकर, झूठी मान-मर्यादा के गौरव की रक्षा में प्राचीन रूढ़िग्रस्त नारी की भांति आजीवनपर्यन्त विरहाग्नि में जलने को प्रस्तुत हूं। मुझमें इतना भी साहस नहीं है कि मैं आगे बढ़कर अपने जन्म-जन्मान्तर के साथी को गले लगा लूं और कह दूं—'तुम मुझसे क्या पूछते हो प्रियतम, मैं तो

युग-युग से प्यासी तुम्हारी प्रतीक्षा में तपस्या कर रही हूँ।'

उसी क्षण उसे कामिनी का ध्यान आ गया। विचारों की उत्तुंग लहरें उथल-पुथल मचाने लगीं।—इसके हृदय में वास्तविक प्रेम लेशमात्र नहीं है। कामिनी इसको नहीं प्राप्त हुई, तो यह संसार के सम्मुख अपना मस्तक ऊंचा रखने के लिए उपस्थित अभाव की पूर्ति मेरे द्वारा करना चाहता है।

उसके मन में आया कि वह गजेन्द्र के गाल पर कसकर थप्पड़ जड़ दे। 'वासना का निकृष्ट कीड़ा' कहता है कि मैं कामिनी से प्रेम नहीं करता था।

अपने सूखे पपड़ी जमे होठों पर जीभ फेरता हुआ गजेन्द्र बोला—"सम्भव है, तुमको विश्वास न हो। क्योंकि परिस्थिति ही ऐसी है। परन्तु इस विश्वास के बल पर कि सत्य सदैव स्थिर दृढ़ रहेगा और अन्त में उसी की विजय होगी, प्रथम दर्शन में ही प्रतीत हुआ था कि तुम्हीं वह हो, जिसको मैं स्वप्न में देखा करता था। जिसके ऊपर मेरा सम्पूर्ण जीवन-सौख्य आधारित है। परन्तु उस समय देर हो चुकी थी। तुम मेरे विवाह में सम्मिलित होने आयी थीं। अतः मैं कुछ न कह सका। समाज ने मेरे उच्छृंखल मन के ऊपर एक अंकुश रख दिया था। पर आज मैं बन्धन-मुक्त हूं। इस कारण अवसर मिलते ही मैंने तुम्हारे सम्मुख अपना हृदय खोलकर रख दिया है।"

सुखदा को प्रतीत हुआ कि केवल संकेत मात्र की देर है और संसार का समस्त सुख जिसकी कामना वयस्क हो जाने पर नारी के लिए सर्वथा स्वाभाविक उसकी झोली में आ गिरेगा।

परन्तु उसी क्षण उसका तार्किक पुनः बोल उठा—'बनता है। आदि-काल से अवसरवादी पुरुष अवसर पाकर इसी प्रकार नारी का भक्षण करते आये हैं। ऐसे पुरुषों से ही सदैव सावधान और सतर्क रहना चाहिए।'

वह तुरन्त बोली—"मुझे आपके मनोभावों को जानने से क्या लाभ?

सम्भव है आपके मन में कामिनी के प्रति अनुराग न भी रहा हो; पर प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं जा सकता। वास्तव में यह विवादग्रस्त विषय है। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं केवल इतना जानती हूँ कि कामिनी द्वारा त्यागा गया उच्छिष्ट जीवन-सौख्य मुझे स्वीकार नहीं।"

गजेन्द्र का मुख म्लान पड़ गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि समस्त ब्रह्माण्ड धाँय-धाँय कर जल उठा है।

कहने को तो सुखदा आवेश में पड़कर ऐसी बात कह गई परन्तु उसी क्षण उसका हृदय हाहाकार कर उठा। क्षणभर बाद सहसा विचार उठा कि अगर उसने आज घर आये हुए इस अवसर को ठुकरा दिया, तो सम्भव है, जीवन में पुनः कभी ऐसे विरल सुख की उपलब्धि भी न हो सके। एक दुविधा, एक विवाद उसके मानस को मथने लगा।

क्षण भर बाद यह भी विचार आया कि सम्भव है यह सच कह रहा हो।

प्रेम की अनुभूति जीवन में कभी-कभी ऐसे अवसरों पर भी होती है, जिसकी कल्पना मनुष्य पहले नहीं करता। प्रेम की सार्वभौमिक सत्ता काल से परे होती है। ऐसे अवसर भी आते हैं, जब मनुष्य अपनी प्रेमिका को भूलने के लिए विवश हो जाता है, केवल इसलिए कि जिस वृत्ति को आज तक वह प्रेम समझता आया है, वह समय की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है; क्योंकि अक्सर प्रेम की अनुभूति के साथ नारी की रूप-सज्जा का बाह्य सौन्दर्य संलग्न रहता है। पर प्रेम की भूख में जब आत्मा प्रवेश करती है तो उसका सीधा सम्बन्ध अन्तःकरण से ही होता है। तन की कामना, तन की भूख और वस्तु है और आत्मा का आत्मा से सम्बन्ध, एक दूसरे के प्रति एक अटूट लगाव, बिल्कुल दूसरी।

सुखदा अपने मन की इच्छा तथा आत्मा की पुकार के सम्मुख जहाँ विवश थी वहीं पर यह लोकाचार और लज्जा की शृंखला में भी आबद्ध थी। उसने सोचा कि सम्भव है जीवन में अब फिर कभी यह अवसर न आये।

अतः वह बोली—"मुझे आपसे पूर्ण सहानुभूति है। मैं आपके सुख के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ। पर मुझे आप विवाह के लिये मजबूर न करें।"

"चलो ऐसा ही सही। परन्तु फिर इस दशा में तुम्हें एक वचन देना होगा कि जिस क्षण तुम्हें मेरे प्रेम की वास्तविकता का आभास मिल जायगा, तुम मुझे अवश्य स्वीकार कर लोगी।"

"ऐसा कभी नहीं होगा। फिर भी मैं वचन देती हूँ कि आपके प्रेम के प्रति जिस दिन मेरा संशय सदा के लिए मिट जायगा, मैं भिखारिणी बन कर आपसे आपको अवश्य माँग लूँगी।"

"मैं नहीं जानता, वह दिन कब आयेगा। परन्तु मैं इसी आशा पर जीवित रहूँगा और केवल इसी जन्म में ही नहीं, वरन् जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहूँगा।"

फिर जब शोभा और रमेसर काका को इस सम्बन्ध का पता चला तो दोनों का हृदय एक सन्तोष की भावना से भर गया। दोनों निश्चिन्त होकर समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उन्होंने निश्चय किया कि कुछ ऐसा उपाय खोज निकाला जाय, जिससे इन दोनों का सम्पर्क-सान्निध्य घनिष्टता में परिणत हो जाय, ताकि संयोग ने जो अवसर सामने लाकर खड़ा कर दिया है, उसका पूर्ण उपयोग हो सके।

अन्त में हुआ ऐसा ही। शोभा और रमेसर काका ने षड़यन्त्र रचकर दोनों के बीच आत्मीयता स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया।

प्रच्छन्न तथा अव्यक्त आकर्षण में बँधे दोनों एक-दूसरे के निकट आने के लिए व्याकुल हो उठे। यद्यपि वे दोनों सामना होने पर दृष्टि चुराते और मिलन की उत्कंठा को छिपाने के प्रयत्न में संलग्न, अनजान और अपरिचित बनने का अभिनय रचते। बिना किसी को बतलाये चुपचाप रात्रि और दिवस दोनों एक-दूसरे की टोह में व्यतीत करते। अभेद्य दीवारों को भेद कर उनकी अन्तर्दृष्टि

के सहारे देखा करती और कभी उन सम्भावनाओं के माध्यम से जो प्रयत्न करने पर बहुधा अपने अस्तित्व में प्रकट नहीं होती, किन्तु कभी-कभी अनायास मिलन के अवरुद्ध द्वार अकस्मात् खोलकर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती हैं।

वे आदर्श और संकल्प के सहारे जी रहे थे और उसी को कोस रहे थे।

६

•••

हरिपुर के निकट कल्याणपुर नामक एक गांव था। अग्निकाण्ड के पश्चात् हरिपुर निवासी अपने हृदय की जलन बुझाने के लिये कल्याणपुर की होली में इकट्ठा होते थे। यद्यपि ग़म ग़लत करने का साधन गजेन्द्र के कारण गांव में रह नहीं गया था। वंश-परम्परा से चली आयी हुई आदत एक दिन में बदली नहीं जा सकती। गजेन्द्र के समझाने-बुझाने से बहुतेरे नवयुवक जिन्हें सुरापान का चस्का नहीं लगा था, सुधार की राह पर चल निकले थे। बूढ़े छिपकर और कम मात्रा में पीते थे, जिसमें उनकी पोल खुल न सके। परन्तु आज जब उसी गजेन्द्र के विवाह के अवसर पर अग्नि की ज्वाला ने उनके खेतों को और कुछ लोगों की झोपड़ियों तक को फूंक कर रख दिया, तो विवशता की अग्नि उनके हृदय में धधक उठी।

सुदूर भविष्य में क्या होगा, कौन जाने, पर जठराग्नि को कैसे शान्त किया जायगा ?

मानव स्वभाव है कि अपनी हानि देखकर उसे अत्यधिक दुःख और क्षोभ होता है। यद्यपि हानि की मात्रा से दुःख का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिन लोगों का केवल एक वृक्ष जल गया था उनको भी उतना ही दुःख था जितना उन लोगों को जिनका सर्वस्व स्वाहा हो गया था।

अग्नि शमन के पश्चात् केवल अपने-अपने नुकसान को बढ़ा-चढ़ा-

कर चर्चा करने के सिवा किसी के पास कुछ कार्य न था।

संध्या होते-होते धीरे-धीरे सब कल्याणपुर की होली की ओर बढ़ जाते और वहीं एक कुल्हड़ ताड़ी या ठर्रा सामने रख, आने दो आने की सेव दाल या पकौड़ी लेकर अपना दुखड़ा भूलने का नाटक रचते।

एक ऐसी संध्या को जब होली अपने पूर्ण यौवन पर थी, सारा वातावरण ताड़ी और शराब से गमक रहा था और लोगों की चल-चल के कारण कान पड़ी बात सुनाई न पड़ती थी, एक व्यक्ति ने सहसा होली में प्रवेश किया।

सर पर रेशम का साफ़ा, रेशम का ही कुरता और साफ़ धुली धोती में सुगठित शरीर, अधेड़ अवस्था में भी उसके व्यक्तित्व को उभार रहा था। पंजाबी ठेकेदार ने एक ही दृष्टि में अपने ग्राहक को तौल लिया और वह उसकी टेंट में बँधी रक़म को पाने के लिए उतावला हो गया।

ठेकेदार ने तुरन्त पुकार लगाई—"आओ सेठ, इधर निकल आओ।"

ठेकेदार की आवाज़ सुनते ही सबका ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। आज के युग में मनुष्य के बड़े होने का प्रमाण उसका पहनावा माना जाता है। अपरिचित के मूल्यवान वस्त्रों ने भोले-भाले किसानों के मन में अनजाने ही एक श्रद्धा और समादर का भाव उत्पन्न कर दिया।

अपरिचित ने ठिठककर चारों ओर एक दृष्टि दौड़ाई। अभी वह वस्तुस्थिति का मूल्यांकन कर ही रहा था कि ठेकेदार की आवाज़ पुनः गूँज उठी। वह अपने नौकर को सम्बोधित करके कहने लगा—"अरे सोहनवा, कहाँ मर गया? ज़रा बाबू साहब के लिये चारपाई तो डाल दे।"

कल्याणपुर की होली एक कच्चे खपरैल के मकान में थी। बाहर फाटक और भीतर बड़ा-सा आँगननुमा मैदान, जिसके बीच में नीम का पेड़ था। पश्चिम की ओर एक दालान था, जिसमें गद्दा बिछाकर ठेकेदार बैठता था और उसी के एक ओर बोतलें और दूसरी ओर ताड़ी के पीपे रखने का स्थान था।

नीम के चारों ओर एक ऐसा चबूतरा बना हुआ था, जिस पर एक पकौड़ीवाला बैठता था। एक ओर पत्थर के कोयलों की भट्टीनुमा अँगीठी थी और दूसरी ओर पीतल का चमकता हुआ थाल, जिसमें वह प्याज की गरम-गरम पकौड़ी बना-बनाकर रखता, साथ ही पापड़ व अन्य तेल की तली हुई चरपरी वस्तुएँ भी, जिसमें मसालेदार आलू प्रमुख थे।

उत्तर की ओर की दालान में एक पंजाबी ने तन्दूर लगा रखा था। पीतल के कई भगौने मिट्टी के चबूतरे पर रखे रहते थे, जिनमें दाल, चावल के अतिरिक्त कलिया, कीमा और कलेजी भी रहती थी। शौकीन लोग अक्सर मिट्टी के सकोरों में दो-चार आने का कलिया या कलेजी लेकर दावत का आनन्द उठाते थे। शीशे की मैल चढ़ी बरनियों में वह तेल की दालमोट और सेव-चूड़ा आदि भी रखता था। कम पैसे वाले उन्हीं वस्तुओं से गजब का आनन्द लेकर अपनी शाम को रंगीन बनाते और पैसे समाप्त हो जाने पर ही घर वापस लौटने की सोचते। परन्तु उनमें से कुछ ऐसे भी होते थे, जो हौली में पहुँचने के पश्चात् घर का रास्ता ही भूल जाते थे। सुरा-सुन्दरी से सम्पर्क स्थापित होने के पश्चात् उनको न दीन की सुध रहती थी न दुनिया की। वे परिचित और अपरिचित की ओर एक तृष्णा भरी दृष्टि से निहारा करते थे कि कोई दया करके एक-आध घूंट पिला दे। जिस प्रकार एक कुत्ता किसी को खाते देख आसरा लगाकर खड़ा-खड़ा दुम हिलाया करता है।

इन्हीं में से एक था किशन। आज भी वह एक तरफ़ अकेला बैठा हुआ ताड़ी के कुल्हड़ को बार-बार चाट रहा था। ठेकेदार की आवाज़ सुनते ही वह तुरन्त चौकन्ना हो गया और नशे के कारण बोझिल आँखें उठाकर उसने आगन्तुक की ओर देखा। उसके अनुभव ने उसे बता दिया कि उस व्यक्ति से उसका स्वार्थ सिद्ध हो सकता है।

कल्याणपुर ग्रैण्ट ट्रंक रोड पर बसा हुआ था। इस कारण अधिकतर ट्रक के ड्राइवर और क्लीनर वहाँ रुककर गले को तर करते, खाना खाते और विश्राम करके आगे बढ़ जाते थे। कभी-कभी उनके साथ भूले-भटके

यात्री भी आ जाते थे। कुछ ट्रकों के साथ व्यापारी भी होते थे। किशन आने वाले लोगों को एक ही नजर में भाँप लिया करता था और चन्द मिनटों में ही दोस्त बनकर एक-आध घूंट और कभी-कभी आध पाव या पावभर और भोजन छिलवे में उड़ा दिया करता था।

किशन की इस सफलता पर ईर्ष्या सब करते थे, परन्तु उसका गुर या रहस्य का पता किसी को न मालूम हो पाता था। सभी लोग आश्चर्य करते थे कि कोई ढंग का काम काज न होने पर भी नित्य नियमित रूप से यह पीने आ जाता है और अच्छा खाता-पहनता भी है।

आगन्तुक ने चारों ओर देखा और वह आगे बढ़कर अपने लिए बिछाई गयी खाट पर जा बैठा। रेशम में लिपटे हुए कल्लू को कोई पहचान न सका कि यह वही व्यक्ति है जो दो-दिन से हरिपुर और आसपास दाढ़ी बढ़ाये चिथड़ों में लिपटा हुआ फिर रहा था।

दो दिन कल्लू ने चतुरसिंह का पता लगाने की चेष्टा की। किन्तु उसका कोई सूत्र न था उसने कल्याणपुर की होली को केन्द्र बनाकर सुव्यवस्थित ढंग से पता लगाने का निश्चय किया।

पहचानने-जानने का उनको तनिक भी डर न था। तरह-तरह की वेश-भूषा बदलकर पुलिस और जनता की आंख में धूल झोंककर वह आज तक आजाद था।—और आज भी उसे किसी ने न पहचाना।

कल्लू ने बैठकर पुनः गैस की रोशनी से आलोकित दालान और आँगन का अध्ययन किया। सरसरी उचटती निगाह से उसने हर पीनेवाले को देखा और सर का साफा उतारकर खाट पर रखते हुए ठेकेदार को सम्बोधित करते हुए बोला—"अनन्नास हो तो अनन्नास, नहीं तो एक बोतल मसाला।"

समीप बैठे हुये लोगों ने ही नहीं, लगभग सम्पूर्ण उपस्थित समुदाय ने उसकी कड़कती-खरखराती आवाज सुनी। जो लोग होश में थे, उनको तनिक आश्चर्य भी हुआ कि अकेला व्यक्ति प्रारम्भ में ही एक बोतल लाने का आदेश दे रहा है, वह भी सस्ती किस्म की नहीं, वरन् उस

ठेके में विकने वाले सबसे मूल्यवान् पेय का।

किशन ने भी सुना और उसकी आँखें चमक उठीं। मन-ही-मन उसने विचार किया कि पीने और खाने के अतिरिक्त कम-से-कम दस रुपये का लाभ होगा।

किशन जाति का चमार था और दिखावे के लिये प्रतिदिन कुछ समय के लिये बाजार में ठीक चौराहे के समीप जमीन पर अपनी दुकान फैला-कर बैठता था। ग्राहकों के प्रति अशिष्टता और कार्य के प्रति अरुचि के कारण उसे अधिक काम नहीं मिलता था, किन्तु दिखावे को निभाने के लिये वह बैठता अवश्य था और उसका मन्तव्य उससे सिद्ध भी हो जाता था।

किशन का असली आय का स्रोत गाँव के बाहर से आने वाले लोग थे। बात करने की उसकी अपनी कला थी। वह बातों-बातों में पर-देसियों के मन का भेद पा लेता था और अवसर देखकर रात्रि व्यतीत करने का या समय न होने पर केवल कुछ समय व्यतीत करने पर तैयार कर लिया करता था। परदेसी अधिकतर ट्रक-ड्राइवर होते थे जिनका अधिक समय घर से दूर ट्रकों पर बीतता था। वे तुरन्त ही तन की भूख मिटाने के लिये प्रस्तुत हो जाते और किशन का मतलब पूर्ण हो जाता।

किशन की साली गुलबिया आज से चार वर्ष पूर्व विधवा होने के पश्चात् अपनी छोटी बहन के घर आ गयी। उस समय उसने किशन और अपनी बहन चमेलिया की आर्थिक स्थिति देखकर इस व्यापार की सलाह दी। लालच में पड़कर अनुभवहीन किशन फिसला और फिसलता ही चला गया। कुछ ही समय में गुलबिया घर की मालकिन बन बैठी। खाना मुफ़्त में मिलने से किशन और भी अधिक अकर्मण्य हो गया।

गुलबिया की अवस्था अधिक न थी। उसका शरीर भी भरापूरा था। सन्तान न होने के कारण कोई भी उसे सत्रह-अठारह से अधिक की न समझता था, जबकि उसकी आयु चौबीस वसन्त देख चुकी थी। रंग उसका खुला हुआ साँवला था। ग्राहकों की माँग पर एक दिन गुलबिया

ने चमेलिया को भी अपने धन्धे में शामिल कर लिया। उसकी माँग अधिक थी; क्योंकि अवस्था में कम होने के साथ-साथ उसका रंग गुलबिया से अधिक खुला हुआ था।

आय बढ़ जाने से किशन का शौक भी बढ़ गया था। कपड़ा पहनने और सिनेमा देखने का चस्का भी लग गया। उसने सब कुछ जानते हुए भी आँख को बन्द कर लेना ही उचित समझा।

एकाध सम्भ्रान्त गाँव वालों के अतिरिक्त उनके ग्राहक परदेशी हुआ करते थे। इस कारण किसी प्रकार की बदनामी इन लोगों को छू भी न जाती। गाँव के नवयुवक रसिया दोनों बहनों के छलकते हुए यौवन को देख-देखकर भँवरे की भाँति चक्कर काटा करते, परन्तु वे किसी की ओर दृष्टि उठाकर न देखतीं। अगर कोई मनचला एक फिकरा भी कस देता तो वे सती-सावित्री बनने का ढोंग रचा कर तुरन्त लड़ने को प्रस्तुत हो जातीं।

कल्लू के रूप में अपने भावी ग्राहक को देखकर किशन धीरे-धीरे उसकी खाट के समीप जा खड़ा हुआ। ठेकेदार के नौकर सोहन ने अनन्नास की बोतल और शीशे के गिलास को लाकर कल्लू के सम्मुख खाट पर ही रख दिया।

उसी क्षण किशन बोला—"माचिस होगी बाबू साहब ?"

कल्लू ने प्रश्न सुनकर दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा। बायें हाथ में बीड़ी का बण्डल लिये दिलीप कट बाल गँवारे मटमैले पैजामे के ऊपर सस्ती टैरीलीन की बुशशर्ट पहने किशन को उसने ऊपर से नीचे तक देखा और आँखों में ही उसे तौल लिया। बिना कुछ बोले उसने कुर्ते की जेब से दियासलाई निकालकर उसे दे दी।

कल्लू की उमर ऐसे लोगों को पहचानने में ही बीती थी। अपने मतलब का व्यक्ति वह तुरन्त परख लेता था। आज भी उसे किशन की आँखों में छिपा आह्वान पढ़ने में भूल न हुई।

किशन बीड़ी जला रहा था और कल्लू बोतल का कार्क खोलकर

गिलास में लाल पानी ढाल रहा था।

किशन ने अपनी सैंकड़ों बार की आज़माई हुई योजना के अनुसार कहा—"खाली न पिओ बाबू साहब, कलेजे में लग जायेगी। कुछ चखने के लिये भी मँगा लो। कलेजी आज बहुत बढ़िया बनी है, वैसे मछली तो यह पंजाबी बहुत फर्स्ट क्लास बनाता है।"

कथन के साथ ही उसने बीड़ी जलाकर माचिस कल्लू के सम्मुख रख दी और निर्लिप्त भाव से चलने का उपक्रम किया।

अभी उसने एक ही पग उठाया था कि कल्लू बोल उठा—"अरे बैठो भाई, कहां चले? एक घूंट पीते जाओ।"

किशन तुरन्त खाट पर बैठ गया और बोला—"नहीं बाबू साहब, मैं तीन छटांक पी चुका हूँ। अब अधिक पीने की हिम्मत मुझे है नहीं।"

कल्लू ने सुनी-अनसुनी करते हुए अपनी कड़कती हुई आवाज़ में एक गिलास और ले आने का आदेश दिया। साथ ही उसने ठेकेदार को सोडा न भेजने के लिये उलाहना भी दिया।

ठेकेदार की गद्दी के ऊपर रक्खा हुआ ट्रांजिस्टर का स्वर भी उसके स्वर के सम्मुख मन्द पड़ गया था। गैस की लालटेन में हवा भरता हुआ सोहन अचकचा कर उठ खड़ा हुआ। वह जानता था कि ऐसे ग्राहकों से इनाम के रूप में कुछ न कुछ प्राप्ति अवश्य हो जाती है। लपक कर उसने एक गिलास तथा सोडे की बोतल झट खाट पर लाकर रख दी।

कल्लू बोला—"देख बे, दो टुकड़ा मछली और दो जगह भुनी हुई कलेजी ले आ।"

सोहन ने पूछा—"कितने की?"

"अरे यही सात-आठ आने की। हिसाब से ले आ बे।"

सोहन जानता था कि शराबी से पैसे पहले वसूल कर लेने चाहिये, अन्यथा सम्भव है, बाद में उसकी जेब में कुछ न निकले। अतः वह बोला—"पैसा?"

कल्लू सम्भवतः इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने तुरन्त

अध-कुरते को उठाकर बनियान की जगह पहनी हुई बन्डी की जेब से नोटों की एक मोटी गड्डी निकाली। दस-दस के नोट के अतिरिक्त उसमें सौ के नोट भी झलक रहे थे। गैस के प्रकाश में उन्हें चमका कर कल्लू ने दस रुपये का एक नोट सोहन की ओर बढ़ा दिया और दूसरा नोट ठेकेदार की ओर बढ़ाता हुआ बोला—"तुम भी अपने पैसे ले लो ठेकेदार।"

किशन विस्फारित नेत्रों से नोटों के बण्डल को देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था कि यदि किसी प्रकार यह गड्डी मिल जाती तो मैं भी इस भवसागर से पार हो जाता।

अभाव और प्रयास बिना प्राप्ति की लालसा ही मनुष्य को दुष्कर्म की ओर प्रेरित करती है। किशन के मन में एक योजना ने जन्म ले लिया।

कुछ देर के बाद जब किशन ने देखा कि कल्लू ने पीना प्रारम्भ कर दिया है तो उसने बातचीत के प्रसंग को मोड़ा। वह बोला—"बाबू साहब इस गांव में आप नये मालूम पड़ते हैं। रात बिता कर प्रातः जाने का प्रोग्राम होगा।"

कल्लू ने उत्तर दिया—"नहीं। मैं दो-चार दिन रुकूंगा। दर असल मैं कोई काम-धन्धा करना चाहता हूँ। इस इलाके में चावल की मिल बैठाने लायक कोई स्थान मिल सका तो ठीक है। नहीं तो आगे कहीं देखूंगा।"

"जगह क्यों नहीं मिलेगी? चावल की तीन मिलें पास में हैं।"

कथन के साथ ही उसने सोचा कि आसामी मालदार है। तब एक दुविधा मन में उठ खड़ी हुई। अण्डा देने वाली मुर्गी को पाल लेना अच्छा होगा या उसे समाप्त कर देना।

एक क्षण रुककर किशन पुनः बोला—"काम धन्धे की बात तो दिन में होती है बाबू साहब। मैं इस समय के प्रोग्राम की बात पूछ रहा हूँ।"

"इस समय क्या? अरे अकेला आदमी हूँ। खा-पी कर सो रहूँगा। पाण्डेय की धर्मशाला में टिका हूँ। यों मेरे लिये यह जगह अनजान है।"

"अरे वाह बाबू साहब, आप अपने को अकेला समझते हैं? मैं तो हूँ

आपके साथ और जब मैं साथ हूँ तो यह जगह अनजान कैसे हुई; गरीब आदमी हूँ, नहीं तो आपको अपने घर ले चलकर ठहराता। फिर भी आप चिन्ता न करें। मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा।"

"अरे भाई, तुम्हीं लोगों के आसरे तो चला आया हूँ। क्या नाम है तुम्हारा ?"

"अपना नाम ही क्या है ? ज़रा-सा नाम है किशन।"

"क्या बात है आपकी ? ज़रा-सा नाम है किशन। नाम के गुण के कारण ही रसिया मालूम पड़ते हो। क्या करते हो ?"

किशन अपनी प्रशंसा सुनकर कुछ-कुछ सन्तुलन खोने लगा। एक बार तो उसके मन में आया कि वह अपने पुश्तैनी धन्धे के सम्बन्ध में कुछ न बता कर झूट बोल जाय। परन्तु तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि इस व्यक्ति को यहीं रहना है। आज नहीं तो कल सत्य का पता लग ही जायगा। अतः वह बोला—"बहुत छोटा-सा व्यापार है। असल बात यह है कि··· अरे अब आप से क्या छिपाना, एक देवी जी की कृपा से अपना खर्चा-पानी चल जाता है।"

हो-हो कर के कल्लू हँस पड़ा और बोला—"बड़े भाग्यशाली हो। तभी मैंने कहा था कि रसिया मालूम पड़ते हो। चलो अच्छा हुआ जो तुमसे भेंट हो गयी। कहीं अपना भी डौल लगाओ भाई।"

"आप बिलकुल चिन्ता न करें। एक मित्र दूसरे मित्र के काम न आयेगा तो क्या पराये आयेंगे। भोजन से निवृत्त होकर अभी आपको एक जगह ले चलता हूँ। परन्तु एक बात याद रखियेगा कि किसी को कानों कान खबर न हो। वर्ना उस बेचारी की बदनामी होगी और मुफ़्त में खून-खराबा हो जायगा !"

"नहीं जी, तुम मुझे क्या समझते हो ?"

"मैंने तो यों ही कह दिया। परदेश में सावधान रहना अच्छा होता है।"

"तुम्हारी बात से मालूम होता है कि लड़की पेशेवर नहीं है।"

"राम-राम ! आप भी क्या बात करते हैं बाबू साहब । ग़रीब अवश्य है मगर शरीफ़ है ।"

"अगर ऐसा है तो मैं उसे हमेशा के लिए अपना बना लूँगा । राइस-मिल न सही । अच्छा, कोई और धन्धा यहाँ चल सकता है ?"

बहुतेरे स्वप्न बड़े मीठे होते हैं । किशन ने भविष्य की कल्पना के सहारे निर्माण करने का प्रयास किया । वह सोच रहा था कि अगर यह गुलबिया को रखने को तैयार हो जाए तो मेरे सारे कष्टों का निवारण हो जाय । इसी के सहारे अपना स्वतंत्र व्यापार भी प्रारम्भ किया जा सकता है । जीवन आसानी से कट जायगा, फिर अन्त में इसकी सम्पत्ति भी एक न एक दिन अपने को मिल जायगी ।

अब उसकी आर्थिक स्थिति को जानने के लिये वह बोला—"यहाँ धन्धे की क्या कमी है ! अभी आठ-दस दिन हुए बगल के गाँव के एक सेठ ने अपना सारा कारोबार बेचा था । उस समय आप होते तो जमा जमाया काम मिल जाता । फिर भी कल ठाकुर साहब से बात कर के देख लीजियेगा शायद कुछ लाभ लेकर वह आपके हाथ बेच देने को तैयार हो जायें । मगर रुपया...।"

बीच में ही बात काट कर कल्लू बोला—"रुपये की चिन्ता न करो । मैं मुँहमाँगा दाम दूँगा । मगर काम ठीक होना चाहिये ।"

यों तो यह चर्चा होते ही कल्लू समझ गया था कि किशन का संकेत किस ओर है । परन्तु अनभिज्ञता का नाटक रचे रहने में ही उसका अभीष्ट अधिक सजीव जान पड़ता था । उसने अधिक उत्सुकता दिखाना उचित न समझा । उसे इस बात की भी आशा न थी कि मुझे आज उसके सम्बन्ध में बात-चीत करने के लिए इतने शीघ्र यह चतुरसिंह के निकट आ पहुँचेगा । सफलता की आशा के नशे ने उसकी रग-रग में एक उत्तेजना भर दी ।

इसकी कम्पित वाणी में वह पुनः बोला—"काहे का धन्धा था ? बेचने का क्या कारण था ? नुकसान के कारण तो नहीं बेचा ?"

हड़बड़ाहट में वह कई प्रश्न एक साथ ही कर बैठा।

अपने ध्यान में खोया हुआ किशन कल्लू के व्यवहार के इस अन्तर को लक्ष्य न कर सका। उसने सहज भाव से उत्तर दिया—"कई चीजों की दुकान थी। एक तेल घानी भी थी। बेचने की वजह ठीक तो नहीं मालूम लेकिन कहते हैं कि एक लड़की को भगा ले जाने के लिये सब कुछ बेच दिया।"

"कोई बात नहीं। कल बात करके देखेंगे, सम्भव है काम बन जाय।"

"अवश्य बन जायगा।"

"मगर एक बात है।"

"क्या?"

"यह इलाका दिल वालों का जान पड़ता है।"

और कथन के साथ ठहाका मार कर दोनों हंस पड़े और पीने-खाने में लग गये।

कल्लू ने केवल किशन को ही आकर्षित किया हो ऐसी बात न थी। एक अन्य व्यक्ति भी था जिसने कल्लू को नोट निकालते देखा था, परन्तु उसकी आँखों की चमक को किसी ने न देखा था।

भवानी जाति का कलवार था और पेशे से बनिया। गाँव के बीचों-बीच परचून की दुकान थी। परन्तु आय के इस स्रोत के अतिरिक्त उसके पास पड़ौस के पाँच-छँ लोगों के साथ एक दल बना रक्खा था और अकेलें-दुकेले में किसी को लूट लेना तथा चोर बाजारी चलाना जिसका मुख्य काम था। गाँव में अधिकतर ऐसे लोग ही उनके हत्थे लगते, जिससे एक शाम का पूरा खर्च भी निकलना कठिन होता था।

आज एक परदेशी की जेब में नोट देख कर उसका मन लालच से भर उठा। वह तुरन्त कुल्हड़ खाली कर के हौली के बाहर निकला और

चुपचाप पश्चिम की ओर सड़क पर बढ़ गया।

नित्य की भाँति आज भी सभी साथी चौराहे के समीप एक चाय वाले की गुमटी पर बैठे चाय पी रहे थे। वह चुपचाप जाकर लकड़ी की बेंच पर बैठ गया और फुसफुसा कर बगल में बैठे हुए वंशी से बोला—"दुकान के सामने जाकर बैठो, मैं अभी आता हूँ।"

कथन के साथ ही उसने चाय लाने का आदेश दिया।

वंशी बिना कुछ पूछे उठकर खड़ा हो गया और अपनी चाय का पैसा देकर भवानी की दुकान की ओर चल पड़ा।

भवानी का आना और वंशी का उठकर जाना ही उस दल का बँधा हुआ संकेत था। सब समझ गये कि शिकार है। अतः सदैव की भाँति एक-एक कर के सब उठे और एक-दूसरे के सहारे वंशी के पीछे-पीछे चल दिये। अन्त में जब भवानी की दुकान के सम्मुख पहुँचे तो सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। एक-दूसरे का मुँह ताकते हुए सबने वंशी से प्रश्न किया —"यहाँ कहाँ?"

वंशी ने उत्तर में केवल इतना कहा—"भवानी आये तो पता चले यहाँ क्यों बुलाया है।"

अभी उन लोगों को खड़े हुए कुछ क्षण ही व्यतीत हुए होंगे कि भवानी आता हुआ दिखाई दिया।

भवानी बिना कुछ बोले अपनी दालान के ओसारे में चढ़ गया। फिर उसने संकेत से सबको आड़ में बुला लिया। अँधेरे में घिर कर हर एक व्यक्ति का मन दुःश्चिन्ता के कारण धड़क उठा। प्रत्येक व्यक्ति सोच रहा था कि आज इस जगह एकत्र होने का अर्थ कहीं किसी विपत्ति की सूचना तो नहीं है।

उसी क्षण भवानी अत्यन्त मन्द स्वर में फुसफुसा कर बोला—"[illegible] में एक आदमी किसान के साथ पी रहा है। उसके पास कम-से-कम दो हजार की रकम है।"

वंशी ने पूछा—"निकल कर किधर जायगा?"

भवानी ने कहा—"मालूम नहीं। लेकिन इतने माल वाला शिकार हाथ से निकलना नहीं चाहिये।"

गयादीन बोला—"दोनों तरफ़ तीन-तीन आदमी लग जायें।"

भवानी बोला—"वह तीन के लिये भारी है। फिर मुमकिन है किशन भी साथ हो।"

गयादीन ही बोला—"किशन तो एक हाथ का आदमी है फिर नशे में···।"

"मगर शत्रु को कमज़ोर समझना भूल होगी। परदेश में कोई भी आदमी इतनी रकम जेब में डाल कर नहीं निकलता। मुमकिन है उसका अपना कोई प्रबन्ध हो।"

बंशी ने पूछा—"फिर ?"

भवानी ने एक क्षण रुक कर उत्तर दिया—"आज वह क्षण आ गया है जब हम लोगों को अन्तिम बार हिम्मत करनी है। सफलता मिलने पर अच्छी रकम हाथ लग जायगी। वर्ना फिर इस काम को सदैव के लिये छोड़ना होगा।"

"ज़रा खुलासा कहो।"—प्रीतम बोला।

"आज होली पर ही धावा बोल देना होगा। ठेकेदार के बक्स में भी हज़ार से कम रकम न होगी। मगर आगा-पीछा सोच लो।"

सबको मानो सांप सूंघ गया। सन्नाटा और भी सघन हो गया। अब सांस लेने तक का शब्द नहीं सुनाई दे रहा था।

सन्नाटे को तोड़कर भवानी पुनः बोला—"और किस दिन के लिये लाठी को तेल पिला-पिला कर रक्खा है। दस-पांच शराबियों के बीच से ठेकेदार का बक्स और एक आदमी की जेब खाली करके नहीं ला सकते! हम लोग छै आदमी हैं।"

बंशी कुछ अटकता हुआ बोला—"मगर यह तो डाका हुआ।"

"और रोज़ हम लोग क्या पूजा करते हैं। जिसकी हिम्मत न पड़ती हो वह साफ़ बता दे। मैं आज इसका फ़ैसला कर दूंगा। जिसका मन

चाहे वह चूड़ी पहन ले और घर में जा कर लुगाई के लहँगे में छिप कर बैठ जाय।"

वंशी ने पुनः कहा—"मगर खतरा···।"

"खतरा कहाँ नहीं है ! अगर देखेंगे कि पल्ला कमजोर पड़ता है तो भाग निकलेंगे। फिर सोचो, इतनी बड़ी रक़म हाथ में आने के पश्चात् हम लोग क्या नहीं कर सकते। जरा से खतरे से डर कर मुँह छिपा कर बैठने से काम नहीं चल सकता। पिछले महीने की पुलिस से मुठभेड़ भूल गये। उस समय तो उन सबके पास लाठी थी और इधर केवल इनायत और वंशी के पास। फिर भी हम लोगों ने पन्द्रह-बीस सिपाहियों को भगा दिया। आज तुम निहत्थों से डर रहे हो जबकि हम सब लाठी-भाला से लैस होंगे!"

अपनी प्रशंसा सुन कर इनायत साहस से भर उठा और बोला—"मैं तैयार हूँ। क़ुरान की कसम खा कर कहता हूँ कि खाली हाथ न लौटूंगा।"

भवानी ने उसके कन्धे को थपथपाते हुये कहा—"शाबाश ! जीते रहो बेटे। तुम्हीं लोगों के दिल-गुर्दे के सहारे तो मैं इतना बड़ा जोखिम उठाता हूँ।"

एक क्षण रुक कर वह पुनः बोला—"तो भाई बोलो। किसने क्या तय किया ?"

इनायत की बात ने सबका खोया हुआ आत्म-विश्वास पुनः वापस ला दिया। सब एक स्वर में बोले—"सब तैयार हैं।"

भवानी ने तुरन्त योजना का विवरण सबको समझा दिया। साफ़े में मुँह ढँक कर लाठी ले-ले कर एक-एक कर के सब लोग होली में प्रवेश करें और चार व्यक्ति खाट पर बैठे हुए व्यक्ति के समीप रहें तथा दो ठेकेदार के पास। संकेत पाते ही हमला कर दें और मारकाट कर निकल भागें।

थोड़ी देर बाद एक-एक कर के सब लोग भवानी की दुकान के ओसारे से निकल कर रात्रि के अँधेरे में विलीन हो गये।

कल्लू निश्चिन्त हो कर खा रहा था। साथ ही बीच-बीच में मदिरा का घूंट भी पीता जा रहा था। परन्तु किसन पीने की छूट पा कर नियंत्रण छोड़ कर पी रहा था। दूसरी बोतल समाप्तप्राय थी कि कल्लू ने बातचीत में व्यस्त होते हुए भी लक्ष्य किया कि एक व्यक्ति तहमत और जालीदार बनियान पहने उसकी खाट के समीप ही आकर बैठ गया है। हाथ की लाठी और मुंह पर लापरवाही से पड़े हुए कपड़े को देखते ही उसके अन्तःकरण ने भावी खतरे की चेतावनी दी। उसकी अपनी सारी आयु इसी में बीती थी। वह समझ गया कि उसकी जेब की माया ने किसी-न-किसी के मन में लालसा उत्पन्न कर दी है और वह उस माया को अपनी चेरी बनाने के लिये उत्सुक हो उठा है।

तब वह सजग हो गया। किसी प्रकार की अधीरता प्रकट किये बिना उसने सहज भाव से वस्तुस्थिति के अध्ययन हेतु अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई। एक ही झटके में उसने देख लिया कि नीम के समीप पकौड़ी वाले के पास दो संदिग्ध व्यक्ति और खड़े हैं। मन-ही-मन उसने अपने बचाव का ढंग सोचना प्रारम्भ किया ही था कि देखा, सामने फाटक से से भी एक व्यक्ति लाठी लिये आ रहा है।

अब शंका या दुविधा का कोई प्रश्न नहीं रह गया। कमर में खुसे हुए छुरे की मूठ को टटोल कर देखा। यों डर का प्रश्न तो उसके सम्मुख न उठता था, फिर भी उसके मन में आया कि रिवालवर ले आया होता, तो अच्छा था।

उसी समय ध्यान आया कि सम्भव है यह लोग गांव में डाका डालने आये हों और यह केवल संयोग हो कि वह यहाँ उपस्थित है और किसी अन्य अभिप्राय से ये लोग भी यहाँ आ गये हो।

परन्तु यह सोच कर कि सावधान रहने में क्या बुराई है उसने समीप बैठे हुए व्यक्ति को ध्यान से देखा। इस प्रकार की घेराबन्दी से वह परिचित था। वह जानता था कि संकेत होते ही विद्युत गति से प्रहार होता है। उसने पैंतरा बदला और सावधान हो कर संकेत की प्रतीक्षा करने

लगा, जिसमें वह स्वयं उछल कर प्रतिद्वंदी का वार बचा कर उसकी लाठी हथिया ले। एक बार लाठी हाथ में आते ही विपक्षी चाहे जितनी संख्या में क्यों न हों, उसे मार कर निकल नहीं सकते थे। चम्बल की घाटियों में बरसों उसने लाठी चलाने का अभ्यास यों ही नहीं किया था। दस-बीस लाठियों के वार तो वह आसानी से झेल सकता था। उनका असर शरीर पर होता ही न था।

कुछ ही क्षण में जब खाट की दूसरी ओर एक लाठीधारी उपस्थित हो गया तो उसने पीछे की ओर आवश्यकता पड़ने पर कूदने का निश्चय किया। तभी उसने देखा कि दो व्यक्ति ठेकेदार के पास खड़े हैं और एक आदमी उसकी खाट के पीछे।

वह समझ गया कि वही इस घेरेबन्दी का लक्ष्य है। फिर भी किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न किये बगैर उसने सोचा कि वह खाट से उठ जाय और घेरे से बाहर निकल कर प्रतिद्वंदी को हतप्रभ कर दे। उसने चाहा कि वह स्वयं उठ कर किसी लठैत के समीप जा खड़ा हो जिससे खतरे का आभास होते ही उसकी लाठी छीन कर प्रलय मचा दे।

परन्तु सदैव अपना सोचा हुआ होता नहीं। फिर भी भाग्य ने किसी हद तक उसका साथ दिया। उसने अपना साफ़ा उठा कर पहन लिया।

केवल एक क्षण और वह उठ कर बायीं तरफ़ के लठैत के समीप खड़ा हो जाता। परन्तु वह क्षण न आया।

अचानक सीटी का तीव्र स्वर वायुमण्डल में गूंज उठा। सीटी का शब्द कान में पड़ते ही कल्लू विद्युत गति से तड़प कर उछला। इसके पहले कि वह हमलावरों की मार के दायरे के बाहर निकल जाता एक साथ चार लाठी उसके शरीर पर आ पड़ीं। परन्तु उसके एकाएक उछल कर अपने स्थान से अप्रत्याशित रूप से हट जाने के कारण वार ओछा पड़ा।

आश्चर्य में डूबे हुए बंसी, गयादीन, इनायत और प्रीतम सम्हल कर दूसरा वार कर पाते कि कल्लू ने मछली की तरह से फिसल कर इनायत की लाठी पकड़ ली।

सम्भव था कि कल्लू एक ही झटके में लाठी छीन लेता परन्तु इनायत लाठी चलाने का माहिर उस्ताद था। इसीलिये उसने अपनी लाठी कल्लू की पकड़ से छुड़ा ली। उसी क्षण सब लोगों ने मिल कर वार करना प्रारम्भ कर दिया। कल्लू चतुर खिलाड़ी की भाँति वार बचाता हुआ भागा। भाग्य ने उसे ठेकेदार को निपटा कर लौटते हुए भवानी से ले जा कर टकरा दिया। कल्लू भवानी से लिपट गया और दुलत्ती मार उसे धराशायी कर के उसकी लाठी छीन ली और मैदान में डट गया।

भवानी ने परिस्थिति की विषमता देख कर जेब से रामपुरी चाकू निकाल कर खोला और पूर्ण शक्ति से उसे कल्लू की ओर लक्ष्य कर के फेंका।

अब सम्पूर्ण होली में एक हंगामा और चीख-पुकार मच गयी थी। लोग नशे में पहले तो कुछ समझ न पाये थे परन्तु फिर डर ने अपना रूप जब उनके समक्ष रख दिया तो वे सब-के-सब सुरसा की दृष्टि से इधर-उधर भागने लगे। उन्हीं शराबियों में से एक ने बचाव की दृष्टि से घबरा कर पकौड़ी वाले का थाल उठा कर लड़ने वालों की ओर फेंक दिया।

यह थाल कल्लू के लिये ढाल बन गया। संयोग ने कल्लू का साथ दिया। थाल जा कर इनायत के पैर में लगा और वह इस आकस्मिक घटना से सम्हलने के लिये घूम पड़ा। उसका घूमना कल्लू के लिये वरदान सिद्ध हुआ।

भवानी ने कल्लू की पीठ को लक्ष्य कर के चाकू फेंका था, परन्तु वह गन्तव्य स्थान पर न जा कर इनायत की छाती में घुस गया। इनायत चीख मारकर गिर पड़ा।

उसके सभी साथी घबरा गये और मैदान छोड़ कर भागने लगे। परन्तु कल्लू ने प्रत्येक के पैर में लाठी मार घायल कर दिया। एक-एक कर के सभी गिर गये। केवल हतप्रभ भवानी चुपचाप खड़ा हुआ अपनी हार का साकार रूप देख रहा था।

उसने सबका ध्यान बचा कर अपना साफा उतार फेंका और शराबियों

की भाँति अभिनय करने लगा।

कुछ ही क्षण में पुलिस आ गयी। उस समय भी किसी का ध्यान भवानी की ओर न गया।

थानेदार ने सबको गिरफ्तार कर लिया और उपस्थित लोगों के नाम पते लिख लिये। साथ ही थाने में आकर गवाही लिखा देने का आदेश देकर सबको जाने की आज्ञा दे दी। उनके साथ भवानी को छुट्टी मिल गयी।

कल्लू ने अपने बयान में इस समय केवल इतना ही कहा कि वह ठेकेदार को लुटता देखकर उसे बचा रहा था। थानेदार ने उसको बिना सूचना दिये गाँव न छोड़ने का आदेश दिया।

पुलिस के जाने के पश्चात् ही ठेकेदार कल्लू के हाथ-पैर जोड़कर आभार प्रदर्शित करने लगा। सामान्य लोगों की भाँति वह भी समझता था कि कल्लू ने ही उसे लुटने से बचाया है।

पकड़े जाने के पहले ही जनता हर एक का परिचय जान गयी थी। प्रत्येक को आश्चर्य हो रहा था कि उन्हीं के साथ रहने वाले, रात-दिन उठने-बैठने वाले डाकू निकले।

हमला प्रारम्भ होते ही किशन खाट के नीचे जा छिपा था। सब शान्त होने के उपरान्त वह पुनः कल्लू के समीप जाकर बोला—"एक गिलास और हो जाय। हरामखोरों ने मजा किरकिरा कर दिया। सच तो यह है कि तुम छिपे हुए गुरु निकले।"

"अरे नहीं जी। यों ही जरा-सा लकड़ी खेल लेता हूँ। हाँ, बैठो सचमुच ही गला सूख रहा है।"

दोनों फिर पीने में इस भाँति लग गये, जैसे कुछ हुआ ही न हो! अब गाँव वाले आकर इस घटना के हीरो को चुपचाप देखकर लौट जाते थे।

डाका पड़ने का समाचार दावाग्नि की भाँति चारों ओर फैल गया और उसी के साथ कल्लू की कीर्ति भी। गजेन्द्र ने भी उस समाचार को सुना। एक क्षण के लिए वह स्तम्भित रह गया।

दो और दो मिलाकर चार बना लेने की प्रवृत्ति हर मनुष्य में स्वभावतः पायी जाती है। गजेन्द्र के मस्तिष्क में एक विचार कौंध गया कि सम्भव है कामिनी के इस प्रकार गायब हो जाने और साथ-ही-साथ अग्निकाण्ड उपस्थित कर देने के मूल में चतुरसिंह का हाथ न होकर इस डाकू दल का रहा हो। उनका मुख्य ध्येय इस अग्निकाण्ड की आड़ में बारात और अतिथियों को लूटना रहा हो।

मन-ही-मन उसने भगवान को धन्यवाद दिया कि घटना केवल कामिनी के हरणमात्र के पश्चात् समाप्त हो गयी।

इसी के साथ उसके मन में एक प्रश्न और उठा—परन्तु चतुरसिंह अचानक क्यों गायब हो गया ?

फिर तुरन्त ही उसका समाधान भी उसके सम्मुख उपस्थित हो गया। उसने सोचा कि ऐसा भी सम्भव है डाकू लोग चतुरसिंह का भी हरण कर ले गये हों। चतुरसिंह ने बाधा उपस्थित करने की चेष्टा की हो और उसमें उसे कुछ चोट लग गयी हो। पैसे के लालच में अक्सर इस प्रकार की घटनाएँ हो जाया करती हैं।

गजेन्द्र का मन आत्मग्लानि से भर गया। वह अपने को मन-ही-मन धिक्कारने लगा कि बिना सोचे-समझे वह एक निर्दोष व्यक्ति को दोषी ठहराकर कोसता रहा है।

वह इन्हीं विचारों में डूबा हुआ था कि अचानक एक प्रश्न उसके मन में उठ खड़ा हुआ। उस डाकूदल का सरदार कौन है ? घटनाक्रम से स्पष्ट था कि कोई व्यक्ति अवश्य था जिसने चाकू फेंका था और वह निकल भागने में सफल भी हो गया।

न जाने क्यों उसके मन में विचार उठा कि सम्भव है इस डाकू दल का नायक चतुरसिंह हो ?

बहुतेरे कथन जो एक समय महत्वहीन होते हैं, घटनाक्रम और किसी विशेष संदर्भ में महत्वपूर्ण हो जाते हैं। शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। और अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

चतुरसिंह और गजेन्द्र बचपन के साथी थे। आज उसे खिलवाड़ में कहे गए वाक्य स्मरण आ रहे थे। ज्यों-ज्यों वह सोचता था त्यों-त्यों उसकी धारणा को सम्बल मिलता था कि चतुरसिंह ही उस डाकूदल का संचालक है।

एकाएक उसके मस्तिष्क का तनाव इतना बढ़ गया कि चुपचाप बैठना असम्भव प्रतीत होने लगा। जब कुछ न सूझा तो उसने रमेसर काका को आवाज़ देकर पुकारा।

रमेसर के आते ही गजेन्द्र ने अपने मन का भेद और अपनी शंका उनके सामने रख दी। रमेसर ने तुरन्त उसका खंडन करते हुए कहा—"नहीं, ऐसा कुछ सम्भव नहीं है। कामिनी बिटिया उसके साथ चली गयी हो, यह तो मैं मान सकता हूँ; किन्तु वह डाकू बन जाय, ऐसा खून उसमें नहीं है।"

"खून! अरे, खून को पानी बनते कितनी देर लगती है काका! पानी बनकर भी उसका रंग लाल और वैसा ही गाढ़ा बना रहता है। खून की शुद्धता मनुष्य के कर्म और विचार से प्रकट होती है।"

"ठीक कहते हो बेटा, परन्तु मुझे तो चतुरसिंह में ऐसी कोई बुराई नहीं दीख पड़ी जिससे ऐसी आशंका हो।"

"ज़रा ध्यान से विचार करो। उसके पास इतना पैसा कहाँ से आया? उसकी आय का स्रोत क्या था? घर की परिस्थिति किसी से छिपी है नहीं। कोई का खज़ाना ही कहीं से मिल गया हो तो और बात है।"

गजेन्द्र के तर्क को सुनकर रमेसर का विश्वास डोल उठा। मन-ही-मन वह सोचने लगा कि सम्भव है कि भैया की बात ठीक हो।

एक क्षण रुककर गजेन्द्र पुनः बोला—"कुछ ही दिनों में इतना काम-काज बढ़ा लेने के लिए रुपया कहाँ से आया? अगर आमदनी से पेट भरता होता तो वह सब कुछ बेचकर जाने की क्यों सोचता? फिर व्या-पार की ओर वह कब और कितना ध्यान देता था, यह किसी से छिपा

नहीं है। उसे तो रात-दिन मीटिंग और भाषण से ही छुट्टी नहीं मिलती थी। अफ़सरों के बंगलों के चक्कर और नेता लोगों की सलामी के पीछे भी उसका यह स्वार्थ छिपा रहा होगा कि पुलिस की दृष्टि से बचा रहे।"

रमेसर ने उसकी उस बात का भी कोई उत्तर न दिया।

गजेन्द्र ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा की। यह देखकर कि रमेसर कुछ नहीं कहना चाहता, वह पुनः बोला—"काका, अगर पुलिस चेष्टा करे तो क्या चतुरसिंह का पता नहीं चल सकता? तुम जाकर थाने में पता लगाओ न? सम्भव है, अब तक किसी ने क़बूल किया हो और डाकू सरदार गिरफ़्तार हो गया हो। अगर न पकड़ा गया होगा तो भी कम-से-कम इस बात का निश्चित रूप से पता चल जायगा कि इस दल से चतुरसिंह का कुछ सम्बन्ध है या नहीं। दारोगा जी से कहना कि वे इन लोगों से पता लगाने की चेष्टा करें कि अग्निकाण्ड और कामिनी को भगा ले जाने में इस दल का कोई हाथ तो नहीं है, फिर चतुरसिंह के हरण की सम्भावना पर दृष्टि रखते हुए भी तहक़ीक़ात की जा सकती है।"

रमेसर सर झुकाए अपने विचारों में डूबा तद्वत खड़ा रहा। फिर न जाने क्या सोचकर उसने कहा—"एक बार ठाकुर साहब से मिल लेते तो शायद कुछ पता लग सकता। बोल तो बेचारे पाते नहीं हैं। पर उनकी आँखें चारों तरफ़ किसी को ढूँढती-सी रहती थीं। मैं जब भी जाता हूँ तो वह द्वार की ओर देखने लगते हैं जैसे वह समझ रहे हों कि मेरे साथ तुम भी आये होगे। उनका संकेत भी हम लोगों की समझ में नहीं आता। सम्भव है तुम कुछ अर्थ निकाल सको।"

"मनुष्यता के नाते मैं जो कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। वैद्य जी से कह दिया है। ब्लाक के डाक्टर से भी कह दिया है। भोजन के लिये महेश के घर से व्यवस्था कर दी है। इससे अधिक मैं क्या कर सकता हूँ? उनका स्वयं का लड़का होता तो भी शायद इससे अधिक खर्च नहीं करता।"

"प्रश्न केवल पैसे का नहीं है। तुम्हारे सिर्फ़ एक बार ही आने मात्र

से उनको जो सांत्वना प्राप्त होगी वह वैद्य-हकीम से थोड़े ही प्राप्त हो सकती है।"

"छोड़ो इस बात को। तुम थाने तक एक चक्कर लगा आओ।"

बहस करना व्यर्थ समझकर रमेशर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।

भवानी का घर उसकी दूकान के ऊपर ही था। उसके आगे-पीछे कोई न था। वर्षों पहले जब वह गाँव में आया था उस समय भी वह अकेला था और आज भी उसका अपना कोई न था। दूकान पर वह अधिक माल न रखता था। वह रोज माल लाता और संध्या तक बेचकर समाप्त कर देता। दो-चार सौ रुपये से अधिक का सामान दूकान में रखना उसके सिद्धान्त के विरुद्ध था।

दूकान छोटी होने के कारण किसी का ध्यान उसके ऊपर न जाता था। वह स्वयं ही लोगों की नजरों से दूर रहना चाहता था।

होली से निकलकर भवानी अपने घर गया। आँगन पार करके वह फुर्ती से सीढ़ी चढ़कर कोठरी का द्वार खोल भीतर जा पहुँचा।

भवानी ने आज के दिन की पहले से ही कल्पना कर ली थी। इस सम्बन्ध में उसकी योजना तैयार थी। झट उसने अपने कपड़े उतार फेंके और ट्रंक खोलकर पैन्ट कमीज पहन लिया। लालटेन के हल्के प्रकाश में शेव करने बैठ गया। ट्रंक के नीचे रखते हुए पर्स को उठाकर पैन्ट की जेब में डाल लिया। मोजा जूता पहनकर टाई बाँधता हुआ वह नीचे उतरा और आँगन का द्वार बन्द कर गाँव की सीमा की ओर निकलकर खेत की मेड़ पर जा पहुँचा। अपने पीछे वह किसी प्रकार का ऐसा चिन्ह नहीं छोड़ गया था जिससे प्रतीत होता कि गँवार भवानी सूट बूट धारी आधुनिक वेश-भूषा में छिप गया है।

प्रातःकाल लगभग दस मील दूर वह यमुना पार करके जब बस पर बैठा तो सचमुच उस क्लीन-शेव्ड श्वेत वस्त्रधारी भवानी को देखकर उसकी तलाश में नियुक्त सिपाही शक न कर सका।

डाकू लोग लगभग नौ बजे पकड़े गये थे। थाने पहुँचते-पहुँचते दस बज चुके थे। नये थानेदार बलराम चौधरी इस थाने पर प्रोमोशन पाकर आये थे। उनका वय अधिक न था। काम करने की लगन थी और प्रोमोशन पाने के पश्चात् उनकी लालसा कुछ और ऊपर उठने की हो गई थी। डाके के अभियुक्तों की गिरफ्तारी के साथ ही वे डिप्टी सुपरेन्टेण्डेण्ट बनने का स्वप्न देखने लगे थे। रास्ते भर सोचते रहे कि कम-से-कम सर्किल इन्सपेक्टर तो अवश्य ही हो जाऊँगा।

बलराम चौधरी जाति के धोबी थे। लँगड़ाते-लँगड़ाते बेचारे ने सात वर्ष में हाईस्कुल पास कर लिया था। साधारण सिपाही में भरती हुए थे। परन्तु पिता कप्तान साहब के कपड़े धोता था। अतः उनकी कृपा से वह एक साधारण सिपाही से पाँच वर्षों में ही थानेदार बन गये थे।

और बरसात में जिस प्रकार छोटी नदी-नाले अपनी सीमा भूलकर उफ़ान मारने लगते हैं। उसी प्रकार थानेदार बन जाने के पश्चात् उन्होंने भी धरती छोड़कर आसमान पर चलना प्रारम्भ कर दिया था। अपनी जाति वालों तथा अन्य निम्न वर्ग के लोगों के प्रति उनके हृदय में घृणा के अतिरिक्त कुछ न था?

उन्होंने थाने में पहुँचते ही सबको हवालात में बन्द कर दिया। फिर वे डायरी लेकर खानापूरी करने में लग गये।

थाना कल्याणपुर की उत्तरी सीमा की ओर था। उसी के निकट सरकारी अस्पताल था। धीरे-धीरे सब के निकट के सम्बन्धी थाने में जमा होने लगे। प्रत्येक व्यक्ति चाहता था कि उसका बेटा या उसका भाई छूट जाय।

कल्याणपुर इतना बड़ा गाँव तो न था कि वहाँ एक-दूसरे को लोग पहचानते न हों या थाने के किसी-न-किसी सिपाही से उनका घनिष्ट

सम्बन्ध न रहा हो। प्रत्येक व्यक्ति ने किसी-न-किसी के माध्यम से बलराम चौधरी के पास पत्र-पुष्प पहुँचाने की व्यवस्था करना प्रारम्भ कर दिया।

पहले तो उन्होंने किसी भी प्रकार की रिश्वत लेना अस्वीकार कर दिया। मुन्शीजी से उसने कहा कि इस केस के माध्यम से तरक्की हो सकती है, थाने के प्रत्येक कर्मचारी को इनाम भी मिल सकता है।

मुन्शीजी ने मुँह में भरे हुए पान की पीक को गले के नीचे उतारते हुए कहा—"हुजूर ठीक कहते हैं। मगर इसका यह मतलब नहीं कि जो मिल रहा है, उसे भी छोड़ दिया जाय। कुछ थोड़े से रुपये स्वीकार करने का मतलब यह तो नहीं है कि इन लोगों को रिहा कर देना होगा। थोड़ा-बहुत मिलने की छूट और खाने-पीने की सुविधा देने से काम चल जायगा।"

बलराम चौधरी जानते थे कि अगर वे न भी लेंगे, तो भी कोई अन्तर न पड़ेगा, क्योंकि हर एक को तो रोका नहीं जा सकता।

परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—"उन लोगों से कहो कि अपने-अपने किसी रिश्तेदार को सरकारी गवाह बनने को कहें।"

मुन्शीजी ने कहा—"सो सब ठीक हो जायगा। बस हुजूर, हर एक को थोड़ी-सी डाँट पिला दें और बाद में सरकारी गवाह बन जाने को कहें। इस बात का आप जिम्मा ले ही सकते हैं कि उसके बाद वह छूट जायगा। इसमें आप कानून के विरुद्ध भी कुछ नहीं करेंगे और''और हुजूर, इन लोगों के बाल-बच्चों की दुआ भी आपको मिल जायगी।"

"तुम जैसा समझो करो। मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि काम में कोई गड़बड़ी नहीं होनी चाहिए।"

एक ही घंटे के अन्दर थानेदार बलराम चौधरी की पत्नी तकिया उधेड़कर सिल चुकी थी। उसके अन्दर बँधे सौ-सौ के नोटों की संख्या में आठ की वृद्धि हो गयी थी।

परन्तु कोई भी अपने सरदार का नाम बताने को तैयार न हुआ।

अन्त में एक समय ऐसा भी आया जब बलराम चौधरी के धैर्य का बाँध टूट गया। वे स्वयं बेंत लेकर जुट गये।

सबसे अधिक क्रोध उन्हें बंशी पर आ रहा था। जो उनकी जाति का होकर भी उनकी सहायता नहीं कर रहा था। उसे वह अपने प्रोमोशन का व्यवधान समझ कर बदला लेने पर जुट गये। बेंत ठीक उसी प्रकार चल रहा था जैसे उसकी जाति वाले घुटने तक पानी में खड़े होकर पाट पर कपड़ा पटकते हों।

बलराम स्वयं थक कर चूर हो चुका था। मारने का प्रयास छोड़कर वह विश्राम करने की सोच ही रहा था कि बंशी चीख कर बोला—"ठहरिये, मैं बतलाता हूँ।"

लहराता हुआ बेंत हवा में ही टँगा रह गया और बंशी केवल भवानी का नाम बुदबुदा कर बेहोश हो गया।

बेहोश बंशी को होश में लाने का आदेश देकर बलराम चौधरी अपने ऑफ़िस में आ गये और तुरन्त ही चार सिपाहियों के साथ नायब दरोगा भवानी के घर की ओर दौड़ पड़े।

उपस्थित गाँव वाले भवानी का नाम सुनते ही सकते में आ गये। किसी को स्वप्न में भी आशा न थी कि इतना सीधा-सादा, गरीब साधारण दुकानदार इस गिरोह का नायक होगा। अचानक प्रत्येक के मन में एक-दूसरे के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया। सब सोच रहे थे कि सम्भव है दूसरा भी कोई इस दल का सदस्य हो।

अब थाने के प्रांगण में सैकड़ों लोग जमा थे। ब़रामदे के एक कोने में खड़ा हुआ रमेसर सब देख रहा था। भवानी का नाम सुनने के पश्चात् उसके मन में इस घटना के हीरो को देखने की उत्कंठा जागृत हो उठी। लोगों से सुनकर कि वह अभी तक किशन के साथ हौली में बैठा हुआ शराब पी रहा है, रमेसर उसी दिशा की ओर जाती हुई भीड़ के साथ चल दिया।

१०

तन की भूख शान्त होते ही कामिनी के सोये हुए विवेक ने पुनः अपनी आंख खोल दी। पलंग पर चुपचाप अलस भाव से पड़े-पड़े उसने तत्कालीन परिस्थिति पर दृष्टिपात किया तो अनायास उसकी समझ में आ गया कि चतुरसिंह के वाक्जाल में फँस कर वह जो कुछ भी कर बैठी है उसकी संज्ञा केवल वासना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

आत्मग्लानि से उसका मन-प्राण भर गया। वह मन-ही-मन पछता रही थी। परन्तु तीर कमान से निकल चुका था और सम्हल पाने का समय बीत चुका था।

जैसे बीता हुआ समय पुनः वापस नहीं लाया जा सकता, उसी प्रकार उजड़ा हुआ कौमार्य फिर नहीं मिलता।

अव्यक्त वेदना से उसका मन हाहाकार करने लगा और उसकी छाप उसके सुन्दर मुख पर उद्भासित हो उठी।

चतुरसिंह के लिये यह कोई नवीन अनुभव न था। कितनी ही बार ऐसे अवसर उसके समक्ष आ चुके थे। कामिनी के आनन पर पीड़ा के चिह्न देख कर वह समझ न सका कि उसे मर्मान्तक वेदना हो रही है।

निर्लज्ज भाव से मुस्कराते हुए उसने कहा—"दर्द हो रहा है क्या?"

कामिनी ने चाहा कि वह उसके मुंह पर थूक दे। परन्तु वह ऐसा कुछ न करके चुपचाप करवट बदलती हुई फफक कर रो पड़ी।

चतुरसिंह ने अत्यन्त मधुर और स्नेहासिक्त वाणी में पूछा—"अधिक कष्ट हो तो दवा का कुछ प्रबन्ध करूँ ?"

उत्तर में कामिनी ने अपना सर हिलाकर नहीं का संकेत किया। मुँह से केवल इतना कहा—"बराय मेहरबानी थोड़ी देर के लिये मुझे अकेला छोड़ दो।"

चतुरसिंह जानता था कि मानसिक सन्तुलन स्थापित करने के लिये ऐसे अवसरों पर एकान्तदान अचूक औषध का काम करता है। अतः वह कुछ न बोला और चुपचाप उठकर कमरे के बाहर चला गया।

एकान्त होते ही कामिनी का अन्तःकरण उसके सम्मुख कल्पनालोक में साकार हो गया। उसे अनुभव हुआ सारा वातावरण एक अट्टहास में गूंज रहा है। संसार की प्रत्येक चेतन और अचेतन, चल और अचल मानव और प्रकृति सभी कुछ उसकी ओर इंगित कर के पुकार-पुकार कर कह रही है—'देख लो, यह है चरित्रहीनता का साकार स्वरूप !'

घबरा कर उसने करवट बदल ली। उस पर भी उसके कानों में गूंजता हुआ अट्टहास और उससे संलग्न अन्य वाक्य अपने पूरे स्वर-नाद के साथ झंकृत होता रहा।

प्रातः के मन्द समीर में बाहर पेड़-पौधे अपनी गति से झूम रहे थे। कमरे के परदे, छत में लटके हुए झाड़-फ़ानूस सभी एक ताल पर नृत्य कर रहे थे। कामिनी को प्रतीत हुआ कि सभी उसके पतन-पर्व का उत्सव मना रहे हैं !

मानव प्रकृति का स्वाभाविक गुण है कि वह कोई पाप कर्म करने के पश्चात् अपने को दोष-मुक्त करने के प्रयास में विभिन्न प्रकार के तर्क उपस्थित करता है। भाग्य, विधि का विधान आदि का सहारा लेकर अपनी आत्मा के रुदन को शान्त करना चाहता है। जिस कर्म के लिये वह दूसरे को कभी क्षमा नहीं करता, स्वयं जब दोषी होता है तो उसी अक्षम्य कर्म को झूठे आवरण से ढक कर उसे छिपा लेने की चेष्टा करता है, अपनी आत्मा का हनन करते उसे लाज नहीं आती। सदैव-सदैव के लिये

महासागर में विसर्जित कर देता है।

कामिनी को भी कुछ ही क्षणों के पश्चात् सत्य के धरातल पर वापस लौटने के लिए बाध्य होना पड़ा। आत्मा को शान्ति प्रदान करने के लिये उसका तर्क था कि जब आत्मघात सम्भव नहीं है, तब जीवित रहने के लिये कोई आसरा और सहारा अवश्य होना चाहिए। तो ऐसी दशा में अन्य किसी सहारे को कंठ से लगाने की अपेक्षा यह क्या बुरा है।

विदग्ध आत्मा कराह कर प्रश्न कर बैठी—'सहारे के लिये क्या तन का सौदा आवश्यक है? माना कि आवश्यक था तो अग्नि को साक्षी बनाकर सौंपती। नहीं, तुम मिथ्या भाषण कर रही हो। आसरा तुम्हारे लिये ऐसी समस्या नहीं थी जिसका समाधान न हो सकता। सत्य से विमुख होने की चेष्टा मत करो। स्वीकार क्यों नहीं कर लेती कि यह सारा प्रयास तन की प्यास बुझाने का बहाना मात्र है।'

कामिनी हतप्रभ हो उठी। उसका कुंठित तर्क चुपचाप खड़ा-खड़ा टुकुर-टुकुर देखता रहा!

पुनः उसकी आत्मा का स्वर गूँज उठा—'तुम वासनामयी हो। इसी भाँति उस दिन भी तुम गजेन्द्र को वासना के पंक में ढकेल रही थीं। छिः तुम साकार वासना हो।'

तब मन-ही-मन वह चीत्कार कर उठी—'नहीं...ऐसी कोई बात नहीं है। मैं गजेन्द्र को प्यार करती थी, इस कारण उसे सब कुछ अर्पण कर देना चाहती थी। अपने अस्तित्व को मिटा देना चाहती थी। क्योंकि समर्पण का अर्घ्य देकर ही नारी अपने आपको ठीक प्रकार से समझ पाने का अवसर प्राप्त करती है।'

'अच्छा,...तो इसी कारण उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर तुमने अपने को चतुरसिंह को अर्पित कर दिया। बोलो,...हाँ...हाँ, कह दो कि तुम उससे भी प्रेम करती थीं। झूठ का सहारा मत लो। एक क्षण आता है, जब बालू की नींव पर बना महल स्वयं ढह जाता है!'

'तुम व्यर्थ ही चिन्तित हो। मैं आज ही विवाह करके तुम्हारी भूल

सुधार लूंगी। परन्तु मेरे एक प्रश्न का उत्तर तुम भी तो दो। क्या धर्म की आड़ प्राप्त हो जाने के पश्चात् वासना का स्वरूप बदल जाता है ? और क्या एक व्यक्ति का प्रेम न प्राप्त होने पर दूसरे से वही प्रेम मिल जाता है ? मतलब यह है कि तुम्हारी तरह प्रेम भी अपना रूप बदल-बदलकर अर्घ्यदान करने में उज्ज्वल बनता रहता है। शर्म करो कामिनी !

जरा ठहरो, पाप और पुण्य में अन्तर बड़ा ही सूक्ष्म है। समाज की स्वीकृति प्राप्त कर्म धर्म है और उसके विपरीत सब कुछ अधर्म।...

चलो स्वीकार कर लिया। इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि सामाजिक मूल्यों के विघटन के साथ-साथ आज का पाप कल को पुण्य में बदल सकता है ! अब चुप क्यों हो ? बोलो न ?

सुनो-सुनो, 'कल के समाज की मान्यताओं के सहारे तो आज का जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता। आज तुम जिस राह पर चल रही हो वह समाज की निम्नतम स्तर की नारियों का जीवन है। वह भी तो तन का सौदा करती हैं ! पैसे को प्राप्त करने के लिये और तुमने भी सांसारिक सुख के हेतु सौदा ही किया है अपने तन का, सहारा या आसरे का ढोंग रचकर !'

कामिनी ने अपने क्षत-विक्षत अन्तर की अकुलाहट को चतुरसिंह के साथ विवाह कर लेने का आश्वासन देकर दबा दिया। उठकर ड्रेसिंग टेबुल के सम्मुख जा बैठी और अपनी उलझी, बिखरी अलकों को सँवारने में संलग्न हो गयी।

दूर से आ रहे टन-टन के शब्द से अचानक उसकी तन्द्रा टूट गयी तो उसकी दृष्टि सामने दीवार पर टँगी घड़ी की ओर जा टिकी। नौ बजने में एक मिनट देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। समय की गति को वह न बाँध सकी।

फिर कुछ भूख का आभास हुआ। प्रातः चाय के साथ उसने नाश्ता भी तो न किया था। फिर संध्या को उसके कंठ के नीचे अन्न का दाना तक न गया था।

एकाएक उसकी इच्छा हुई कि चतुरसिंह आये और उसको मनाकर भोजन करने के लिए बाध्य करे।

परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। चतुरसिंह दूसरे कमरे में आरामकुर्सी पर लेटा हुआ सम्भोग की सुखद जड़ता का आनन्द ले रहा था। जलती सिगरेट उँगलियों में फँसी हुई थी। धुएँ की लकीर का कुछ दूर तक सीधी जाकर लहरा उठती और अन्त में शून्य में विलीन हो जाती। उसकी दृष्टि सामने द्वार के पार छज्जे पर टिकी हुई थी। उसकी धारणा थी कि वह क्षण अवश्य आयेगा जब कामिनी के लिये एकान्त असहनीय हो जायगा। किसी को न पाकर उसे स्वयं कमरे के बाहर आना पड़ेगा। उस दशा में वह उसे अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ सकेगा।

यों भी विजय-प्राप्ति के पश्चात् उसका दर्प अब झुकने के लिये प्रस्तुत न था।

स्वार्थ-सिद्धि के पश्चात् सभी आँख फेर लेते हैं। हमारा अहं विजेता होकर विजित के सम्मुख दीनता प्रकट करने तथा गिड़गिड़ा कर खुशामद करने हेठी स्वीकार करने की स्वीकृति नहीं देता।

अन्त में कामिनी का मान खण्ड-खण्ड होकर बिखर गया! चतुरसिंह की टोह लेने के लिये वह छज्जे पर आ खड़ी हुई।

सुखदा अपने कमरे में चुपचाप पलँग पर लेटी हुई थी। बगल में दूसरे पलँग पर उसकी बहन शोभा दिन भर की थकान के उपरान्त विश्रामदायिनी निद्रा की गोद में सो रही थी।

पर सुखदा की पलकों की निद्रा न जाने कहाँ लुप्त हो गयी थी। मन की उलझन उसे सोने ही न देती थी। लगातार चेष्टा करने के उपरान्त उसके मन में एक खीझ-सी उत्पन्न हो गयी थी।

रह-रहकर पिछले कुछ दिनों की भाँति आज भी भविष्य एक विराट

प्रश्न-चिन्ह का स्वरूप धारण करके उसके मानस को उद्वेलित करने लगा।

प्रलयंकर झंझावात का प्रबल वेग अब असहनीय हो उठा तो सुखदा अपनी दुर्दम परिस्थिति की भयंकरता से घबरा कर, बन्द कमरे की घुटन से निकल कर, बाहर खुली छत पर आ खड़ी हुई। हलकी चाँदनी गहन अन्धकार के वक्षस्थल ओढ़ी हुई मैली चादर-सी चमक रही थी। वातावरण की नीरवता झींगुरों की शब्द-तार विरामहीन गुंजन उत्पन्न करती हुई भी एक उदासी को बिखेर रही थी। अतृप्ति का उद्घोष चतुर्दिक व्याप्त था।

जीवन-सौख्य की कामना ही मनुष्य को जीवित रहने की प्रेरणा देती है। जब कभी वही झंझावात की गोलाकार गह्वर भँवर में डूबने लगता है, तो अकुलाहट चरम सीमा पर पहुँच जाती है। प्राणाप्रण से चेष्टा कर उसे बचाने के प्रयत्न में रत मनुष्य तिनके का सहारा ढूंढ़ने लगता है।

सुखदा के सम्मुख उसका भविष्य एक अन्धकार गर्भित गह्वर रूप में बिछा हुआ था। उसके अन्तराल से उसके नारीत्व की सिसकियाँ प्रस्फुटित हो-होकर वातावरण को विदग्ध कर रही थीं।

सहसा प्रश्न उठा—मन-प्राण की अकुलाहट का कारण...?

इच्छित वस्तु के सुलभ होते ही उसे ठुकरा देना।

उसका मन, उसका हृदय, उसका तन सभी प्रतिक्रिया पर प्रतिक्रिया बनाकर विद्रोह कर रहे थे। कल तक वह विवाह को एक बन्धन मानती थी, आत्मा को मृत्यु समझती थी, नारी के लिये।

परन्तु गजेन्द्र से भेंट होते ही सारी मान्यतायें बरफ़ की भाँति पिघल गयीं।

रह-रह कर एक अव्यक्त क्षोभ से उसका मन कुंठित हो उठता था। जल्दी में वह कोई निश्चय करना नहीं चाहती थी; किन्तु फिर भी सोचने लगती कि जीवन का मोड़ तो ऐसी घड़ियों में प्राणवत्ता प्राप्त करता है।

वह समस्त सुख, जिसकी कामना किसी नारी को होती है, जिसको पाने के लिये वह तपस्या करती रहती है, सहसा उसके एक संकेत पर ही उसकी झोली में भर जाता है।

परन्तु वह मिथ्या अभिमान में फँस गयी।

अब क्या किया जाय ?

अभी भी क्या बिगड़ा है ? गजेन्द्र के समक्ष जाकर, अपनी पराजय स्वीकार कर लेने मात्र से, प्रस्तुत समस्या को समाधान मिल जायगा।

'अच्छा, तो अपने मान-सम्मान, आदर्श और विवेक की आहुति चढ़ा कर भी जीवन-सौख्य का उपभोग किया जा सकता है ?

बड़ी महिमा है तुम्हारी। तुमको कोख में धारण करके तुम्हारी माँ धन्य हो गयी थी।

गाली देना आज शक्ति का परिचायक माना जाता है।

—इससे तो गजेन्द्र का पुरुषोचित अहंकार विजयी होकर जीवन की सुख-शान्ति को नष्ट कर देगा।

हूँ, तो मैं यहाँ से चली क्यों नहीं जाती ?

कहीं भी जाकर मैं जीवन-यापन कर सकती हूँ। नौकरी मिलना मेरे लिये कठिन नहीं। मुझे किसी पर निर्भर रहने की आवश्यकता ही क्या है ?

परन्तु एक नारी के लिये अकेले ही संसार सागर को पार करना थोड़ा दुष्कर है।

गजेन्द्र पुरुष है। वह एकाकी जीवन व्यतीत कर सकता है। प्रकृति ने पुरुष को शक्तिशाली बनाया है। वह संसार की विघ्न-बाधाओं से टकरा कर उन्हें चूर-चूर करके अपना पथ स्वयं प्रशस्त कर के आगे बढ़ सकता है।

परन्तु मैं ? मैं स्त्री हूँ। नारी में साहस हो सकता है, बल नहीं। नारी को जीवन-यात्रा में साथ चलने वाला एक साथी चाहिये। वह किसी सहारे के बिना खड़ी नहीं हो सकती। उसके निर्बल हाथों को सदा पुरुष के बलिष्ठ हाथों का अवलम्ब चाहिये।

सुखदा के मन में विचारों का ऊहापोह एक ओर जा पड़ा और तभी सहसा एक प्रश्न और उठ खड़ा हुआ।

अन्य प्रश्नों का समाधान तो मिल सकता है। परन्तु आश्रय की समस्या भी तो नारी की प्रमुख समस्याओं में है। संसाररूपी भवसागर के भयंकर प्राणलेवा जीव-जन्तुओं से रक्षा—बिना किसी आश्रयदाता के कहाँ तक सम्भव है?

जिसको प्राप्त करने के लिये तपस्या करनी पड़ती है; राह में जिसे खोजते-खोजते, ताकते-ताकते आँखें पथरा जाती हैं; क्या वह मनचाहा जीवन-साथी सब को प्राप्त हो जाता है?

फिर आज अनायास उसे सम्पूर्ण हृदय के साथ पाकर भी स्वीकार नहीं कर रही हूँ, क्यों?

मन-ही-मन सुखदा रो पड़ी। पलकों की सीमा पार कर अश्रुकण चुपचाप उसके कपोलों पर बह चले।

वह अपने आप से प्रश्न पूछ बैठी—'जीवन भर के दुःख का यह वरण किस हेतु? किस कारण वह सुख-शान्ति एवं सौभाग्य से ही नहीं; वरन् नारी जीवन के सार्वभौम गौरव-मातृत्व से भी वंचित रहने का निश्चय कर रही हूँ?'

मन-ही-मन उसने अपनी पराजय स्वीकार कर लेने का निश्चय किया। इस निश्चय के अंचल में प्रबल तर्कों का सम्बल छिपा था।—अगर गजेन्द्र से उसका विवाह परम्परा के अनुसार हो गया होता और कामिनी के प्रति आकर्षण का पता बाद में चलता तो? सम्भव है वह सत्य ही कह रहा हो कि उसकी रूप-लिप्सा का लगाव कामिनी के प्रति तनिक भी नहीं है।

सम्भव था कि वह गजेन्द्र के कमरे में जाकर इस घटना-क्रम को उसी क्षण दूसरी ओर मोड़ देती, परन्तु तत्काल् उसके कानों में गजेन्द्र का स्वर सुनाई पड़ा। वह रमेसर काका को पुकार रहा था।

एकाएक वह इस शीघ्रता में ऐसा कुछ निश्चय न कर सकी कि रमेसर

काका की प्रतीक्षा न कर के स्वयं उसके कमरे में जाकर देख ले कि वह काका को किस लिये बुला रहा है।

पर उसकी यह दुविधा रमेसर काका के सीढ़ियों पर चढ़ते हुए पदचाप की ध्वनि से समाप्त हो गयी।

वह एकाग्र चित्त हो चुपचाप उन दोनों की बातचीत सुनने लगी। गजेन्द्र रमेसर काका को थाने भेज रहा है। उस सन्दर्भ में कामिनी का नाम सुन कर पुनः उसका हृदय पूर्वनिश्चय की परिधि में घिर गया।

रमेसर काका के बाहर निकलने के पश्चात् सुखदा न जाने किस अज्ञात प्रेरणा के सहारे तिमंजिले की सीढ़ी चढ़कर गजेन्द्र के कमरे में जा पहुँची।

होली में प्रवेश करते ही रमेसर प्रथम दृष्टि में कल्लू को पहचान गया! तभी एकाएक एक विचार उसके मन में कौंध गया।

अपरिचित कल्लू से परिचय प्राप्त करने के पश्चात् उसे अपनाने का इससे अधिक सुन्दर अवसर पुनः कब आयेगा। यह विचार करके वह कल्लू के समक्ष उपस्थित हो गया।

अपना परिचय देते हुए उसने उसके साहस की प्रशंसा की भूमिका आरम्भ की। कल्लू तत्काल वार्तालाप के मध्य छिपे हुए मर्म को भाँप गया। अतः उसने नाटक की पृष्ठभूमि की स्थापना करके अत्यन्त विनम्रता और सौजन्य प्रदर्शित करते हुए उसे बैठने का संकेत किया और दो घूंट शराब पीकर उसे कृतार्थ करने का अनुरोध किया।

रमेसर ने स्थान ग्रहण किया ही था कि अपनी औकात का स्मरण आते ही किसान संकुचित हो उठा और झट खाट छोड़कर समीप खड़ा हो गया। फिर रमेसर को झुक कर प्रणाम का अभिनय करता हुआ वह बोला—"बड़ी उमर है काका तुम्हारी। अभी-अभी मैं बाबू साहब से

तुम्हारे सम्बन्ध में ही बात कर रहा था। दरअसल हमें चतुरसिंह भैया के धन्धे के बारे में बात करनी थी।"

रमेसर किशन की प्रवृत्ति से परिचित था। अतः उसने कहा—"अरे तू यह बेवक्त की शहनाई कहाँ छेड़ बैठा। जा, जरा पंजाबी से मेरा नाम लेकर कह दे कि चखने को कुछ भेज दे।"

फिर ठेकेदार को सम्बोधित करता हुआ वह बोला—"कुछ सोडा-बोडा भेजो न ? मेहमान की कुछ खातिर न करोगे क्या ?"

ठेकेदार स्वयं गद्दी से उठ कर, खाट के समीप आकर खड़ा हो गया और बोला—"आज बाबू साहब के कारण ही तो अपनी जान बच गयी काका, नहीं मैं तो मर ही गया होता ! बाबू साहब की खातिर आज मैं स्वयं करूँगा। यह तो सारे गाँव के मेहमान हैं।"

कथन के साथ ही वह स्वयं अपनी उक्ति पर हँस पड़ा। उसके संकेत पर सोहन ने ठेका बन्द करना प्रारम्भ कर दिया। ग्राहकों की संख्या नगण्य थी, क्योंकि उस घटना ने सबके हृदय में एक दूसरी उत्तेजना भर दी थी।

कल्लू, रमेसर और ठेकेदार की अन्तरंग गोष्ठी में किशन को भी स्थान मिल गया। कल तक जो उपेक्षित था; जिन लोगों के समक्ष बैठने का साहस न कर सकता था उन्हीं के साथ बैठना, बैठना ही नहीं साथ में पीना भी।

किशन में सहसा आत्म-गौरव जागृत हो गया। रमेसर काका के प्रति कृतज्ञता से उसकी आँखें सजल हो उठीं। गिलास उसके समक्ष रक्खा हुआ था, किन्तु वह सोच रहा था कि मुझे सब दुष्कर्म छोड़कर कुछ ऐसी राह अपनानी चाहिये जिससे मान-मर्यादा में वृद्धि हो।

अब उसे ध्यान आया कि आज कल्लू के कारण यह सम्मान प्राप्त जरूर हो गया है परन्तु दिन के उजाले में वह पुनः मनुष्य से चमार बन जायगा।

वार्ता-विनोद का बाजार गर्म था। सब पी रहे थे। किसी का ध्यान

किशन की ओर न था। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि वह आज की स्थिति से लाभ उठाने की पूर्ण चेष्टा करेगा। इस सन्दर्भ में वह रमेसर और कल्लू से प्रार्थना करेगा कि उसे आर्थिक सहायता देकर किसी प्रकार का छोटा-मोटा व्यापार करा दें। साथ ही उसने तय किया कि वह संध्याकालीन प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र में जाकर पढ़ना-लिखना सीखने का भी प्रयत्न करेगा।

एकाएक किशन चतुरसिंह का नाम सुन कर चौंक उठा। अब ध्यान-पूर्वक वह ठेकेदार का वक्तव्य सुनने लगा। ठेकेदार उसके व्यापार के सम्बन्ध में कल्लू को बता रहा था। साथ ही उसे यह भी समझा रहा था कि हरिपुर के स्थान पर यहीं कल्याणपुर में कोई काम-काज प्रारम्भ करे तो मजा आ जाय।

कल्लू बोला—"मैं अकेला आदमी हूँ। कोई ऐसा काम चाहता था, जिसमें अधिक झंझट न हो, इसलिये सोच रहा था कि राइस मिल लगा ली जाय। सरकारी चावल का कोटा मिलता है। बस, उतना ही काम करना चाहता हूँ, जिससे दोनों जून का खाना चल जाय।"

रमेसर बोला—"अरे भाई, जीवन-भर मारे-मारे फिरते रहे हो! आज अवसर है, तो कोई छोटा-मोटा काम लेकर जम क्यों नहीं जाते!"

ठेकेदार बोला—"कुछ न हो तो फिलहाल इसी फाटक के बगल में, दालान को ठीक-ठाक करवाकर, एक आटे की चक्की ही लगा लो। देख-भाल के लिए एक आदमी रख लेना। रहने के लिए फिलहाल दालान के ऊपर जो कमरा है काफी होगा।"

किशन चुपचाप सुन रहा था। उसने सोचा कि प्रथम अवसर मिलते ही वह कल्लू से अपने सम्बन्ध में कहेगा और मुनिया के हाथ की ओर बढ़ायेगा।

अर्ध-रात्रि से अधिक व्यतीत हो चुकी थी। एक मत से सबने सोने का निश्चय किया और गोष्ठी समाप्त हो गयी।

सब के साथ उठकर कल्लू पाण्डेय की धर्मशाला की ओर चल दिया। सुरक्षा की दृष्टि से ठेकेदार ने सोहन को साथ ले लिया, जिसके हाथ में बल्लम लगी पाँच हाथ की लाठी थी।

राह में अवसर निकालकर रमेसर ने कल्लू के कान में धीरे से कह दिया—"इस अवसर को हाथ से निकलने मत दो। बुढ़ापा आ गया है, कब तक जंगलों में भागते फिरोगे? रुपए का प्रबन्ध मैं कर दूंगा।"

"सोचता तो मैं भी हूँ। परन्तु पुलिस सूंघती हुई आ पहुँची तो?"

"तुम चिन्ता न करो, मैं जो हूँ। कल ही मैं प्रसिद्ध कर दूंगा कि तुम मेरे रिश्तेदार हो। फिर किसी की क्या मजाल है जो तुम्हारी ओर आँख भी उठा सके।"

"तुम्हारे आने के पहले भी मैं यही सोच रहा था। शाम को ही किशन ने एक लड़की के बारे में कहा तो मेरे मन में आया कि घर बसा लूं। अरे अब बुढ़ापे में तो दो रोटी का आसरा हो ही जाना चाहिये।"

"ठीक है। अगर लड़की पसन्द आ जाय, तो जरूर घर बसा लो। कम-से-कम मुझे भी भौजी के हाथ का खाना खाने को मिल जाया करेगा।"

"साहस नहीं होता। सोचता हूँ कि भाग्य में स्त्री-सुख होता, तो भागवती ही क्यों इस तरह छोड़कर चली गयी होती। फिर पचास की उमर होने आयी। समय के पद-प्रहार से जर्जरित शरीर में अब क्या शेष रह गया है?"

"पागल हो। इस उमर में कितने ही लोग विवाह करते हैं। तुम तो पैंतीस-चालीस से अधिक दिखते नहीं हो! खैर, पहले लड़की भी देख लो। फिर शान्तिपूर्वक विचार कर लेना।"

फिर एकाएक सबके आ जाने से चर्चा का विषय बदल गया।

पाण्डेय की धर्मशाला स्टेशन के समीप थी। उस स्थान पर बिजली आ चुकी थी। सड़क पर मन्द प्रकाश वाले बिजली के बल्ब जल रहे थे। दिल्ली से मुग़लसराय जाने वाली पारसल गाड़ी अकसर लेट ही आती है

और आज भी लेट ही थी। स्टेशन पर वह अभी खड़ी थी। यात्रियों के आवागमन से उस क्षेत्र में कुछ हलचल उत्पन्न हो गयी थी।

धर्मशाला का फाटक अपने नियमानुसार बन्द हो चुका था। लोहे की जाली वाला फाटक खिंचा हुआ था। आँगन के मध्य में एक बल्ब जल रहा था, जिसका प्रकाश चारों ओर फैला हुआ था। चौकीदार अन्दर की ओर फाटक के समीप सो रहा था। चारों ओर नीरवता का साम्राज्य छाया हुआ था।

रमेसर ने किशन को संकेत किया कि वह चौकीदार को जगाये।

किशन ने चौकीदार को आवाज़ दी।

चौकीदार के लिये इस प्रकार रात-बिरात जगाया जाना कोई नवीन बात न थी। अतः करवट बदलते हुए उसने कहा—"फाटक तो सवेरे पाँच बजे खुलेगा। रात को फाटक खोलने का हुक्म नहीं है।"

किशन ने रोब से ज़रा डाँटते हुए कहा—"किसका हुक्म नहीं है? ज़रा होश सम्हाल के बात करो, आँखें खोलकर देखो, ठाकुर साहब के मेहमान आये हैं।

वैसे तो चौकीदार पर इन बातों का कोई असर न पड़ता किन्तु किशन के स्वर के रोब से वह किंचित् घबरा गया और आँख खोलकर उठ बैठा।

सामने रमेसर को देखते ही उसके देवता कूच कर गये। इलाक़े के सबसे समृद्ध और बड़े जमींदार ठाकुर गजेन्द्र बहादुरसिंह का खास व्यक्ति। पल्लू को वह संध्या के समय ही देख चुका था। वह समझा कि यह कोई सामान्य यात्री न होकर ठाकुर साहब का विशिष्ट मेहमान है जिसको इतने लोग पहुँचाने आये हैं।

तब वह हड़बड़ाकर बोला—"आप हैं बाबू साहब! अभी खोलता हूँ।"

कथन के साथ ही उसने ताला खोलकर लोहे के फाटक को एक ओर सरका दिया।

सब लोग अन्दर प्रवेश कर चुके तो कल्लू के कमरे के समक्ष पहुँच कर उससे विदा लेने का उपक्रम करने लगे।

कल्लू ने किशन से कहा—"सवेरे आकर जगा देना। तुम्हारे साथ ही घूमने निकलेंगे।"

किशन को जैसे मनचाहा वरदान मिल गया हो।

रमेसर ने किशन को आदेश दिया कि वह कल्लू को लेकर हवेली पर आ जाय जिससे ठाकुर साहब से भेंट हो जाय।

ठेकेदार ने दोपहर के खाने के लिये कल्लू और रमेसर को ही नहीं, किशन को भी निमंत्रित कर दिया।

इस प्रकार घटना-क्रम से चार व्यक्ति एक सूत्र में बँध गये।

कुछ देर पश्चात् अपने-अपने बिस्तरों पर लेटकर हर व्यक्ति एक-दूसरे के सम्बन्ध में विचार कर वे लोग भविष्य की कल्पना में मित्रता की शृंखला को अधिक बलशाली बनाकर अपना स्थान निर्धारित करने में लीन थे सब निद्रा का आह्वान करने लगे।

११

सुखदा का इस अप्रत्याशित ढंग से आगमन देख कर गजेन्द्र का मन किसी अज्ञात आशंका से काँप उठा।

अभ्यर्थना के भाव से उठते हुए उसने प्रश्न किया—"इतनी रात तक जाग रही हो। क्या बात है ? भाभी की तबियत तो ठीक है ?"

गजेन्द्र के स्वर की व्यग्रता और स्वाभाविक प्रश्नों की झड़ी ने सुखदा के मन के अन्दर उठते हुए तूफ़ान को शान्त कर दिया। वह पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति पर वापस लौट आयी और इतनी रात में उसके कमरे में अपने को अकेली पाकर मन-ही-मन नारी-सुलभ लज्जा से झुक गयी।

परन्तु गजेन्द्र उसके मुख को देखकर ही अन्तर्मन में धधकती हुई ज्वालामुखी की विस्फोटक स्थिति को पहचान गया। उसने शान्त और सुसंगत ढंग से पूछा—"सुखदा तुम्हें नींद क्यों नहीं आयी, जागती हो ?"

सुखदा अपने पूर्व निश्चय की परिधि में स्थिर थी। यद्यपि उसके अन्तर का द्वन्द्व समाप्त हो चुका था। फिर भी आज वह गजेन्द्र को बता देना चाहती थी कि वह अपने निश्चय पर कितनी दृढ़ है।

अपनी वाणी में कठोरता भरकर सुखदा बोली—"कल मैं जा रही हूँ।"

कल्पना के आधार पर निर्मित संसार क्षणमात्र में खण्ड-खण्ड होकर

मिट्टी में मिल गया। उसकी आँखों में आँखें डालकर गजेन्द्र ने उत्तर दिया—"भाभी ने जाने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा ?"

वेदना से आँखें म्लान हो गयीं। स्वर में दर्द के स्वर झंकृत हो रहे थे।

सुनन्दा एक बार पुनः भ्रम में पड़ गयी। उसे प्रतीत हुआ कि सच-मुच उसके चले जाने से गजेन्द्र को बहुत दुःख होगा। एक बार मन में आया—हो। पर फिर उसी क्षण उसे ध्यान आया कि वह उसे रोक नहीं रहा है। वस्तुतः शादी के सम्बन्ध की बात उठाकर वह प्यार की बाजी को उसके हृदय जीतने की अपेक्षा दूसरे की कृपा और दबाव से जीतना चाहता है।

एक क्षण के लिये उसे लगा कि उसका विचार ठीक था। गजेन्द्र उससे विवाह केवल अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के निमित्त करना चाहता है!

तब किन्तु गम्भीर स्वर में सुनन्दा ने कहा—"मैं जा रही हूँ। दीदी की बात दीदी जानें।"

"ओः! परन्तु तुमने तो मुझे वचन दिया है कि तुम मुझसे विवाह कर लोगी।"

"मैंने यही बात स्वीकार की है कि जिस दिन मुझे संशय न रहेगा, बस उस दिन…!"

"पर तुम्हारे इस प्रकार चले जाने से मुझे फिर इस संशय को दूर करने का अवसर कैसे प्राप्त होगा ?"

"समय स्वयं उसका निर्णय कर देगा।"

उसके कथन की मुद्रा से स्पष्ट प्रकट होता था कि कोई भी शक्ति अब उसके दृढ़ निश्चय को पलट नहीं सकती।

एक क्षण गजेन्द्र चुप रहा। वह सोच नहीं पा रहा था कि इस नारी के सामने अपने पक्ष को बल देने के लिये कौन-सा तर्क उपस्थित करे। जिसको वह एक दिन अपने समीप पा कर अपने हृदय का समस्त प्यार

अर्पित कर बैठा था। वास्तव में इसी नारी के आगमन के कारण वह कामिनी द्वारा किये आघात के बावजूद भी जिन्दा था।

फिर एक ज्वार ऊपर आ पहुँचा। जीवनदायिनी सुखदा जा रही है और वह फिर भी जीवित है।

यह भाग्य की विडम्बना ही तो है कि मनुष्य कभी-कभी निरुपाय हो जाता है। कामना करने पर मृत्यु नहीं मिलती और जब मनुष्य जीना चाहता है तो क्रूर काल उसे जीने नहीं देता!

एक निःश्वास के साथ गजेन्द्र बोला—"चाहता तो नहीं था कि तुम जाओ, परन्तु तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हें रोका किस प्रकार जा सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता!"

सुखदा ने कोई उत्तर न दिया। उसका हृदय कराह उठा। अपने मन-चाहे प्रीतम से बिछुड़ कर जीना...कितना कठिन है। उसके मन में आया कि अगर यह सचमुच मुझे चाहता है तो रोक क्यों नहीं लेता? रोकने का अनुरोध तो कर ही सकता था। तुम अनुरोध की बात करती हो! अरे वह बल प्रयोग भी कर सकता था।

तो इस प्रकार जाने देने का तात्पर्य? इधर मैं जीवन भर वियोगाग्नि में जला करूँ, तड़ा करूँ, उधर सम्भव है, यह किसी अन्य के साथ अपनी रंगरेलियाँ करता रहे, जिस तरह कामिनी को भुलाकर मुझसे विवाह का प्रस्ताव कर रहा है।

तभी गजेन्द्र पुनः बोला—"मुझे अधिकार तो नहीं है। फिर भी पूछने की धृष्टता करता हूँ कि कहाँ जाने का विचार है?"

"अभी तो मैं कापुनर जाऊँगी। परीक्षाफल निकलने के पश्चात् फिर सोचूँगी भविष्य क्या चाहता है?

"एक अनुरोध कर सकता हूँ।"

गजेन्द्र अब अपने को उसकी अपेक्षा बहुत हीन और दयनीय समझने लगा था।

संयत वाणी में सुखदा बोली—"क्या?"

"कभी-कभी अपने कुशल क्षेम से सूचित करती रहोगी और जिस समय भी मेरी आवश्यकता होगी मुझे स्मरण कर सेवा करने का अवसर प्रदान करोगी।"

अब सुखदा को मुसकराना चाहिये था, पर वह गम्भीर थी ! बोली—"मैं चेष्टा करूँगी। मेरे बारे में आपको जीजा जी से मालूम हो ही जायगा। प्रातः जो गाड़ी जाती है उसी से आप मेरे जाने का प्रबन्ध कर दें, तो बड़ी कृपा होगी।"

"ठीक है, तुम्हारे आदेशानुसार सब प्रबन्ध ठीक समय पर हो जायगा।"

कथन के साथ ही वह मुँह फेर कर अपनी कुलदेवी के समक्ष जा खड़ा हुआ। हृदय की वेदना को रोकने की चेष्टा में उसकी आँख की कोर पर दो आँसू आकर टिक गये।

सुखदा क्षण भर खड़ी रही। उसे इस प्रकार के व्यवहार की आशा न थी; अपेक्षा थी कि स्वभावानुसार वह घर को सर पर उठा लेगा। चीख़-चीख़ कर हंगामा मचा देगा।

परन्तु ऐसा कुछ न हुआ तो वह हतप्रभ हो उठी। उसकी समझ में ही नहीं आया कि वह कुछ उत्तर दे या यों ही चुपचाप कमरे के बाहर चली जाय।

अचानक गजेन्द्र के स्वर से उसके विचारों का तारतम्य टूट गया। दृष्टि उठा कर देखा, वह उसी तरह उसकी तरफ़ पीठ किये खड़ा है।

वह कह रहा था—"रात्रि अधिक हो गयी है। सो लो थोड़ा। प्रातः यात्रा करना है।"

'यह व्यक्ति आदमी नहीं, पत्थर का देवता है,' सोचती हुई सुखदा उमड़ते हुए रुदन को कंठ में दबाये हुए कमरे से बाहर निकल गयी।

गजेन्द्र ने देवी के सिंहासन के सम्मुख अपना मस्तक टिका दिया। सिसकियों के मध्य अस्फुट शब्द उसके कंठ से निकल कर सूनी दीवार से टकरा गये।

'जीवन में यह तड़पन; यह कसक क्यों ? यह मेरे किस पाप का दण्ड है परम पिता ?'

वापस लौटते हुए रमेसर ने दूर से ही देख लिया कि गजेन्द्र के कमरे में लाइट जल रही है। वह समझ गया कि उसी की प्रतीक्षा कर रहा है गजेन्द्र। अतः वह थाने के डाकूदल के नायक के सम्बन्ध में सूचना देने के लिये अपने कमरे में न जा कर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

दूसरी मंजिल पर पहुँचते ही उसकी दृष्टि, ज्यों ही सामने कमरे के बन्द दरवाजे के पार आते हुए प्रकाश की रेखा पर जा पड़ी, त्यों ही वह समझ गया कि सुखदा जाग रही है। परन्तु वह रुका नहीं। ऊपर चढ़ता हुआ तीसरी मंजिल पर जा पहुँचा।

जब रमेसर कमरे में प्रविष्ट हुआ, गजेन्द्र उसी भाँति खड़ा हुआ था।

रमेसर वातावरण की नीरवता और उसके खड़े होने के ढंग से शंकित हो उठा। उसने यथासम्भव अपनी व्यग्रता को दबा कर पूछा—"भैया, क्या हुआ ?"

रमेसर के स्वर को सुन कर गजेन्द्र ने अपने बहते हुए आँसुओं को पोंछ लिया। बिना मुड़े हुए वह बोला—"कल सुबह की गाड़ी से सुखदा जा रही है। तुम उसके जाने का प्रबन्ध कर देना।"

"यह एकाएक जाने का क्या क़िस्सा हो गया ?"

"मैं नहीं जानता। देखो रिक्शा बुला लेना। शायद भाभी भी साथ जायें।"

एक निःश्वास भर कर रमेसर बोला—"भगवान् की न जाने क्या इच्छा है ? भाभी या बिटिया रहेंगी तो तुम्हारा जी बहला रहेगा।"

"मुझे अब किसी की आवश्यकता नहीं है। काका तुम्हारी भी नहीं है! मैं अपना दुःख किसी को बाँटना नहीं चाहता। सहानुभूति के सहारे जीने की अपेक्षा मर जाना मुझे स्वीकार है काका। मैं तो अब भगवान से भी यही कहता हूँ—तेरी इच्छा पूर्ण हो ?"

"यह सब तुम जानो भैया। पर मैं तुम्हारी आँख में आँसू नहीं देख सकता।"

गजेन्द्र पलट कर रमेसर की ओर मुंह कर के खड़ा हो गया। म्लान मुख पर बरबस हास लाने की चेष्टा में विचित्र-सी रोनी सूरत बना कर बोला—"मैं रो कहाँ रहा हूँ काका। मैं तो जीने की चेष्टा कर रहा हूँ। बहुत दिनों बाद आज समझ पाया हूँ कि जीवन आँसुओं पर पलता है। वनस्पति की भाँति उसे आँसुओं के खारे पानी से सींचना पड़ता है।"

"पौधे केवल पानी के सहारे ही नहीं पलते। उनको धूप की आवश्यकता भी होती है।"

काका कभी-कभी ऐसा उत्तर दे बैठते थे कि गजेन्द्र विचार में पड़ जाता था।

"प्रत्येक मनुष्य भाग्यशाली नहीं होता। खुशी की सुनहरी धूप हर व्यक्ति को प्राप्त नहीं होती। तुम चिन्ता मत करो काका। भाग्य में सुख लिखा होता तो कामिनी इस भाँति मुझे ठुकरा कर न चली जाती। किस भरोसे अब सुखदा को रोकूं। वह जाना चाहती है। उसे जाने दो काका, जाने दो!"

उसके स्वर में दृढ़ता और हृदय में क्रंदन था। कथन के साथ ही वह अपने अध्ययन-कक्षा में चला गया।

उसके जाने के पश्चात् रमेसर ने अपने अंगौछे से आँख की कोर पर आकर टिके हुए अश्रु-कण को पोंछ डाला। एक क्षण वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर कुछ निश्चय कर कमरे के बाहर निकल नीचे जाने के लिये सीढ़ियों की ओर चल दिया।

भवानी घर पर नहीं मिला और न तलाशी में उसके घर कोई सन्देहात्मक वस्तु ही मिली। थानेदार बलराम चौधरी के क्रोध का

पारावार न था। पुलिस सभी अभियुक्तों के घर के चारों ओर घेरा डाले हुए थी। एक-एक के घर की तलाशी हो रही थी।

थानेदार बलराम चौधरी ने थाने में हाल ही में लगे टेलीफोन का उपयोग किया और घटना की सूचना फ़तेहपुर में स्थित जिला पुलिस अधिकारी के आफिस में दे दी। रातों-रात भवानी की हुलिया सब थानों पर पहुँच गयी और चारों ओर घेराबन्दी की व्यवस्था हो गयी।

डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस रात को सोते-से उठ कर जीप पर सवार हो मौके का मुआइना करने के लिये आ पहुँचे उनके साथ में लारी भर पुलिस थी।

एक बार पुनः वही दौर फिर चला। बंसी ही नहीं, एक-एक करके सभी अभियुक्तों को अलग-अलग स्वीकार करना पड़ा कि उनका दल-नायक कौन है ?

मार के आगे भूत भागते हैं। शरीर पहले से ही दलन हो चुका था। रग-रग फोड़े की तरह दुख रही थी। जरा-सा बेंत उठता तो चीत्कार से वायु-मंडल गूँज उठता। पुलिस को उस दल की सारी गतिविधि का ज्ञान प्राप्त हो चुका था।

थानेदार को भेंट पहले चढ़ाई जा चुकी थी। परन्तु आने वालों का आतिथ्य तो करना ही पड़ता है। सामर्थ्य के अनुसार चढ़ावा चढ़ा जरूर पर नसों से कितना तेल निकलता ? रातों-रात खेत-मकान बिक गये। देवता की भृकुटी का तनाव किंचित् कम हुआ था कि निजी सेवक ने आकर बड़े साहब के कान में कुछ कह दिया।

अधरों पर मुस्कान छलक उठी। थानेदार बलराम चौधरी से गुप-चुप कुछ बात हुई।

बलराम चौधरी की आँखें टँग गयीं। वह अटकता हुआ बड़ी कठिनाई से बोला—"सर, बड़ी कठिन समस्या है। गाँव का मामला है। जरा देर में मरने-मारने पर आमादा हो जायेंगे। वैसे भी इलाका ठाकुरों का है।"

"अरे बहुत देखे हैं तीसमारखाँ। पच्चीस बरस हो गये हैं मुझे पुलिस में नौकरी करते हुये। तुम एक काम करो। तलाशों में थोड़ी अफ़ीम बरामद करवा दो बस। उसके बाद सब को थाने में पकड़ कर बन्द कर दो।"

कथन के साथ डी० एस० पी० साहब का अट्टहास गूँज उठा। साथ में खी-खी करके बलराम भी हँस पड़ा!

वंशी की आयु तीस बरसातें झेल चुकी थी। परन्तु पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसका विवाह हुए छै महीने भी पूरे नहीं हुए थे। पत्नी की आयु भी अधिक न थी।

सम्पूर्ण गाँव-समाज देखता रह गया और वंशी के बूढ़े बाप के साथ उसकी पत्नी भी हवालात में बन्द कर दी गयी।

गाँव के सरपंच एवं प्रमुख व्यक्तियों ने चेष्टा की और थाने में उपस्थित होकर प्रार्थना करने लगे कि कम-से-कम वंशी की पत्नी को जमानत पर रिहा कर दिया जाय। परन्तु बलराम चौधरी के मुँह से उसका सबने अभियोग सुना तो उनके छक्के छूट गये।

इस समय तक आसपास के दो-चार गाँव के लोग जमा हो गये थे। इधर-उधर एकत्र हो कर सभी अपनी-अपनी व्याख्या कर रहे थे। सभी को इस दल के पकड़े जाने पर आश्चर्य था। कितने ही लोग उन लोगों के शिकार बन चुके थे। वे सभी अपनी-अपनी हानि का स्मरण करके लोगों से कह रहे थे कि ऐसे असामाजिक तत्वों को बढ़ावा देने की अपेक्षा विनष्ट हो जाने देना ही श्रेयस्कर है।

बूढ़े-बूढ़े भी इस बात से सहमत थे। किसी को इस दल के किसी सदस्य के साथ सहानुभूति न थी। केवल वंशी की पत्नी के सम्बन्ध में सभी की धारणा थी कि उसके ऊपर पुलिस को हाथ न डालना चाहिये था। परन्तु अभियोग था कि उसके टीन के छोटे-से बक्से में आध सेर से अधिक अफ़ीम और कुछ चाँदी के जेवर बरामद हुए हैं जिनके सम्बन्ध में पुलिस का विचार है कि वे चोरी के हैं। यह जानने के उपरान्त किसी की हिम्मत न हुई कि इस विषय में कुछ कहे। प्रत्येक

व्यक्ति डर रहा था कि उसका सम्पर्क इस दल के साथ जोड़ कर सन्देह में पकड़ न लिया जाय।

एक व्यक्ति की अनुपस्थिति सब को प्रतीत हो रही थी। उसके अभाव में किसी की समझ में नहीं आता था कि कैसे और किस प्रकार अफ़सरों से बात की जाय। वह व्यक्ति था चतुरसिंह।

धोबियों की पंचायत ने अपनी बिरादरी की बहू-बेटी की इज्जत खतरे में देख कर बलराम चौधरी के समक्ष जाकर आवेदन करने का निर्णय किया।

थाने के अन्दर सब अभियुक्त मृतप्राय पड़े हुये थे। कुछ तो कल्लू की लाठी का प्रभाव था और कुछ पुलिस का प्रसाद। दहशत और डर के मारे सभी निर्जीव पड़े हुए लोग उस घड़ी को कोस रहे थे, जब उनकी भेंट भवानी से हुई थी।

सहज ढंग से पैसा प्राप्त करना सभी को अच्छा लगता है। परन्तु जब उसका मूल्य चुकाने का समय आता है, तो समझ में आता है कि हम कितनी भयंकर भूल कर बैठे हैं। जब आँख खुलती है, उस समय तक बहुत देर हो चुकती है। लौटने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

आत्मग्लानि और क्षोभ से व्यथित हृदय मृत्यु की कामना करता है। वह पश्चाताप की धधकती भट्टी में फुंकता हुआ निश्चय करता है कि भविष्य में अब ऐसा न करूँगा। भगवान तक को घूस देने का वादा करता है कि इस बार, बस इस बार क्षमा कर के कुछ ऐसा करदें कि बच जावें।

पर ऐसा कुछ नहीं होता। न्याय के घूमते हुए दंड की परिधि के बाहर रहने की छूट प्रत्येक व्यक्ति को है। उसकी परिधि में फंस जाने के पश्चात् निस्तार की कोई आशा शेष नहीं रहती।

बंसी की पत्नी कमला के विरुद्ध अभियोग दर्ज कर के उसे थानेदार के कमरे में बैठा दिया गया। कमला का हृदय डर के मारे धकधक् कर रहा था। बड़े साहब के निजी सेवक ने उसका चार्ज ले लिया। उसकी उमर के सिपाही को अपने सामने देख कर उसे कुछ धीरज बँधा।

लखनऊ के हजरत गंज मोहल्ले के समीप एक गली में कमला का मायका था। वह कक्षा पाँच तक पढ़ी हुई थी। शहर में पलने के कारण उसे बातचीत से कोई डर नहीं लगता था। अपने को निर्दोष किस भाँति सिद्ध करे उसकी समझ में नहीं आता था। पुलिस के सम्बन्ध में वह बहुत कुछ सुन चुकी थी। कई बार उसके पिता को शराब पी कर उत्पात मचाने के अभियोग में रात भर थाने में बन्द रहना पड़ा और हर बार पाँच रुपया देकर उसकी माँ उसे छुड़ा लाती थी।

अतः उसने बूढ़े कालकादीन से कहा कि वह निर्दोष है और प्रार्थना की कि वह उसे छुड़वा दे।

कालकादीन ने पक्षी को चारा डाला और स्नेह-पूर्ण शब्दों में भ्रम का ताना-बाना बुनते हुए कहा—"बड़े साहब अत्यन्त दयालु और धर्मात्मा हैं। तुम उनका पैर पकड़ लेना। वे अवश्य तुमको छोड़ देंगे।"

कथन के साथ कालकादीन कमला को अकेला छोड़ कर चला गया।

योजना के अनुसार दो भयानक आकृति वाले सिपाही आकर उससे प्रश्न करने और उसे धमकाने लगे कि वह स्वीकार कर ले कि उसका पति वंशी अफ़ीम का व्यापार करता था और उसी ने लाकर यह अफ़ीम उसको रखने के लिये दी है।

कमला रोकर यही कहती रही कि वह नहीं जानती कि अफ़ीम उसके बक्से में कैसे आ गयी।

बस फिर क्या था, बेंत लहरा-लहरा कर उसके कोमल बदन पर अपने अस्तित्व का प्रमाण नीली रेखा के रूप में अंकित करने लगा।

फलतः केवल तीसरे ही बेंत में वह चीख कर जीवित शव में परिणित हो गयी।

तुरन्त ही कालकादीन ने आकर होश में लाने का उपचार किया और उसके बाद सहानुभूति में मगर के आँसू टपकाने लगा। पुनः एक बार बड़े साहब की शरण में जाने की सलाह दी। उसे एक सिपाही के कमरे में पहुँचा दिया। खाट पर बिस्तर बिछा था। अभी कालकादीन ने

कमला को भय त्याग कर आराम करने के लिये कह दिया।

कालकादीन ने उसे आश्वासन दिया कि वह तुरन्त बड़े साहब को सूचना देगा और वे उसका दुःख सुन कर आने में ज़रा भी विलम्ब न करेंगे।

और डी० एस० पी० फड़के साहब सचमुच तुरन्त उस कमरे में जा पहुँचे, जहाँ कमला लेटी हुई थी।

त्रस्त कमला निढाल चारपाई पर आँख बन्द किये अपने मन और शरीर के दर्द को भूलने की चेष्टा में पड़ी हुई थी कि बूट की आहट सुन-कर आँख खोली तो सामने बड़े साहब को देख कर वह घबरा कर उठने की चेष्टा करने लगी।

बड़े साहब ने आगे बढ़ कर उसके कन्धों पर हाथ रखते हुए कहा—"लेटी रहो।"

कथन के साथ ही वे उसी खाट पर विराजमान हो गये, क्योंकि उस कमरे में बैठने का कोई अन्य उपकरण न था।

कमला लेटी हुई थी और बड़े साहब उसके कपोलों को थपथपाते हुए अत्यन्त प्यार भरे शब्दों में पूछ रहे थे—"क्या बात है? तुमको किस अपराध में पकड़ा गया है?"

अबोध कमला अपने पिता की आयु के पके बालवाले व्यक्ति के व्यव-हार को सहानुभूति समझ बैठी।

फड़के साहब कच्चे खिलाड़ी न थे। उन्होंने [illegible] का वाग्जाल रच कर कमला के हृदय से डर दूर कर दिया।

भ्रमित कमला का भ्रम जब टूटा, उस समय बचाव का कोई मार्ग न था। उसने रक्षा के लिये संघर्ष किया परन्तु वनराज के समक्ष एक निरीह हिरणी…।

चीख भरी सिसकियों से थाना गूंजता रहा। थाने वालों ने भी सुना। वे समझाते रहे कि अपराध स्वीकार करने के लिये दंड का उपयोग हो रहा है और वह यंत्रणा से चीख रही है।

हाँ, उसे दंड ही तो मिल रहा था। अपने कृत्य के लिये नहीं अपितु अपने पति के अपराध का। पत्नी होने के नाते उसे पति के पापों की सजा भुगतनी पड़ रही थी।

बड़े साहब जा चुके थे। परन्तु उसे छुटकारा न मिला। पद के क्रमानुसार अधिकारी वर्ग आने लगे।

संज्ञाविहीन कमला को ज्ञान भी न हुआ कि उसे कितने देवताओं के गले का हार बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब उसकी दशा गम्भीर हो गयी तो उसे छुटकारा मिला। होश में आने के पश्चात् उसे पता चला कि अभी उसकी सजा पूरी नहीं हुई है।

उसे भी पुलिस की बन्द लारी में बैठ अन्य अभियुक्तों के साथ फ़तेहपुर जाना पड़ा।

कामिनी ने इधर-उधर देखा। कोई दृष्टिगोचर न हुआ तो उसे बड़ी निराशा हुई। साथ ही वातावरण के रहस्य को भेद कर परिचय प्राप्त करने की भी उत्कंठा जागृत हो गयी।

पलट कर बगल के कमरे में देखने के लिये ज्योंही उसने दृष्टि उठायी, त्योंही उसके कंठ से सन्तोष की निःश्वास निकल पड़ी। चतुरसिंह आराम कुर्सी पर आँख बन्द किये क्लान्त भाव से पड़ा हुआ था।

अचानक उसके हृदय से समस्त उद्वेग वह गया। उसके हृदय में विचार उठा—यह भी तो मनुष्य है। इसके हृदय में भी तो दुःख का सागर उमड़ रहा होगा। इसका भी तो सब कुछ अग्नि देवता के भेंट चढ़ गया होगा? बन्धु-बान्धवहीन, निर्धन होकर भी जीवन को नष्ट न कर के मेरे सहारे नया जीवन प्रारम्भ करना चाहता है।

नारी की ममता जागृत हो गयी। उसके हृदय में भी इस व्यक्ति के सहारे नव जीवन प्रारम्भ करने की इच्छा ने जन्म ले लिया। विस्मृति का

पर्दा उठ गया और बचपन से लेकर आज तक की घटनायें एक-एक कर के उसके मानस में उभरने लगी।

उसे स्मरण आया कि वह सदैव से इस व्यक्ति के प्रति आकृष्ट रही है। अगर यह पढ़ना छोड़ कर न चला आता तो अवश्य ही वह गजेन्द्र के प्रेम को स्वीकार न कर के इसी से विवाह कर लेती।

जरा-सी पलकें खोल कर चतुरसिंह ने देखा तो उसके मुंह पर चिंतित भाव को पढ़ उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। कुछ समय की बिफरी हुई कामिनी एकाएक शान्त कैसे हो गयी ?

चौंक कर उठते हुए वह बोला—"आओ कामिनी, खड़ी क्यों हो ? शायद मैं सो गया था।"

"हाँ।" और कथन के साथ ही वह कमरे में प्रवेश कर गयी।

अलस भाव से अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित करते हुए उसने अपना हाथ कामिनी की ओर बढ़ा दिया। कामिनी ने उसके बढ़े हुए हाथ को थाम लिया तो चतुरसिंह ने खींच कर संकेत से उसे आराम कुर्सी के हत्थे पर बैठने को कहा और वह बैठ गयी। दोनों के बीच में एक समझौता हो गया। दोनों का स्वर्ग एक दूसरे से संलग्न जो था।

तभी कामिनी बोली—"चतुर, यहाँ से कहीं दूर चलो। दूर, जहाँ हम लोगों को कोई न जानता हो। वहाँ हम नये सिरे से अपना नवजीवन आरम्भ करें। पर चलने के पहले हमारा विवाह हो जाना आवश्यक है।"

"विवाह सम्पन्न होने में कुछ समय तो लगेगा ही, पर तुम चिन्ता क्यों करती हो ? क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है ? या कुछ ऐसा है कि तुम्हें स्वयं अपने ऊपर भरोसा नहीं है ?"

अपने मन की शंका छिपाने के प्रयत्न में वह हड़बड़ाहट में बोली—"नहीं, ऐसी बात नहीं है; पर जब एक निश्चय कर ही लिया है तो विलम्ब करने में क्या लाभ ?"

"लाभ कुछ भी नहीं है। पर सरकार मेरे इससे पहले कई आवश्यक कार्य करने हैं।"

कामिनी ने समझा कि चतुरसिंह का संकेत गाँव में जाकर अपनी जायदाद आदि के प्रबन्ध से है। उसको इस बात का आभास तक न था कि वह पहले ही सब कुछ बेच कर स्वयं ही आग लगा कर उसे ले भागा है। अतः उसने कहा—"चतुरसिंह, तुम चिन्ता न करो। जानती हूँ घर लौट कर वही पुनः काम-काज करना चाहते हो। परन्तु अब वहाँ कुछ भी शेष नहीं है। तुम्हीं तो कहते थे कि सब कुछ स्वाहा हो गया।"

चतुरसिंह तुरन्त समझ गया कि इसको सब कुछ बेच कर गाँव छोड़ देने का समाचार नहीं मिला है।

इसके पहले कि वह कुछ उत्तर देता, कामिनी ने पुनः कहा—"मेरे शरीर पर गहने देख रहे हो। इनको बेच कर यथेष्ट धन मिल जायगा। एक बार फिर से नया जीवन शुरू करो न ?"

चतुरसिंह ने सोचा कि पर काट देने से पक्षी उड़ न सकेगा।

अतः वह बोला—"चलो, तुम्हारे कारण एक समस्या का समाधान कुछ तो हुआ। पर कामिनी परदेश में जा कर हम लोग कहाँ मारे-मारे फिरेंगे। कुछ भी हो इस मिट्टी को हमें अपनाना ही पड़ेगा।"

"मैं हैरान हूँ कि तुम समझते क्यों नहीं कि मैं यहाँ नहीं रह सकती। विशेष कर के उस स्थल पर, जहाँ का एक-एक तिनका मुझे पिछले जीवन का स्मरण दिलाता है। मैं चाहती हूँ हम दोनों किसी ऐसी जगह जाकर रहें जहाँ पर अपने अस्तित्व को भी भूल जायें।"

अत्यन्त स्नेह का प्रदर्शन करते हुए उसने कामिनी के स्कन्धमूल से कटि प्रदेश पर धीरे-धीरे हाथ फेरना प्रारम्भ कर दिया, फिर वह अपनत्व भरे स्वर में बोला—"जैसा तुम चाहोगी वैसा ही होगा। किसी प्रकार की उत्तेजना को अपने मन की शान्ति भंग न करने दो।"

"क्या करूँ मन मानता ही नही ? जितना भूलने की चेष्टा करती हूँ, उतनी ही याद आती है।"

"पहले खाना खा लो, फिर हम लोग बैठ कर निर्णय करेंगे।"

कथन के साथ वह कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया। और छज्जे पर

जा कर भगवानदीन को भोजन लाने का आदेश दिया।

भोजन का थाल मेज पर सजा हुआ था और दोनों भोजन कर रहे थे।

चतुरसिंह भविष्य के सम्बन्ध में भाँति-भाँति के सुझाव रख रहा था। कामिनी बीच-बीच में अपना मत प्रकट कर रही थी।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि बम्बई चलकर वहाँ की स्थिति का अध्ययन करने के उपरान्त कोई व्यापार आरम्भ किया जाय और अगर व्यापार का समुचित प्रबन्ध न हो सके तो नौकरी ढूँढी जाय। बातचीत के दौरान कामिनी ने उसे बताया कि उसके गले में पड़ा हुआ जड़ाऊ हार अत्यन्त मूल्यवान है। कई पुश्तों से उसके वंश में सुरक्षित रहने के पश्चात् उसको मिला था क्योंकि पिता की एकमेव सन्तान वही थी। उसने यह भी बताया कि उसके पिता ने एक बार लखनऊ में बेचने की चेष्टा की थी। उस समय उसका मूल्य बहुत आँका गया था; किन्तु माँ की ज़िद के कारण वह बिकने से बच गया था।

चतुरसिंह के आश्चर्य की सीमा न थी। वह सोच रहा था कि भगवान उसके ऊपर अत्यन्त दयालु है, कामिनी भी प्राप्त हुई और कंचन भी।

संतोष की साँस ने उसके अन्तर्मन को आह्लादित कर दिया। तुरन्त विचार आया कि इससे प्रतीत होता है कि वह समय विशेष दूर नहीं है जब संसार का समस्त सुख और वैभव उसके चरणों में लोट रहा होगा।

स्वयं उसने मन में निश्चय किया कि पूर्व योजना के अनुसार लखनऊ में रहने से क्या लाभ? राजनीति में पड़ कर इस समय हानि उठाने से कुछ प्राप्त नहीं होगा। जब मामला ठंडा पड़ जायगा, उस समय पुनः वापस आकर इसी धन की सहायता से चुनाव लड़ा जा सकता है। तब तक यथा सम्भव धन, संचय करने की चेष्टा करना ही उचित होगा।

अतः वह बोला—"मैं तुम्हारे लिये कुछ कपड़ों का प्रबन्ध करता हूँ। रात तक सिल जायेंगे। फिर कल प्रातः होते ही हम लोग निकल देंगे।"

"विवाह के लिये प्रबन्ध करना पड़ेगा। फिर यहाँ भी सबको मालूम है कि हरिपुर में क्या हुआ है। सब लोग क्या कहेंगे? बम्बई पहुँच कर हम लोग विवाह कर लेंगे। न होगा, सिविलि-मैरिज ही कर लेंगे। तुम बेकार ही चिन्ता करती हो। विवाह दो हृदयों का बन्धन है। हमारे तन मिल चुके; मन मिल चुके फिर विवाह में शेष क्या रहा?"

एक निःश्वास भरती हुई कामिनी बोली—"हाँ शेष क्या रहा? कुछ भी तो नहीं रहा। सचमुच कुछ नहीं रहा। केवल एक ही अन्तर पड़ता है कि विवाह से बनी पत्नी अभी में नहीं हूँ, उस समय हो जाती।"

"तुम मेरी पत्नी हो और पत्नी रहोगी। तुम्हारे सन्तोष के लिये मैं तुम्हारे गले में माला डालकर, भगवान के समक्ष माँग में सेंदुर भर दूंगा। तब तो तुम्हें कोई शिकायत नहीं रहेगी। शास्त्र में इस प्रकार के विवाह का विधान भी है।"

कामिनी ने कुछ उत्तर न दिया। भोजन समाप्त करने के उपरान्त हाथ धोकर तौलिये से मुँह पोंछते हुए चतुरसिंह पुनः बोला—"तुम थोड़ा विश्राम करो। मैं किसी दर्जी के यहाँ जाकर कुछ ब्लाउज़ और पेटीकोट सिलवाने का प्रबन्ध करूँ। साड़ियाँ तो मोल मिल जायगी।"

इतने में भगवानदीन एक चाँदी की तश्तरी में पान और इलायची लेकर आ पहुँचा। चतुरसिंह ने तश्तरी अपने हाथ में ले ली और कहा—"बरतन बाद में उठाना। पहले जीप निकालो, ज़रा बाज़ार चलना है। बहू जी के लिए कुछ कपड़ों का प्रबन्ध करना है।"

भगवानदीन चला गया तो चतुरसिंह ने दो पान कामिनी की ओर बढ़ा दिये। कामिनी ने लेने से इनकार करते हुए कहा—"मैं पान नहीं खाती।"

"मैं जानता हूँ किन्तु विवाहोपरान्त एकाध पान अवश्य खाना चाहिये।" कथन के साथ ही मुसकराते हुए उसने स्वयं अपने हाथों से कामिनी के मुँह में पान खिला दिया और साथ ही थोड़ा झुककर अधरों का चुम्बन ले लिया।

कामिनी का आनन नवविवाहिता पत्नी की भाँति विकसित हो गया। लजाकर वह कृत्रिम क्रोध का अभिनय करती हुई बोली—"अजी हटो भी।"

चतुरसिंह अट्टहास कर उठा।

पैन्ट कमीज पहन कर उसने पैरों में हवाई चप्पल पहनी और तैयार होकर चलने को ही था कि अचानक उसे कुछ याद आ गया और वह बोला—"ब्रेसियर का साइज तो तुमने बताया ही नहीं?"

"चौंतीस।"

"ठीक है। तुम सो जाओ अन्यथा रास्ते में बड़ा कष्ट होगा।"

कथन के साथ ही चतुरसिंह कमरे से बाहर निकल गया और वह भारहीन हृदय से शयनकक्ष की ओर बढ़ गयी।

१२

रात भर रमेसर सो न सका। कुछ देर तक वह अपने कमरे में खाट पर पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा। जब चेष्टा करने पर नींद न आयी तो वह उठकर बाहर आँगन में निकला। ऊपर की ओर दृष्टि करते ही उसने देखा कि गजेन्द्र के अध्ययन कक्ष की खुली खिड़की से और दुमंजिले की खिड़कियों से प्रकाश फूट-फूट कर बाहर के अन्धकार में विलीन हो रहा है।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि एकाएक सुखदा का इस प्रकार चल देने के निश्चय के मूल में क्या है? वह समझ रहा था कि दोनों एक-दूसरे को पसन्द करते हैं और विवाह में केवल समय का बन्धन शेष बचा है।

वह कुछ देर यों ही आँगन में टहल कर अपने अशान्त मन के उद्वेलन को थपकियाँ दे कर सुलाने की चेष्टा करता रहा। उसके लिये गजेन्द्र के सुख से अधिक किसी अन्य वस्तु का महत्व न था।

अचानक उसने स्वयं सुखदा से इसका कारण जानने का निर्णय किया और वह झपट कर ऊपर जा पहुँचा। कमरे का अधखुला द्वार एक हाथ से ढकेल कर वह अन्दर घुसा तो अपने-अपने पलँगों पर बैठी हुई दोनों बहनें चौंक उठीं।

उसके कुछ बोलने के पहले ही शोभा बोली—"आओ काका। तुम्हें

मालूम होना चाहिये कि कल हम लोग जा रहे हैं !"

समीप ही फ़र्श पर बैठकर आश्चर्य के साथ कहा—"अच्छा, मगर क्यों ?"

"सुखदा कानपुर जा रही है और जब वही चली जायगी तो मेरा यहाँ रहना अर्थहीन बन जायगा ।"

"मगर बिटिया को जाने की ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? मैं तो बिटिया को इस घर का भार सौंपना चाहता था ।"

शोभा और सुखदा में काफी बातें हो चुकी थीं। सुखदा ने पहले ही अपना पक्ष शोभा के सम्मुख रख दिया। उसके तर्कों को शोभा स्वीकार कर चुकी थी। उन्हीं का सहारा लेकर उसने कहा—"काका, जब तक विवाह न हो जाय किसी कुँवारी कन्या का दूसरे के घर में रहना उचित नहीं है। जो घटना घटी है उसको देखते हुए विवाह में शीघ्रता करना ठीक न होगा। लोकोपचार का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। इससे तो तुम स्वयं भी इनकार नहीं कर सकते।"

रमेसर को प्रतीत हुआ कि वस्तुतः वही गलत मार्ग पर था। प्रत्येक दशा में सुखदा का जाना श्रेयस्कर है। विवाह की चेष्टा अवश्य करनी चाहिये। उसके उपरान्त ही इसका इस घर में गृहलक्ष्मी के रूप में रहना समीचीन होगा। उसे आश्चर्य हुआ कि स्वार्थ में पड़ कर वह किस प्रकार विवेकहीन हो गया था।

अतः अब वह बोला—"ठीक कहती हो ठकुरानी, फिर भी एकाध दिन रुक जाती तो अच्छा था।"

शोभा ने कहा—"जब जाना ही है तो कल क्या, आज क्या ? सब तैयारी हो चुकी है। अब तुम रोको नहीं काका। सुबह की गाड़ी से जाने का प्रबन्ध कर ही दो।"

"अच्छी बात है। अब सुबह होने में देर ही कितनी है। मैं अभी सब प्रबन्ध किये देता हूँ। मगर तुम दोनों अकेले कैसे जाओगी ? एक आदमी को साथ भेजना होगा।"

"नहीं काका, बस गाड़ी में बैठा देने का प्रबन्ध कर दो। हम लोग चले जायेंगे।"

"वाह! कुंवर भैया क्या कहेंगे ?"

कोई कुछ न बोला। मौन ने धीरे से वातावरण को प्रतिपल बोझिल बनाना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक अपने-अपने विचारों में लीन एक ही परिस्थिति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देख रहे थे। प्रत्येक का स्वार्थ उसे अपना आकार और रंग-रूप प्रदान कर रहा था।

समय की गति को कोई दुःख या सुख नहीं बदल पाता। उन लोगों ने समय को भुला दिया था किन्तु समय किसी को नहीं भूलता। अचानक टन···के शब्द से चौंक उठे। पूर्व की ओर टंगी दीवारघड़ी पर तीनों की दृष्टि एक साथ जा पड़ी। टन···टन···बजता ही जा रहा था। सबने देखा पांच बजे हैं और उन तीनों के अन्तर्मन से एक निःश्वास अपनी-अपनी टीस का बोझ लिये निकल पड़ा। तीनों ने ही एक साथ खुली हुई खिड़की से दूर क्षितिज पर उषा की लाली को प्रातः की सफेदी में बदलते देखा।

रमेसर उठ खड़ा हुआ और बोला—"हाथ-मुँह धोकर चाय पी लो। रास्ते में न जाने कैसी मिले।"

कंठ अवरुद्ध हो गया था। उसे छिपाने के हेतु वह झट से कमरे से निकल कर आँगन में पहुँच गया।

घर के अन्य कर्मचारी जाग चुके थे। रसोईघर से धुआँ उठ रहा था। बुआजी स्नान से निपट कर पूजा पर बैठने वाली थीं कि रमेसर ने निकट जाकर उनसे कहा—"बुआजी, बहूरानी और बिटियारानी जा रही हैं। आप जरा रास्ते के लिये कुछ पूरी और साग बनवा दें। मैं रिक्शा बुलाने के लिये हरखू को स्टेशन भेजता हूँ।"

अपने हृदय के दर्द को छिपाने के लिये बुआ युवावस्था में ही संसार को छोड़ने के प्रयत्न में सब कुछ भूल चुकी थीं। आज मृत्यु के समीप पहुँचकर कोई भी घटना या कथन उनके हृदय को आघात न पहुँचाता

था । एक मशीन बन कर सब कार्य करती थी । अनुभूति के अभाव में उन्हें किसी वस्तु की इच्छा न होती थी ।

अतः वह अपने इष्टदेव की प्रतीक्षा करते हुए छोड़कर रसोई में जाकर सबको आदेश देने लगी ।

हरखू बैलों की सानी-पानी से निवृत्त होकर खेत पर जाने के पहले चिलम पी रहा था । रमेसर का आदेश पाकर वह साइकिल लेकर तुरन्त स्टेशन की ओर उड़ चला ।

रमेसर के जाने के उपरान्त शोभा उठ कर सीधे गजेन्द्र के कमरे में जा पहुँची । वह अध्ययन-कक्ष में अपनी मेज के सम्मुख बैठा हुआ खुले वातायन से शून्य की ओर देख रहा था । सामने लेटर पैड में लिखा हुआ पत्र था और एक लिफाफा समीप रखा हुआ था ।

विषाद की मूर्ति को देखकर शोभा का हृदय स्वाभाविक स्नेह से भर गया । उसे अनुभव हुआ कि वह स्वयं इस व्यक्ति के दुःख से दुःखी हो उठी है, जिसके अंग-अंग से दुःख की लपटें निकल रही हैं ।

अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को दबाकर वह अत्यन्त शान्त स्वर में बोली—"लाला जी, हम लोग जा रहे हैं ।"

संयत भाव से गजेन्द्र ने अपनी भाभी की ओर देखा । धीरे से उठकर उसने पास आकर कहा—"आशीर्वाद दो भाभी कि जीवन में कभी सुखी हो सकूँ ।"

कथन के साथ ही झुककर उसने अपनी भाभी के चरण स्पर्श कर लिया ।

शोभा के नेत्र सजल हो गए । वह उमड़ते हुए दुःख को कंठ में दबा कर शान्त स्वर में बोली—"सुखी रहो लाला, मेरी शुभेच्छा सदैव तुम्हारे साथ है । जब तुम्हारा मन चाहे चले आना । तुम्हारे भाई का द्वार तुम्हारे लिये सदैव खुला रहेगा ।"

गजेन्द्र कुछ उत्तर न देकर भावना के साथ बोला—"मैं इसी प्रकार प्रतीक्षा करूँगा । इस जन्म में ही नहीं जन्मजन्मान्तर तक । प्रत्येक जन्म

में, प्रलयपर्यन्त।"

स्नेह के आवेग में शोभा ने अपने देवर के सर पर हाथ फेरा और उसके सजल नेत्रों को अपने आँचल से पोंछ दिया और कहा—"विदा के समय नीचे नहीं आओगे ?"

"नहीं भाभी, तुमसे भेंट यहीं हो गयी। अब मैं नीचे नहीं आऊँगा।" कथन के बाद वह क्षण रुका और फिर बोला—"केवल एक प्रार्थना है...।"

"क्या ?"

"कभी-कभी इस अकिंचन का स्मरण कर लिया करना। भूले-भटके पत्र डालकर अपना कुशल समाचार देती रहना।"

वार्ता के दौरान एक बार भी दोनों की जिह्वा पर सुखदा का नाम नहीं आया। शोभा को उसके संयम पर आश्चर्य हो रहा था। स्वयं वह समझ न पा रही थी कि वह सुखदा की चर्चा करे या नहीं।

तभी गजेन्द्र ने मुड़ कर मेज पर से लिफाफा उठा लिया। लेटर पैड में से लिखे हुए पत्र को निकाल कर मोड़ा और लिफाफे में रखकर यों ही खुला लिफाफा शोभा की ओर बढ़ा दिया।

गजेन्द्र ने कहा—"रेल चल देने के पश्चात् कृपा कर इसे सुखदा जी को दे दीजिएगा।"

एक क्षण रुक कर वह फिर बोला—"रमेसर से मैंने सब प्रबन्ध कर देने का आदेश दे दिया है। आशा है कि यात्रा में कोई कष्ट न होगा। पहुँच कर कुशलता का पत्र लिख देना।"

उसके कथन का स्पष्ट तात्पर्य था कि भेंट समाप्त हो गयी।

शोभा ने समझा भी यही। वह निचले होंठ को दाँत से दबाकर बाहर निकल गयी। गजेन्द्र बिलकुल निर्जीव-सा उसी भाँति खड़ा रहा।

अभी कल्लू सो रहा था कि किशन धर्मशाला में आ पहुँचा।

सम्पूर्ण रात्रि वह सोया न था और उसके थके हुए चेहरे पर उसका चिह्न अंकित था। वह रात भर अपनी पत्नी और उसकी बहन से विचार-विमर्श करता रहा। थकान के साथ उसके मुख पर उत्साह और उमंग का प्रभाव कोई भी देखने वाला पा सकता था।

कल्लू को निन्द्रा की गोद में पड़े देख कर उसे ग्लानि का अनुभव होने लगा। भावना के ज्वार ने रात्रि में विश्राम करने नहीं दिया था और भविष्य निर्माण की भावना में पड़ कर वह अपनी पत्नी चमेलिया और उसकी बहन गुलबिया को समझाता रहा।

किशन ने सम्पूर्ण स्थिति उन दोनों के समक्ष रख कर अपनी योजना समझा दी।

गृहस्थी का बन्धन तोड़ कर स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करने वाली गुलबिया को उसी बन्धन में पुनः बँधना स्वीकार न था।

किशन चुपचाप कल्लू की चारपाई के समीप दीवार से टेक लगाकर बैठ गया। उसे एक-एक करके गुलबिया के सारे तर्क स्मरण हो आये।

जब उसने उन दोनों के समक्ष योजना प्रस्तुत की तो चन्द मिनट के लिये सन्नाटा छा गया। वह समझा कि दोनों ने इस योजना को स्वीकार कर लिया है।

पर गुलबिया ने मौन तोड़ते हुए जरा तीखे स्वर में कहा—"गृहस्थी बन्धन है। भगवान ने दया करके वह बन्धन तोड़ दिया और मैं फिर उसी जाल में जा फँसू यह असम्भव है।"

"पर दीदी जरा सोचो, यह कितना [illegible] है। एक बार में ही नित्य की दौड़-धूप और हाय-हाय से छुटकारा मिल जायगा।"

"पिंजड़ा हर दशा में पिंजड़ा ही रहेगा बहन, चाहे लोहे का हो चाहे सोने का।"

एकाएक किशन की समझ में कुछ न आया कि वह उस तर्क का क्या उत्तर दे।

गुलविया को अपने प्रथम प्रेमी का स्मरण हो आया। वह पढ़ा-लिखा सजीला जवान था। वह मन-ही-मन आज भी उसे स्मरण कर लेती थी। वह एक स्कूल में अध्यापक था और गर्मी के अवकाश में गाँव आया था। गुलविया का विवाह हुए अधिक दिन न हूए थे। एक दिन वह उसे खेत की मेड़ पर मिल गया और तभी वह उसका तर्क सुन कर उसके जाल में जा फँसी। अर्थ न समझते हुए भी वह उन बड़े-बड़े शब्दों के सहित उन वाक्यों को रटे हुए थी और उन्हीं के सहारे अपनी आत्मा के रुदन को शान्त कर लेती थी।

आज ऐसा ही अवसर पुनः उसके सामने था। उसकी आत्मा प्रलो-भन पाकर एक बार लड़खड़ाने लगी थी।

जन्म से कोई बुरा या भला नहीं होता। प्रत्येक के अन्दर भलाई एवं बुराई के बीच रहते हैं जो अनुकूल अवसर या वातावरण पाकर पनप जाते हैं।

वह बार-बार उस मास्टर का स्मरण कर रही थी। मन की घुटन जब असहनीय हो उठी तो वह बोली—"आदर्श की रट लगाकर, भूखे मरने में कुछ लाभ नहीं। आज के युग में मनुष्य को आँखें खोलकर चलना और अपने स्वार्थों की रक्षा करनी चाहिये। यथार्थ के सम्मुख आदर्श का कोई महत्व नहीं। जीवन एक व्यापार है। एक के पास पैसा है, दूसरे के पास तन, दोनों सुखी हो सकते हैं। जब बाजार में दूध मिल सकता है, तो गाय पालने का कष्ट क्यों भोगा जाय?"

'मैं ये बड़ी-बड़ी बातें नहीं समझता। पर इतना जरूर जानता हूँ कि हमारे पुरखों ने जो रीति-रिवाज बनाये हैं, वे यों ही नहीं बन गये। उनके पीछे इस सृष्टि के विकास का इतिहास रहा है। हमारा धर्म बरसों के अनुभव का निचोड़ है। पंचायत आज जिस चीज को पाप समझती है वह पाप अवश्य है। लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये हमें बहकाते हैं। परन्तु वे स्वयं छिपकर वैसा ही काम करते हैं। उनमें इतना साहस नहीं होता कि खुले आम ऐसा करें। दूसरे की बहू-बेटियाँ

ताकने वाले जब अपनी पत्नी या लड़की को उसी मार्ग पर चलते देखते हैं तो मरने-मारने पर आमादा हो जाते हैं। यथार्थ और स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने वाले ये लोग उस समय भूल जाते हैं कि दूसरे की भी ऐसी भावनायें हो सकती हैं। उस समय इन बेईमान बेशर्म लोगों के सम्मुख नगा नगर की मान-मर्यादा का प्रश्न उपस्थित हो जाता है।"

गुलबिया ने सोचा कि प्रश्न के इस पहलू की ओर उसका ध्यान पहले नहीं गया था। उसे किसान के कथन में तथ्य जान पड़ा।

किसान एक दार्शनिक की भाँति बोल रहा था। उसके जन्मजात संस्कार भड़क उठे। जिस धरती में वह पला था, उसका असर उसके शब्दों में फूट कर प्रवाहित होने लगा। वह कह रहा था—"आज तो ठीक है। मान लो, जो हो गया सो हो गया, पर कल की भी तो सोचो। कल बुढ़ापा और उसके दोषों से भरा थका हुआ शरीर लेकर सौदा करने किस के पास जाओगी। उस समय झोली में कोई एक दाना अन्न भी न डालेगा! भिक्षा भी आज के युग में केवल सुन्दर और जवान स्त्रियों को मिलती है! वह जीवन कितना दूभर होगा, तुम सहज ही सोच सकती हो। उसी यथार्थ के पालन के लिये हमें आज आदर्श का पल्ला पकड़ना पड़ता है। छोटी-छोटी चींटियाँ तक बरसात के दिनों के लिये प्रबन्ध करके रखती हैं। यह माना कि कुछ धन एकत्र करके तुम रख लोगी किन्तु मुँह में दो बूँद पानी डालने वाला भी तो होना चाहिये। पैसा खा कर कोई जीवित नहीं रह सकता। दुःख-सुख के एक साथी के बिना यह जीवन कितना दूभर हो जायगा, इसकी भी तो कल्पना करो।"

गुलबिया अवाक् रह गयी। चमेलिया पर न जाने इन शब्दों ने क्या जादू किया कि वह किसान के समीप खिसक आयी और उसने अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया।

इस दृश्य ने गुलबिया को तत्काल समझा दिया। किसान ने अपनी पत्नी को अत्यन्त स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा और उसके हाथ को अपने दोनों हाथ के बीच पकड़कर दबा लिया। मानो वह अपने स्वामित्व और

अधिकार का प्रदर्शन कर रहा है।

किशन अबाधगति से बोल रहा था—"आज ऐसा अवसर स्वयं तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है। तुम चाहो तो उसे ठुकरा दो। यह बात यद्यपि निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती कि वह तुम्हें स्वीकार कर ही लेगा। पर इतना निश्चित समझो कि मैं अब अपना मार्ग बदल दूंगा। गाँव-समाज के सामने मैं अपना सर ऊँचा करके चल सकूं, यही इच्छा अब मुझे राह बदलने पर मजबूर कर रही है। गन्दी नाली में बिलबिलाते हुये जीवन बिता देना मनुष्य का धर्म नही है। कल को मेरी सन्तान तो कम-से-कम इस गन्दगी में न सड़ें और इन्सान का जीवन बिता सके वास्तव में यही मेरी कामना है।"

गुलबिया की आँख से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। रुद्ध कंठ से उसने कहा—"तुमने मेरी आँख खोल दी भैया। मैं सचमुच बहक गयी थी। मैं वादा करती हूँ कि नये मार्ग पर चलूंगी। कल से कोई भी पुरानी गुलबिया को न पायेगा।"

"आज हम लोगों का नया जन्म हुआ है। घर को लीप-पोतकर साफ़ करो। मैं कोशिश करूंगा कि बाबू साहब यहाँ आयें और हर चीज़ देख लें। सोच-समझ कर कोई काम करे। अब मैं पुराना किशन नहीं रहा। आज से मेरा नाम कृष्णकुमार चर्मकार और इसका चमेली और दीदी तुम्हारा क्या, तुम तो गुलाब हो ही।"

किशन के नेत्रों के सम्मुख अपनी पत्नी का उल्लसित मुखड़ा उभर आया। उसने अपने हाथ पर उसका दबाव अनुभव किया और उसके अधर प्रभात में धीरे-धीरे खिलती हुई कमल की पंखड़ियों से मोहक प्रतीत हुए।

आलस्य में किशन ने जम्हाई लेकर आँखें मूंद लीं। सम्भव था कि कुछ ही देर में वह सो जाता परन्तु उसी क्षण कल्लू की नींद खुल गयी और इस प्रकार किशन को सोता देखकर वह मन-ही-मन संकुचित हो उठा।

जिसके जीवन में अपनत्व, ममता, श्रद्धा या सहानुभूति का नितान्त अभाव रहा हो वह ममता की कण मात्र झलक पाकर अपने भाग्य को सराहने लगता है।

कल्लू जीवन भर भागता छिपता, जंगलों की खाक छानता रहा और आज एक अनजान व्यक्ति द्वारा श्रद्धा पाकर उसको अपनाने के लिये व्याकुल हो उठा। नाना-प्रकार के कौतुक उसकी कल्पना ने मानसपट पर चित्रित कर दिये। उसने अनुभव किया कि वह अपने घर में आराम कर रहा है और उसका उसकी सेवा में रत छोटा भाई थक कर सो गया है। वह किशन के क्लान्त किन्तु उल्लसित मुख को देखकर भ्रातृ-प्रेम से ओत-प्रोत हो उठा। उसके हृदय में दया के साथ ही ममता की भावना ने भी जन्म ले लिया।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रह पाता। कठोर-से-कठोर पाषाण-हृदय व्यक्ति के मानस में स्नेह का स्रोत दबा रहता है। अनुकूल पृष्ठभूमि पाकर आज वह प्रस्फुटित हो गया।

कल्लू ने स्नेहपूर्वक किशन के कन्धे पर हाथ रखकर ममता भरे स्वर में भावातिरेक से पुकारा—"किशन!"

किशन चौंक कर सजग हो गया और बोला—"जाग गये बाबू-साहब!"

"तुम जमीन पर इस भाँति क्यों बैठ गये? अरे, यह भी कोई बात हुई। उठो, खाट पर बैठो!"

"हम गरीब आदमियों के लिये यही ठीक है। मैं अपनी औक़ात भूल गया था।"

"नहीं किशन, मैं अपने और तुम में कोई अन्तर नहीं मानता। भगवान ने सबको बराबर बनाया है।"

"गरीब ही नहीं मैं अछूत भी हूँ; चमार।"

"अछूत नहीं हरिजन। चमार क्या मनुष्य नहीं होते? मैं ऊँच-नीच जाति-पाँति कुछ नहीं मानता। मेरे लिये सब मनुष्य बराबर हैं।"

"यह तो आपका बड़प्पन है। परन्तु मैं अपनी हैसियत कैसे भूल सकता हूँ?"

"तुम पागल हो। आज से तुम मेरे छोटे भाई हो। बस और मैं कुछ नहीं जानता। मैं कहीं भी रहूँ, पर तुम याद रखना कि तुम्हारा एक बड़ा भाई भी है।"

किशन की आँखें भर आयीं। उसकी आँखों से आँसू बह कर टप-टप धरती पर गिरने लगे। उसने आगे बढ़कर कल्लू के चरण-स्पर्श कर लिये और कहा—"आशीर्वाद दो दादा कि मैं तुम्हारा छोटा भाई बन सकूं।"

कल्लू ने उसे उठाकर वक्षस्थल से लगा लिया और कहा—"यह तो तुम हो ही।"

कथन के साथ ही उसने उसके बहते हुए आँसुओं को पोंछ कर खाट पर बैठा दिया और कहा—"तुम जरा देर रुको हम लोग साथ ही रमेसर की हवेली चलेंगे। यों भी देर हो गयी। वह चिल्ला रहा होगा।"

कल्लू अँगौछा कन्धे पर डाल हाथ में लोटा लेकर निकल गया।

किशन भाग्य के उलट-फेर पर आश्चर्य प्रकट कर रहा था। भ्रातृ-सेवा की भावना उसके मन को उद्वेलित करने लगी। उसने सोचा कि इसके आने तक बिस्तर लपेट करीने से सजा दे और चौकीदार से झाड़ू ले कमरे की सारी धूल निकाल दे।

इस विचार के आते ही उसने बिस्तर को लपेटने के लिये ज्यों ही तकिया उठाया त्यों हीं साँप के फन की तरह नोटों का एक बण्डल चमक उठा।

कृतज्ञता से उसका हृदय भर गया। इस व्यक्ति ने उसने उसका इतना विश्वास किया। ...उसने निश्चय किया कि जिस व्यक्ति को उसने भाई बनाया है एक अनजान का विश्वास किया है वह अपने कर्मों द्वारा साबित कर देगा कि वह सचमुच इसका पात्र है।

वह सोच रहा था कि भाग्य जब बदलता है तो सभी अनुकूल हो

जाते हैं। कल से आज तक जो हुआ था उसने उनकी जीवन सरिता को एक नया मोड़ दे दिया। विचारों की ऊहापोह में लीन उसे कल्लू के वापस आने की आहट ही न मिली।

लोटा रखकर कल्लू ने भीगी धोती किशन के सम्मुख करते हुए कहा—"इसे सुखा दो।"

उसने चौंककर देखा सामने स्नान से निवृत होकर कल्लू अंगोछा लपेटे खड़ा है।

उसने हाथ बढ़ा कर धोती थाम ली और कमरे में लगी हुई लकड़ी की दो खूटियों पर टाँग दी।

कल्लू ने कपड़े पहने और तकिये के नीचे से नोट का बण्डल निकाल कर अपनी सदरी की भीतरी जेब में रख लिया।

दरवाजे में ताला बन्द करके दोनों धर्मशाला के बाहर निकल गये। द्वार पर ही रिक्शा मिल गया।

रिक्शेवाले से हरिपुर के बड़े ठाकुर के यहाँ चलने को कह कर दोनों बैठ गये। जब रिक्शा चल दिया तो किशन ने कहा—"दादा, तकिये के नीचे इतना रुपया छोड़ कर चले गये थे। उस पर बिना गिने जेब में रख लिया। अगर कम हो गया हो तो···?"

कल्लू ने गर्व भरे स्वर में कहा—"मैं अपने छोटे भाई को बैठा कर गया था। मेरा छोटा भाई ऐसा नीच कर्म नहीं कर सकता इसका मुझे विश्वास है।"

किशन का सिर श्रद्धा और कृतज्ञता के बोझ से झुक गया। उसने कुछ उत्तर न दिया।

दोनों अपने विचारों में लीन थे। रिक्शा अपनी गति से गन्तव्य स्थान की ओर दौड़ा चला जा रहा था।

द्रुतगति से ट्रेन दौड़ती हुई यात्रियों को अपनों से दूर भगा कर अपनों के पास ले जा रही थी। कुछ अपनों से बिछुड़कर आ रहे थे और कुछ अपनों से मिलने जा रहे थे।

महिलाओं के डब्बे में सुखदा खिड़की की ओर मुँह किये हुए निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी। उसकी दृष्टि भागते हुए पेड़-पौधे, तार के खम्भे, खेत, गाँव, तालाब आदि एक स्वचालित यंत्र की भाँति देख रही थी। दृष्टि के पीछे मस्तिष्क कुछ भी न देख रहा था। अपने प्रियतम के बिछोह में उसका मन-प्राण, रोम-रोम सब कुछ रो रहा था; बिलख रहा था।

शोभा अन्य सह यात्रियों के साथ गप्प लड़ाने में तल्लीन थी। अपने हृदय की निराशा छिपा कर वह स्वाभाविक व्यवहार करने की चेष्टा कर रही थी। यात्रियों में सभी प्रकार की और विभिन्न आयु की स्त्रियाँ थीं। एक नवविवाहिता वधू ने उसका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया था। शोभा उसे देख कर सुखदा के उसी रूप की कल्पना कर रही थी। बारम्बार उसका हृदय कचोट उठता कि सुखदा का विवाह हो गया होता तो वह भी आज इसी प्रसन्न वदना रमणी की भाँति ससुराल से विदा हो कर घर आ रही होती।

उस लड़की के मन का उत्साह और पति-वियोग का दुःख उसके हाव-भाव से फूट-फूट कर निकल रहा था। शोभा व अन्य समवयस्का स्त्रियों ने मजाक-मजाक में पूछा कि पति से बिछुड़ने का इतना दुःख है तो किस भाँति मायके में रहेगी। उसका उत्तर था कि उसके स्वामी ने प्रतिदिन पत्र लिखने का आश्वासन दिया है और उसी के सहारे वह वियोग के दिन बिता देगी।

सब स्त्रियों को अपने प्रारम्भिक विवाहित जीवन का स्मरण हो आया; परन्तु शोभा को स्मरण आया कि गजेन्द्र का पत्र उसने सुखदा को नहीं दिया है।

वह तुरन्त सुखदा के समीप खिसक गयी और ब्लाउज में खोंसा

हुआ लिफ़ाफ़ा निकाल कर उससे बोली—"हाँ, यह पत्र लालाजी ने तुम को देने के लिए दिया था। मैं तो भूल ही गयी थी।"

सुखदा ने कुछ उत्तर न दिया। चुपचाप दाहिना हाथ बढ़ा कर पत्र ले लिया। मुड़े हुए लिफ़ाफ़े को सीधा कर के उसने देखा कि श्वेत लिफ़ाफ़े के ऊपर नीली स्याही से केवल चार अक्षर लिखे हुए थे—'सुखदा जी।' चुपचाप वह उन अक्षरों को एकटक देखती रही। एकाएक कल्पना-पट पर उन अक्षरों के मध्य गजेन्द्र का चेहरा चमक उठा।

रात्रि को, भावनाओं के उद्रेक में, जब वह गजेन्द्र से विदा लेकर अपने कमरे में लौटी थी, तभी से उसके मन में उथल-पुथल मची हुई थी। उसकी समझ में न आता था कि वस्तुतः हरिपुर से लौटने में उसने इतनी उतावली क्यों की?

उसे पूर्ण विश्वास था कि सुबह जब वह जाने लगेगी उस समय गजेन्द्र से अवश्य भेंट होगी। वह द्वार पर शिष्टाचार निभाने के लिये अवश्य आयेगा। परन्तु जब रिक्शा चल दिया और वह न आया, तो उसके मन को बड़ा आघात पहुँचा। वह समझ रही थी कि उसके लिये न सही, किन्तु दीदी के कारण तो उसे आना ही चाहिये।

एक निःश्वास के साथ उसने हृदय की धड़कन को सुस्थिर करने की चेष्टा की और खिड़की के बाहर देखने का उपक्रम करते हुए, लिफ़ाफ़े में से पत्र निकाल कर पढ़ने का निश्चय किया।

खोलने के लिये उसने ज्यों ही उसे पलटा त्यों ही खुला लिफ़ाफ़ा देख कर उसका मन क्षोभ से भर गया। प्रेम में एक विचित्र प्रकार की गोपनीयता की आकांक्षा होती है। उसे प्रतीत हुआ कि इस प्रकार खुला हुआ पत्र भेज कर गजेन्द्र ने उसे आम सभा में नग्न कर दिया है।

मन में प्रश्न उठा—यही प्रेम है, इस व्यक्ति का जो व्यक्तिगत भावनाओं को निरावरण करके अपने प्रेम का ढोल पीटना चाहता है।

वितृष्णा से उसके मुँह स्वाद में कड़ुआहट भर गई। एकाएक विचार उठा कि क्यों न यह पत्र को फाड़ कर फेंक दे।

किन्तु मानव के स्वाभाविक कुतूहल ने विजय पायी और वह पत्र पढ़ने के लोभ को संवरण न कर सकी। पत्र निकाल कर उसने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

"............"

बहुत विचार करने पर भी स्थिर न कर सका कि किस सम्बोधन से तुम्हें सम्बोधित करूँ? तुमने मुझे अधिकार ही कहाँ दिया है? फिर भी पत्र लिखने का मैं जो दुस्साहस कर रहा हूँ, उसके लिये आशा है कि तुम अवश्य क्षमा करोगी।

वैसे मेरे पास कुछ कहने को शेष नहीं है, किन्तु मैं एक बार अपने हृदय को तुम्हारे समक्ष रख देने का लोभ संवरण न कर सका।

एक आशा ही तो इस जीवन में शेष है। उसी के सहारे जीवित रहने का प्रयास कर रहा हूँ। सम्भव है भाग्य किसी समय तुम्हारे मन में दया उत्पन्न कर दे और तुम मुझ अकिंचन को अपना लो।

अतः मैं इस पत्र द्वारा केवल एक बात का स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि तब तुमने मुझे अपनाने का आश्वासन दिया है जब तुम्हें विश्वास हो जायगा कि मैं कामिनी से प्रेम नहीं करता था।

इस सन्दर्भ में एक बात जानना चाहता हूँ कि इसका प्रमाण मुझे क्या प्रस्तुत करना होगा?

इसका स्मरण सदैव रखना कि इस निर्णय को सुनने के लिए जन्म-जन्मान्तर तक कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

मेरे पास अधिक कहने के लिये कुछ भी नहीं बचा है और मनोभावों से तुम परिचित ही हो। तुम मानो चाहे न मानो, लेकिन मैं सदा यही सोचता हूँ कि जीवन के लिये जो व्यक्ति समन्वय का पथ स्वीकार नहीं करता, उसका स्वर्ग अधूरा रहता है।

एक प्रार्थना करूँ? कभी-कभी स्मरण कर लिया करना और अकारण ही मेरे लिये दुःख न उठाना। मानाकि मैं दुःख को सहारा बना कर जी

रहा हूँ, परन्तु साथ में आशा का वरदान प्राप्त होने का गौरव भी तो मुझे है।

धृष्टता के लिए पुनः क्षमा चाहता हूँ।

तुम्हारे निर्णय की प्रतीक्षा में,

गजेन्द्र।"

उन्हें पत्र लिख कर प्रभाव डालने करने का प्रयास करना केवल सड़क छाप मजनुँओं का नित्य का धंधा है? विदा के समय उपस्थित न होने का स्पष्ट अर्थ तो यही था कि उसे मेरे जाने या रुकने की कोई परवाह नहीं है।

पर मैं अपने हृदय की तड़पन को किस भाँति शान्त करूँ? न चाहने पर भी यह बरबस उसी की ओर झुकता है। सान्निध्य की कामना और कैसी होती है?

ऐसा भी तो सम्भव है कि यह केवल आकर्षण-मात्र हो। इसमें प्रेम की भावना रंच-मात्र न हो।

मैं उससे प्रेम करती हूँ इसका क्या प्रमाण है। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

आज तक कोई ऐसा पुरुष मेरे सम्पर्क में नहीं आया, जो मेरे आदर्शों के अनुरूप होता। जब उसे देख कर मेरी कल्पना जाग उठी तभी तो मैं समझ रही हूँ कि यह प्रेम का स्वरूप है। अच्छा तो क्या मैं भ्रम में फँस कर अपने को लुटा देने को प्रस्तुत हो गयी? ऐसा भी तो हो सकता है कि यह केवल मेरे मन की सुषुप्त चाह हो, अवस्था की माँग का एक स्फुरण-मात्र।

कुछ भी हो, सत्य का प्रमाण तो समय ही दे सकेगा। मुझे प्रतीक्षा करनी चाहिये। समय पाकर प्रेम का अंकुर अगर विशाल वृक्ष बन गया और उसकी जड़ें हृदय की गहराइयों में पैठ गयीं और सारे यत्न करने पर भी मैं उसे भुला न सकी, तो मैं आत्म-समर्पण कर दूँगी।

सदा मेरा दूर रहना केवल मेरे ही प्रेम की परीक्षा है उसकी

परीक्षा भी तो है। सम्भव है समय और दूरी मेरी स्मृति को उसके हृदय से निकाल दे, ठीक उसी भाँति जैसे वह आज कामिनी को भूल गया है और दावा करता है कि वह उससे प्रेम ही नहीं करता था। ऐसा भी तो हो सकता है कि जब मैं अपने प्रेम के कारण मजबूर हो कर उसकी शरण में पहुँचू तो बहुत देर हो चुकी हो और तब तक वह किसी अन्य नारी का सुहाग बन चुका हो।

एक मर्मान्तिक पीड़ा में उसका हृदय कराह उठा—यह तभी होगा जब उसके हृदय में मेरे प्रति प्रेम न हो कर केवल रूप का आकर्षण हो, वासना मात्र हो। उस दशा में मेरा जन्म-जन्मान्तर तक तड़पना ही उचित होगा।

मैं तड़पती रह सकती हूँ पर किसी की दया का पात्र बन कर नहीं जी सकती। वह मुझ से प्रेम न करता हो और मैं उसे विवश करूँ कि वह मेरी सूनी माँग में सन्दूर की एक रेखा बना दे। छिः कितना ग़लत समझा है उसने मुझे!

भावना के आवेश में आकर सुखदा ने पत्र के टुकड़े-टुकड़े करके एक-एक को भागती रेलगाड़ी की खिड़की से तेज़ हवा के झोंकों में बिखेर दिया!

मानो वह उसकी स्मृतियों को भी इन्हीं कागज़ों के टुकड़ों के साथ बिखेर दे रही है।

एकाएक अहं की तृप्ति के दृढ़ विश्वास से उसका आनन चमक उठा।

शोभा उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव का अध्ययन कर रही थी। पहले पत्र फाड़ कर फिर टुकड़े फेंकते देख कर वह समझ गयी कि उसकी इच्छा का साकार स्वरूप धारण करना असम्भव है।

उसे कुछ दुःख-सा हुआ गजेन्द्र और सुखदा दोनों के लिये। किन्तु भगवान की इच्छा समझ कर चुप रही। तब मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि एक प्रयास वह और करेगी। माता-पिता को सम्पूर्ण परिस्थिति से अवगत कर देने के पश्चात् विवाह सम्पन्न कर देने के लिये कहेगी।

इस समय अगर गुलदा इस सम्बन्ध को अस्वीकार कर देगी तो इस अध्याय को समाप्त समझ लेगी।

कानपुर आने वाला था। दोनों अपने-अपने विचारों में लीन बिना बोले अन्य यात्रियों की भाँति उतरने की तैयारी में लग गयीं।

१३

समय का चक्र कभी नहीं रुकता। सुबह होती है, शाम होती है। प्रकृति के नियम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। प्रेम से परिप्लावित हृदय समय बीतने की चिन्ता नहीं करता। अपने प्रियजन के सान्निध्य में उसे ज्ञात ही नहीं होता कि दिवस किस प्रकार व्यतीत हो गया। वर्षों बाद भी वह सोचता है कि अभी कल ही की बात है। किन्तु वियोग में तड़पते हुए हृदय को एक-एक पल एक-एक युग के समान प्रतीत होता है।

अब गजेन्द्र के स्वभाव में स्पष्ट अन्तर आ गया था। मन की शान्ति उजड़ जाने के पश्चात् उसका ध्यान किसी काम में नहीं लगता था। किसी को कष्ट में देख कर द्रवित होने के स्थान पर वह एक सुख का अनुभव करने लगा। उसकी चेष्टा कुछ इस प्रकार की होती कि जो लोग उससे मिलने आयें, उनकी पीड़ा में वृद्धि हो, साथ ही कोई उसे दोष न दे सके।

अधिकतर वह अपने कमरे में बन्द रहता। कामकाज मुख्यरूप से रमेसर देखता था। कल्लू को गजेन्द्र ने अपना मुख्य सहायक नियुक्त कर दिया था। वास्तव में वह रमेसर की प्रार्थना पर चतुरसिंह का पता लगाने के लिये आया था। किन्तु सुखदा के अचानक चले जाने के कारण परिस्थिति को सम्हालने कल्लू वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ।

किशन के साथ कल्लू जब हवेली के द्वार पर पहुँचा तब रमेसर ड्योढ़ी

पर बैठा हुआ स्टेशन की ओर जाने वाले राजपथ की ओर अपलक नेत्रों से देख रहा था। निराशा उसके नेत्रों से झलक रही थी। उसके चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही कल्लू का हृदय किसी दुर्घटना की कल्पना से आशंकित हो गया।

कल्लू और किशन को रिक्शा से उतरते देख रमेसर ने उठ कर आगे बढ़ कर कल्लू को वक्ष से लगा लिया। एक निःश्वास लेकर वह बोला—"सब समाप्त हो गया। ज़रा-सा आशा का दीपक टिमटिमा रहा था, वह भी आज बुझ गया।"

कल्लू की समझ में कुछ न आया। वह समझ न सका कि रमेसर का संकेत किस दिशा की ओर है।

मन की उत्कंठा को शान्त करता हुआ वह बोला—"मैं आया हूँ रमेसर, अब सब ठीक हो जायगा। तुम किसी भाँति की चिन्ता न करो। मुझे विश्वास है कि मैं तुम्हारे हृदय में खटकते काँटे को निकाल फेंकूँगा।"

रमेसर ने द्वार पर सबकी दृष्टि के सम्मुख बात करना उचित न समझा। उसे शंका थी कि सम्भव है हमारी बातें सुन कर कोई कुछ दूसरा अर्थ लगा ले। अतः वह अपने मेहमानों को हवेली के अन्दर लिवा ले गया।

विशिष्ट अतिथियों की भाँति उसने उन्हें बैठक में बैठा दिया। हवेली के नौकर-चाकर किशन से परिचित थे और कल्लू की ख्याति पौधों की भाँति सर्वत्र फैल ही चुकी थी। उनके आगमन की सूचना एक दूसरे के द्वारा वाणी के पंखों पर चढ़ कर प्रत्येक के पास जा पहुँची। वे एक-एक कर के आकर द्वार से झाँक-झाँक कर उनका दर्शन करने लगे।

रमेसर ने तुरन्त अपने अतिथियों के स्वागत-सत्कार के लिये जलपान लाने का आदेश दिया।

फिर कल्लू को परिस्थिति से परिचित कराते हुए उसने कहा—'अब यहाँ रहने को मन नहीं चाहता। मैया का दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। तुम्हारे किशन से आशा थी कि वह इस दुःख को दूर कर के इस हवेली

में आनन्द की वर्षा कर देगी, पर वह भी आज चली गयी। मेरा सपना बिखर गया। सोचता हूँ कहीं दूर, बहुत दूर चल कर भगवान के चरणों में इस जीवन को अर्पित कर दूँ। माया जाल तोड़ देने के पश्चात् सम्भव है कुछ शान्ति प्राप्त हो जाय।"

कल्लू ने एक क्षण विचार किया और कह दिया—"ठीक है। मैं भी जीवन भर की भाग-दौड़ से घबरा गया हूँ। चलो हरिद्वार चल कर संसारिक माया मोह को त्याग कर भगवत्-भजन करें।"

किशन इन दोनों की वार्ता को ध्यानपूर्वक सुन रहा था। इस योजना में अपना स्थान न पाकर वह बोला—"दादा, जो चीज सम्भव नहीं है उसके सम्बन्ध में विचार करना व्यर्थ है। मैं जब आपको जाने दूँगा तभी तो आप जावेंगे।"

रमेसर की समझ में न आया कि किशन ने कल्लू को 'दादा' कह कर क्यों सम्बोधित किया और किस अधिकार के बल पर वह उसके इस संकल्प का विरोध कर रहा है।

कल्लू ने जरा-सा मुस्कराते हुए कहा—"भैया, बड़े भाई सदैव बैठे तो नहीं रहते। फिर अब मैं बुढ़ापे में बेकार पड़ा रह कर भी क्या करूँगा। सारा जीवन तो पाप में कटा। भगवान की याद करने की कभी नौबत नहीं आयी और आज जब मौका मिला है तो तुम सामने दीवार बन कर मत खड़े हो।"

उसी क्षण अचानक गजेन्द्र ने बैठक में प्रवेश किया। कल्लू और रमेसर की पीठ द्वार की ओर थी तथा किशन की दृष्टि प्रवेश द्वार की ही ओर। परदे के हिलते ही वह सजग हो गया और गजेन्द्र के अन्दर आते ही वह अचकचा कर उठकर खड़ा हो गया। उसके इस प्रकार उठने से रमेसर और कल्लू दोनों का ध्यान गजेन्द्र की ओर आकर्षित हुआ तो रमेसर उठ कर खड़ा हो गया। कल्लू की समझ में आ गया कि आने वाला व्यक्ति ही इस हवेली का स्वामी है। तब वह भी रमेसर और किशन की देखा-देखी

यों तो गजेन्द्र अपने कमरे में बैठा हुआ था। किन्तु उसका ध्यान नीचे जाने वालों की टोह में लगा था। सुखदा की विदा की वेला में वह नीचे आकर द्वार पर भेंट करने का साहस एकत्र न कर सका था।

उसे विश्वास था कि भाभी और सुखदा के जाने के पश्चात् रमेसर स्वयं आकर सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करेगा। परन्तु जब रमेसर न आया और प्रतीक्षा असहनीय हो उठी तो वह स्वयं नीचे चला आया। राह में ही उनको कल्लू के आगमन की सूचना मिल गयी थी। साथ ही यह जान कर कि रमेसर बैठक में बैठा है उनके आश्चर्य की सीमा न रही। मन ही-मन वह अनुमान करने की चेष्टा कर रहा था कि कौन-सा ऐसा विशिष्ट अतिथि हो सकता है जिसे रमेसर बैठक में ले जा कर बैठाने की धृष्टता कर बैठा। कुतूहल को शान्त करने के लिये वह स्वयं बैठक में आ पहुँचा।

रमेसर ने आगे बढ़ कर कल्लू की ओर संकेत करते हुए कहा—"भैया, मैं अभी इनसे मिलाने के लिये तुम को बुलाने वाला था। यह हैं कल्लू मेरे एक मात्र मित्र। संसार में इनको छोड़ कर मेरा अन्य कोई नहीं है। ये मेरा सुख-दुःख का साथी रहा है। मैंने निश्चय किया है कि मैं इसके साथ हरिद्वार चला जाऊँ और जीवन के बचे खुचे दिन वहीं गंगा के किनारे बिता दूँ।"

गजेन्द्र ने अत्यन्त नम्र स्वर में कहा—"ठीक है। मैं अभी चलने की तैयारी करता हूँ। एकाध दिन में किसी ग्राहक को ढूँढ़ लो जो यह सब खरीद ले, चाहे चार पैसा कम ही दे।"

"ज़मीन जायदाद बेचने की क्या आवश्यकता पड़ गयी?"

"जब तुम चले जाओगे तो मैं साथ जाऊँगा ही, फिर उस दशा में यहाँ देख-भाल के लिये कौन रहेगा? गंगा किनारे रहने और भगवान भजन मात्र से तो सब समस्याओं का अन्त नहीं हो जायगा। रहने के लिये पैसों की आवश्यकता पड़ेगी ही। इसका उपयोग इससे अच्छा क्या हो सकता है? यहाँ जब लौट कर आना ही नहीं है तो यह [illegible]

और किचकिच किसके लिये ?"

"मगर तुम किस लिये जाओगे ?"

"जब तुम्हीं चले जाओगे काका तो यहाँ का प्रबन्ध कौन सम्हालेगा ? मैं कभी अकेला नहीं रहा हूँ। आज तक तुम हमेशा मेरे पास रहे हो। जहाँ मैं गया हूँ वहाँ तुम गये हो। और आज तुम जा रहे हो तो मैं भी तुम्हारे साथ जा रहा हूँ।"

कथन के साथ ही गजेन्द्र ने कल्लू की ओर देखा और अपने तर्क की पुष्टि के लिये उसे सम्बोधित कर बोला—"ठीक है न बड़े काका ?"

जिस सहज भाव से गजेन्द्र ने कल्लू को 'बड़े काका' शब्दों से सम्बोधित किया उसका प्रभाव कल्लू के ऊपर अनुकूल पड़ा। उसका मन थिरक उठा। स्नेह तथा वात्सल्य से उसका रोम-रोम ओतप्रोत हो गया। नेत्र सजल हो गए। वह सोचने लगा—'अब भी संसार में इतनी ममता और प्रेम है ! अगर उसका शतांश भी जीवन में उपलब्ध हो गया होता तो आज जीवन का स्वरूप ही दूसरा होता। रमेसर सचमुच बड़ा भाग्यशाली है।'

उसी क्षण उसे किशन का ध्यान आया। उसने सोचा कि उसका भाग्य भी उसके ऊपर कृपालु हो गया है। तभी तो रमेसर उसे लेकर यहाँ आया और एक साथ ही वह 'दादा' और 'बड़े काका' बन गया।

अवरुद्ध कंठ से वह बोला—"तुम चिन्ता न करो बेटा। न तुम जाओगे और न यह तुम्हारा काका जायगा।"

"और न मैं तुम्हें कहीं जाने दूंगा बड़े काका।"

"परन्तु···।"

बीच में ही बात काट कर गजेन्द्र बोल उठा—"परन्तु का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मैं जाने दूंगा तब तो आप जाएँगे। बस बात समाप्त हो गयी। व्यर्थ में तर्क करने से कोई लाभ नहीं। आज से आप सब प्रबन्ध देखिये। जिसके सर पर कोई बड़ा-बूढ़ा न हो उससे अधिक अभागा कौन होगा। आपके आने से मेरा यह अभाव दूर हो गया। काका, तुम

इनके रहने आदि का प्रबन्ध कर दो। जब तुम्हारा इनके सिवा अन्य कोई नहीं है, तो इनके यहाँ रहने से तुम्हें मित्र का अभाव न खलेगा।"

कथन के साथ ही उसका मुख एक अभूतपूर्व उल्लास और आनन्द से चमक उठा। सारी उदासी तिरोहित हो गयी। तभी उसका ध्यान किशन की ओर गया। उसके मुख पर एक प्रश्न सूचक चिह्न अंकित हो गया।

कल्लू ने तुरन्त कहा—"मेरा छोटा भाई किशन।"

गजेन्द्र ने रमेसर से कहा—"इसे तो शायद कहीं देखा है।"

"यह कल्याणपुर में रहता है।"

"तो यहीं इसका भी प्रबन्ध कर दो। मेरा परिवार मेरे ही पास रहे। मैं निश्चिन्त होकर विश्राम करूँ। सच कहता हूँ, बहुत थक गया हूँ। इतनी बड़ी हवेली में अपना कोई न था। अब अकेलापन तो न सतायेगा।"

उसकी वाणी में हृदय का समस्त दुःख भरा हुआ था। सारा वातावरण बोझिल हो गया। सब चुप रहे। किसी के मुँह से कोई शब्द न निकला।

तभी एक सेवक जलपान की सामग्री लेकर बैठक में पहुँचा।

गजेन्द्र ने उसे संकेत करते हुए आदेश दिया—"इधर रखो कोने में।"

साथ ही कल्लू से बोला—"आप लोग जलपान करें। किसी भाँति का संकोच न कीजियेगा। कोई कष्ट हो तो मुझे तुरन्त सूचित करें। वैसे यहाँ का प्रबन्ध ऐसा है कि किसी को कभी शिकायत का अवसर नहीं मिलता। अच्छा, मैं चलता हूँ। जिस समय आप लोग चाहें ऊपर आ सकते हैं।"

कथन के साथ ही गजेन्द्र चल दिया।

उसके जाने के पश्चात् कुछ क्षण तीनों किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे।

सर्वप्रथम मौन-भंग किया रमेसर ने। बोला—"देख लो, माया का बन्धन तोड़ फेंकना कितना कठिन है। मैं तो भ्रमर की भाँति कमल में कैद था ही, अब तुम भी इसी जाल में आ फँसे।"

"ऐसे जाल में फँसने का गुरु-सौभाग्य भाग्य से मिलता है।"

"अच्छा नाश्ता तो करो। चाय ठंडी हो जायगी।"

"चाय ठंडी हो जाने से क्या अन्तर पड़ता है रमेसर, ज़िन्दगी तो ठंडी होने से बच गयी!"

जलपान के साथ भविष्य के सम्बन्ध में एक बार फिर चर्चा चल पड़ी। अचानक गजेन्द्र ने सभी पूर्व निर्धारित योजनाओं को समाप्त कर दिया।

अपना मनोभाव झलकाता हुआ कल्लू बोला—"रमेसर तुम सचमुच बड़े भाग्यवान् हो। यह तुम्हारे पिछले जन्मों के पुण्य का प्रताप है, जो तुमको भैया का प्यार और आत्मीयता मिली। तुम्हारी संगति का फलाफल सामने है। मैं अकेला दर-दर की ठोकरें खाता-फिरता था परन्तु आज मैं ऐसे बड़े आदमी के परिवार का सदस्य बन गया। आज कुछ ऐसा जान पड़ता है कि जिन्दगी अपना अर्थ बतलाने आ पहुँची हो।

किशन ने एकाएक बीच में टोक कर सब की विचारधारा को नया मोड़ दे दिया। वह बोला—"ठाकुर साहब बहुत दुःखी और परेशान दिखाई दे रहे थे। उन्होंने हमें नया जीवन दिया है तो हम लोगों को भी उनके दुःख को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिये।"

कल्लू ने कहा—"चतुरसिंह का पता लगाना ही चाहिये। यहाँ रह कर उससे बदला लेना सम्भव होगा या नहीं, अब हमें यह तै कर लेना है।

रमेसर ने कहा—"देखो, मुख्य प्रश्न तो यहाँ इस खेती-बारी का प्रबन्ध है। भैया तो देखने से रहे। कारिन्दे वग़ैरह के ऊपर अगर देख-रेख न रही तो सब काम चौपट हो जायगा। मुझे घर के प्रबन्ध से ही समय नहीं मिलता। इसीलिये भैया ने तुम लोगों को काम-काज देखने के लिये कहा है।"

"लेकिन न तो मुझे किसी प्रकार का अनुभव है और न किशन को। मुझे डर है कि ऐसी दशा में लोग उलटा-सीधा समझा कर लोग मनमानी

न करें।"

"ऐसा नहीं होगा। गलती पकड़ी जाने पर उन लोगों को सजा दी जा सकती है। तुम चिन्ता न करो। फिर भैया और मैं कहीं जा थोड़े ही रहे हैं। रहा चतुरसिंह का पता लगाने का प्रश्न, सो उस सम्बन्ध में छान-बीन करते रहने से ही पता लगेगा।"

हथेली पर खैनी चूना रगड़ते हुए कल्लू ने कहा—"ठीक है, जो होगा सो देखा जायगा। परन्तु एक बात है, ठाकुर साहब ने यहां रहने का प्रबन्ध करने के लिये कहा है। पर हम लोगों का यहां रहना कहां तक उचित होगा?"

एक चुटकी मुँह के अन्दर जमाता हुआ रमेसर बोला—"ऐसा कुछ नहीं है। पीछे की तरफ़ क्वार्टर बने हैं। उन्हीं में रहने का प्रबन्ध कर दूंगा।"

इतने में परदा एक ओर सरका कर सेवक ने प्रवेश किया। सभी मौन हो गये और उसके मुंह की ओर देखने लगे। सेवक ने कहा—"बड़े ठाकुर ने कहा है कि थोड़ी देर में उनसे मिल लें।"

विस्मय भरे स्वर में कल्लू ने रमेसर से पूछा—"बड़े ठाकुर?"

"भैया को सब बड़े ठाकुर कहते हैं। मालिक को बड़े ठाकुर कहना यहां की प्रथा है। चलो ऊपर ही चलें।"

तीनों उठ कर खड़े हो गये। फिर एक के पीछे एक कमरे के द्वार से बाहर निकल गये।

दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही चतुरसिंह मोटर पर बम्बई के लिये चल दिया। कामिनी नवजीवन निर्माण की भावना से प्रेरित निश्चिन्तमना मोटर की पिछली सीट पर बैठी थी। चतुरसिंह उसके पार्श्व में विराज-मान था। भगवानदीन और ड्राइवर बाबूराम सामने की सीट पर बैठे

हुए थे। हरिपुर से चलते समय भी यही लोग थे और आज भी। अन्तर था साथ में रक्खे हुए सूटकेस, बक्स और होल्डाल का, जिसने इन लोगों को सभ्य और सम्पन्न नागरिक होने का प्रमाण-पत्र दे रक्खा था। चाल-ढाल पहनावे से वे लोग यात्री प्रतीत होते थे जो तीर्थयात्रा या भारत दर्शन के हेतु भ्रमण कर रहे हों। पाश्चात्य सभ्यता में डूबे हुए व्यक्ति कामिनी की माँग में चमकते हुए सिन्दूर के कारण कम आयु के दम्पति को देख हनीमून के लिये निकले हुए भ्रमणार्थी समझ लेते। कोई यह सोचने की धृष्टता नहीं कर सकता था कि इस ठाठ-बाट के अन्दर लड़की भगा ले जाने की परियोजना छिपी है।

सूर्योदय के प्रथम ही कानपुर पार कर के जीप आगरे की ओर बढ़ी जा रही थी। चतुरसिंह ने वहीं रात्रि व्यतीत करने का कार्यक्रम बनाया था। वहाँ घूमने के पश्चात् कामिनी मथुरा-वृन्दावन जाना चाहती थी। किसी प्रकार की जल्दी बम्बई पहुँचने की थी नहीं। चतुरसिंह ने जीप से यात्रा करने का प्रबन्ध इस विचार से किया था कि किसी को उसका पता न लग सके। वह समझता था कि ट्रेन से यात्रा करने में सम्भव है गजेन्द्र या अन्य कोई उसका पता पा जाय। विशेष तौर से इस प्रकार भागे हुए लोगों की खोज में लोग स्टेशन और ट्रेनों पर दृष्टि रखने का प्रयास करते हैं। वह जानता था बम्बई और कलकत्ता में उसके ढूंढ़ने का प्रयत्न किया जा रहा होगा। किन्तु विशाल जन-समुदाय में जाकर विलुप्त हो जाने के पश्चात् किसी का पता पाना अत्यन्त दुष्कर होता है। जीप द्वारा बम्बई पहुँचने में किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ेगा।

और हुआ भी सचमुच ऐसा ही। उसे किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ा। रास्ते के शहरों में रुकते-घूमते-घामते बम्बई पहुँचने में उनको बारह दिन लग गये। डाक बँगलों में रात्रि व्यतीत करते और दिन में नाना प्रकार की प्राकृतिक सौन्दर्यस्थली के दर्शन करते हुए यात्रा के बीच कामिनी का मानसिक उद्वेलन शान्त हो गया। उसने अपनी बागडोर परिस्थिति को सौंप दी और पराजय स्वीकार कर ली। चतुरसिंह के

तर्कों को मान कर वह आदर्श को भूल यथार्थ को समेटने की चेष्टा में संलग्न हो गयी।

बम्बई पहुँच कर चतुरसिंह ने मैरीन ड्राइव के एक होटल में दो कमरों का सूट किराये पर ले लिया। जीप सहित ड्राइवर बाबूराम वापस चला गया। भगवानदीन वहीं उन दोनों के साथ ठहर गया।

चतुरसिंह ने वहाँ पैसे के बल पर एक रूपक रच डाला। प्रथम दृष्टि में तो लोग यही समझे कि बम्बई भ्रमण के हेतु आने वाले धनी वर्ग के लोग हैं जो एकाध महीने के लिये यहाँ आये हैं। दूसरे ही दिन से उसने विख्यात कर दिया कि वह अपनी पत्नी को जलवायु-परिवर्तन और इलाज के हेतु लाया है।

इस योजना में कामिनी का पूरा सहयोग था।

दिन भर दोनों अपने कमरे में ही रहते और संध्या समय घूमने के लिये निकल पड़ते। नित्य प्रातः से संध्या तक कमरे में बन्द रहते-रहते चतुरसिंह का मन ऊबने लगा। ऐसे में उसके पुराने व्यसन का उभरना स्वाभाविक ही था। पैसे की कोई कमी न थी। उस पर उसे कामिनी के अलंकारों का भरोसा था ही। अतः उसने होटल के एक बेयरे डिसोज़ा से शराब का प्रबन्ध करने को कहा। ड्राई एरिया होने के कारण उसे दुगने और तिगुने मूल्य पर शराब लेनी पड़ी।

बम्बई में ऐसे कई दल हैं जो अवैध शराब बेचने का व्यवसाय करते हैं। इन दलों का काम केवल शराब बेचना नहीं, यह लोग सभी तरह के व्यापार में संलग्न रहते हैं। एक ऐसे ही दल से डिसोज़ा का सम्बन्ध था। जब कोई ग्राहक आता, तो उसकी आवश्यकता की पूर्ति वह इसी दल के सदस्यों के द्वारा करता। इसमें उसे स्वयं भी अच्छी आय हो जाती थी।

पर डिसोज़ा इस दल की सम्पूर्ण गतिविधि से परिचित न था। इस दल का संचालक एक पढ़ा-लिखा, सूरत-शकल से सुन्दर और स्वस्थ नव-युवक था; जिसको नौकरी न मिलने के कारण परिस्थितियों ने इस धन्

का संगठन करने के लिये विवश कर दिया। इसके सदस्य भी अधिकतर पढ़े-लिखे निर्धन व्यक्ति थे। शराव तो इस दल का एक साधन मात्र था। यह जानने के लिये कि कौन यात्री किस प्रकार का है, वे उसका पीछा कर के उसकी आर्थिक स्थिति, आवश्यकताओं तथा उसकी रुचियों का ज्ञान प्राप्त करते और नाना प्रकार के जाल में डाल कर उसे ब्लैकमेल करते, या जुए में उसका रुपया उड़ा देते।

चतुरसिंह के सम्बन्ध में सूचना पाकर इस दल का नायक कौशल किशोर स्वयं होटल में आकर बगल के कमरे में ठहर गया। संध्या को डाइनिंग रूम में योजना के अनुसार वह बैठकर चतुरसिंह और कामिनी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी ही देर में जब दोनों भोजन के लिये आये, तो कामिनी ने पहले प्रवेश किया। चतुरसिंह उसके पीछे था। कामिनी को देखते ही कौशलकिशोर चकित हो गया। ऐसा नहीं था कि उसने सौन्दर्य गर्वित स्त्रियाँ न देखी हों, परन्तु कामिनी में उसे नारी-सौन्दर्य के अतिरिक्त स्निग्धता और पवित्रता का भी दर्शन हुआ, जो सामान्य तौर पर आधुनिक नारियों के अन्दर नहीं पाया जाता। उसने मन-ही-मन उसे प्राप्त करने का निश्चय कर लिया।

भोजन समाप्त करने के पश्चात् जब वे दोनों ऊपर, अपने कमरे में, जाने के लिए लिफ़्ट में चढ़े, तो कौशलकिशोर भी उसी में प्रवेश करके एक ओर खड़ा हो गया। पाँचवीं मंज़िल पर लिफ़्ट रुकी, वह भी बाहर निकल कर साथ चलने लगा, तो चतुरसिंह के मन में अचानक विचार आया कि यह कितना असभ्य व्यक्ति है, जो पीछा करने की नीयत से सभ्यता और संस्कृति की सीमा को भी लाँघ रहा है। परन्तु अपने बगल का द्वार खोलते हुए देख कर उसे स्वयं अपने ऊपर हँसी हो आयी। सहसा मन में विचार उठा कि बाह्य परिस्थिति मनुष्य के परख, वास्तविक कसौटी नहीं हो सकती।

कामिनी कमरे में प्रवेश कर चुकी थी। वह स्वयं भी एक पग अन्दर

रख चुका था कि उसके कानों में बगल के कमरे में ठहरे हुए यात्री का स्वर आ पड़ा। बढ़ा हुआ पग पुनः वापस लौट आया।

कौशलकिशोर कह रहा था—"श्रीमान् जी''क्षमा करियेगा। आप के पास कोई उपन्यास या कथा-संग्रह होगा ?"

चतुरसिंह ने उत्तर दिया—"जी नहीं।"

"परदेश में बड़ी कठिनाई होती है। यहाँ मद्य-निषेध होने के कारण अकेले व्यक्ति के लिये समय व्यतीत करना बड़ा कठिन हो जाता है।"

प्रत्येक पीने वाला साथी ढूँढ़ता है। अकेले पीने में प्रायः आनन्द नहीं आता। साथ में बैठ कर पीने वाले साथी के अभाव का चतुरसिंह भी अनुभव करता था। उसे प्रतीत हुआ कि यह व्यक्ति सौभाग्य से ही उसे मिला है, जिसके सहवास में वह घंटा-दो-घंटा बैठकर शराब पीने का आनन्द उठा सकता है।

अतः वह बोला—"यह तो कोई विशेष कठिन बात नहीं है। इसका प्रबन्ध तो यहाँ अत्यन्त सरलता से हो जाता है। आप अकेले हैं, इसलिये आपके कमरे में ही बैठक का प्रबन्ध उचित रहेगा, क्योंकि मेरी श्रीमती जी ज़रा''आप तो समझते ही हैं।"

कथन के साथ ही वह ठहाका मार के हँस पड़ा तो कौशलकिशोर ने भी उसका साथ दिया। दो अनजान व्यक्तियों के मध्य गिलास में भरी हुई मदिरा एक आत्मीयता स्थापित कर देती है।

चतुरसिंह पुनः बोला—"भोजन के पश्चात् पीने में अगर कोई ऐतराज न हो, तो मैं आ जाऊं।"

"थोड़ी-बहुत तो चल ही सकती है। कुछ नहीं तो गप्पें ही लड़ायेंगे। मैं अभी साथ के लिये कुछ प्रबन्ध करता हूँ।"

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद चतुरसिंह कामिनी को समझा-बुझा कर कौशलकिशोर के कमरे में जा पहुँचा।

सेन्टर टेबुल पर दो गिलास और प्लेटों में नमकीन काजू व बादाम रखे हुए थे। सोडे की बोतलें नीचे रखी हुई थीं। [illegible] की बोतल मेज

पर रखकर चतुरसिंह सोफ़े पर बैठ गया।

कौशलकिशोर ने बोतल का लेबल देखा तो अभिनय की एक मुद्रा प्रदर्शित करता हुआ बोला—"बड़े आश्चर्य की बात है! ब्लैक-एण्ड-वाइट आपको यहां मिल कैसे गयी? क्या बात है! मजा आ गया।"

वार्ता के दौरान दोनों में परिचय हुआ। कौशलकिशोर ने अपने सम्बन्ध में बतलाया कि नेपाल में उसका बहुत बड़ा व्यापार है और वह चित्र-निर्माण के सिलसिले में बम्बई आया हुआ है।

दोनों पी रहे थे। कौशलकिशोर फिल्म लाइन के सम्बन्ध में,विस्तार-पूर्वक समझा रहा था। चतुरसिंह ध्यानपूर्वक उसकी बात सुन रहा था। वह विचार कर रहा था कि इस धन्धे से अधिक आयवाला अन्य कोई व्यापार नहीं है, जिसमें लाख-दो-लाख लगाकर एक ही पिक्चर में दस-बीस लाख की निधि कमाई जा सके।

अपनी बातों का मनोवांछित असर देख कर कौशलकिशोर ने चतुरसिंह से प्रश्न किया कि वह करता क्या है?

मानव स्वभाव के अनुसार उसने अपने सम्बन्ध में खूब बढ़ा-चढ़ा कर कहना प्रारम्भ कर दिया। कौशलकिशोर चुपचाप मन-ही-मन मुसकराता हुआ सुनता रहा। एक बार उसके मन में आया भी कि वह उसे मना कर दे और कहे—'बस रहने भी दो। आज तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला, जिसके यहाँ सैकड़ों बीघा पुदीने की खेती न होती हो, जब कि वस्तुतः उसकी जेब में दस रुपये का नोट भी नहीं होता।' परन्तु उसने ऐसा कुछ न कह कर चतुरसिंह के अहं को प्रशंसात्मक शब्दों द्वारा और भी उत्तेजित कर दिया।

रात्रि के ग्यारह बजते-बजते कौशलकिशोर को उसकी आर्थिक स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान हो गया। चतुरसिंह ने स्वयं प्रस्ताव किया कि वह उसे अपना पार्टनर बना ले। नशे की हालत में भी चतुरसिंह सत्य को छिपा गया और अपने सम्बन्ध में रूपक रच कर बोला—"इस समय मेरे पास

कैश रुपया अधिक नहीं है। फिर भी दस-बीस हजार तो होगा ही। फिल्म लाइन के लिये पिताजी से रुपया न मिलने पर भी मैं पत्नी के गहने बेच कर रुपये का प्रबन्ध कर सकता हूं।"

कौशलकिशोर ने समझ लिया कि इस व्यक्ति में कुछ दम नहीं है। जो कुछ भी है बस इसकी पत्नी है। और एक रूपसी होने के कारण कामिनी के प्रति आसक्ति उसके मन में पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी।

एकाएक उसे अपने पेशे के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गयी। वह सोच रहा था कि अगर भाग्य साथ दे तो वह पुनः समाज में प्रतिष्ठित हो सकता है। दिन-रात मारे-मारे फिरने की अपेक्षा अपना घर बसा कर जीवन के वास्तविक सुख की उपलब्धि की दिशा में प्रयास किया जा सकता है। पेट भरने मात्र के लिये जीना तो पशु के समान है। उसे भान हुआ कि आज का उसका जीवन उस कुत्ते के समान है, जिसका ध्येय केवल खाने के लिये फिरना और यौन-पिपासा को शान्त करना है।

मन-ही-मन उसने निश्चय किया कि वह जीवन में अन्तिम बार प्रयास कर के कामिनी को हस्तगत करेगा जिससे उसको जीवन में नारी और धन दोनों ही प्राप्त हो जावें। तत्पश्चात् वह नवजीवन प्रारम्भ करेगा। पाप के इस रास्ते को सदैव-सदैव के लिये तिलांजलि दे देगा।

बोतल समाप्त हो गयी। चतुरसिंह ने अनुभव किया कि नशा अधिक चढ़ गया है। रात्रि भी अधिक हो गयी थी। अतः उसने कौशलकिशोर से दूसरे दिन प्रातः मिलने का वादा कर के विदा ली। वह अपने कमरे में गया।

अब कौशलकिशोर भविष्य की कल्पना में लीन था। उसे नींद नहीं आ रही थी। कामिनी के व्यक्तित्व में उसे नारी का अप्रतिम सौन्दर्य दृष्टिगोचर हो रहा था। उसे प्राप्त करने के लिये उसका वासनाजित मानस अपने पापों के परिणामों को स्मरण कर के व्याकुल हो उठा।

वह रात्रि भर करवटें बदलता रहा। उषा के आगमन के साथ ही उसकी बोझिल पलकें बन्द हो गयीं और वह आलस्य की थकान के वशी-भूत ही सो गया।

१४

गजेन्द्र के कमरे में जब रमेसर अपने मित्र कल्लू और किशन के साथ पहुँचा तो वह पलँग पर लेटा हुआ छत की ओर अपलक दृष्टि से देख रहा था। सम्पूर्ण वातावरण इतना उदास था कि गजेन्द्र के हृदय की वेदना और पीड़ा से उस कमरे की अचेतन वस्तुएँ रुदन करती जान पड़ती थीं।

इन लोगों के आगमन की आहट पाते ही वह बोला—"कुर्सी खींच लो काका, बैठो।"

स्वर की आत्मीयता से सब की आत्मा डोल उठी। तूफ़ान के पूर्व की नीरवता अनिष्ट की सूचना देती है। प्रत्येक को आभास हुआ कि कोई अनहोनी घटना घटित होने वाली है।

बिना उत्तर दिये रमेसर ने कुर्सी पलँग के समीप सरका ली, तो कल्लू और किशन भी एक-एक कुर्सी खिसका कर बैठ गये।

थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। गजेन्द्र उसी भाँति लेटा रहा। उसके दोनों हाथ तकिये के ऊपर और सर के नीचे रक्खे हुए थे। उसकी दृष्टि छत में लगी हुई कड़ियों में अटकी रही थी, मानों वह विधि-लिपि अदृश्य लेख को पढ़ रहा हो।

सहसा वह विद्युत गति से उठ कर बैठ गया। उसके अचानक इस प्रकार उठने से सब लोग चौंक पड़े।

कल्लू ने आश्चर्य को छिपाने की चेष्टा में अपना नीचे का होंठ दांत से दबा लिया। किशन के मुंह से हलकी-सी अस्फुट चीत्कार निकल गयी और उसके समीप ही बैठा हुआ रमेसर उछल कर खड़ा हो गया।

गजेन्द्र ने उसे हाथ से बैठने का संकेत किया और कहा—"अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा।

रमेसर ने बैठते हुए पूछा—"क्यों?"

"मन नहीं लगता।"

कल्लू ने आत्मीयता को स्थापित करते हुए कहा—"मन तो लगाने से लगता है। इस भाँति चले जाने से जगहँसाई न होगी? सब यही कहेंगे कि विवाह के दिन दुल्हन भाग गयी, इसीलिये ठाकुर ने गाँव छोड़ दिया।"

"परन्तु वास्तव में ऐसी कोई बात तो है नहीं।"

रमेसर कल्लू का सहारा पा कर बीच में झट से बोला—"लोकमत की सीमा ठहरी। लोगों का मुँह तो बन्द किया नहीं जा सकता। फिर यह खेत-पात और कामकाज कौन देखेगा!"

"तुम हो, बड़े काका हैं और यह किसन है।"

कल्लू ने कहा—"हम लोगों को तो आपने रोक लिया और स्वयं जाना चाहते हैं। जहाँ भी जाओगे भैया, वहाँ इस अपमान को कैसे भूल सकोगे? चतुरसिंह तुम्हारी होने वाली भावी पत्नी को भगा ले गया। वह अपने आप चली गयी या बलपूर्वक उठा कर ले गया। इसका निर्णय तो पुरुष होने के नाते तुम्हीं को करना पड़ेगा। फिर इस अपमान का प्रतिकार क्या है? केवल यही कि हम सब लोग तुम्हारे साथ-साथ दुःख की ज्वाला में जला करें और वे लोग सुख की नींद सोयें।"

"विधि के विधान को हम चाह कर भी नहीं बदल सकते।"

"ऐसा केवल कायर और अकर्मण्य ही सोचते हैं। यथार्थ में अन्याय के विरुद्ध मनुष्य को सदैव विद्रोह करना चाहिये। मनुष्य ही क्या, चाहे वह भगवान का भी हो। अत्याचारी के समक्ष सर झुकाकर चुपचाप स्वीकार कर लेने मात्र से जीवन-सौख्य प्राप्त नहीं हो सकता। अगर यहाँ गर्व

होता, तो न महाभारत का युद्ध होता, और न रावण का वध। यहाँ से भागकर जाओगे कहाँ? हृदय की पीड़ा मिट सके तो जाने का कुछ अर्थ भी है।"

"यहाँ रहने के अर्थ पर भी विचार किया है। प्रत्येक मनुष्य मुझे उपहासपूर्ण दृष्टि से देखे, यह मुझे स्वीकार नहीं।"

कल्लू ने तार्किक की भाँति कहा—"इसमें तुम्हारा कोई दोष तो है नहीं। तुम्हारी पत्नी किसी के साथ भाग गयी होती तो लज्जा की बात थी। किन्तु जब विवाह नहीं हुआ तो कामिनी के किसी कृत्य की जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर कैसे और क्यों आयेगी?"

गजेन्द्र ने उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा—"पर मैं यहाँ रह कर करूँगा भी क्या?"

"अपने कर्त्तव्य को मत भूलो। अब तक यहाँ क्यों रहे और क्या करते रहे? स्वर्ग में बैठे हुए पुरखों की आत्मा का ध्यान करो। जरा सोचो, प्रत्येक पिता पुत्र की कामना क्यों करता है? इस घटना को विस्मृति के गर्त में डुबो दो और अपना काम काज पूर्ववत् करो। किसी को यह कहने का अवसर मत दो कि बड़े ठाकुर का सम्बन्ध कामिनी से अवश्य रहा होगा, तभी तो उसके भाग जाने के कारण वह विक्षिप्त हो गया है। हम लोगों का कहना मानकर तुम यहीं रहो। यह मैं नहीं कहता कि तुमको दुःखी न होना चाहिये। मेरे कहने का तात्पर्य तो केवल इतना है कि दुःख का प्रदर्शन मत करो। उसमें बदनामी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अपने दुःख को अपने हृदय की तह में छिपा कर रखो। समय स्वयं सबसे बड़ी औषधि है। आज जो पीड़ा असहनीय प्रतीत होती है कल घाव भरने के साथ-साथ समाप्त हो जायगी।"

गजेन्द्र स्वयं चुप था, किन्तु उसकी अन्तरात्मा इस तथ्य को स्वीकार कर रहा था। स्वयं उसकी विचारधारा इसी मार्ग की अनुगामिनी थी।

किसी को उत्तर में कुछ बोलते न देख कर कल्लू पुनः बोला—"कुछ समय पश्चात् विवाह कर लेना। वंशवृद्धि के साथ ही बाल-बच्चों में रम

मगर बड़ा-से-बड़ा दुःख स्वयं समाप्त हो जायगा।"

"अब इस जीवन में विवाह की इच्छा नहीं रह गयी। जीवन में सुख लिखा होता, तो कामिनी क्यों छोड़ कर चली जाती, या सुनन्दा ही आकर यों ठुकरा देती? नहीं काका, नहीं। अब कुछ इच्छा शेष नहीं है। जिसके लिये जिया जाय।"

"जीवन के मूल रूप को पहचानने की चेष्टा करो। कोरी भावना में पड़ कर कोई ऐसा निश्चय कर लेना जिसके लिये कल पछताना पड़े, बुद्धिमानी नहीं है। मन को बुद्धि का सहारा दो और सब कुछ भूल कर नयी दिशा में मन को रमाने का प्रयास करो।"

"मुझसे यह सब कुछ न होगा।"

कल्लू ने तनिक उत्तेजित स्वर में कहा—"तुमसे कुछ न होगा और हम सब लोगों से सब कुछ हो जायगा। यह तो कोई बात न हुई। अगर तुम यहाँ से कहीं चले जाओगे, तो हम सब लोग भी यहाँ से चले जायेंगे। सच पूछो तो तुम्हारा स्नेह-बन्धन ही तो हम लोगों को यहाँ रोके हुए है।"

रमेसर ने भी हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहा—"बिलकुल ऐसा ही होगा। तुम्हारे बिना हम लोगों के लिये यहाँ रुकने का कोई मोह नहीं।"

गजेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। विचारों का बवंडर उसके मस्तिष्क को उद्वेलित कर रहा था। उसने अनुभव किया कि इन सबकी दृष्टि उसी के ऊपर केन्द्रित है। वही उसके तन के आवरण को भेदकर मन में उठते हुए द्वन्द्व को देख-सुन रही है।

कुछ क्षण चुप रहने के उपरान्त उसने अत्यन्त मन्द स्वर में मानो अपने-आपसे कहा—"यहाँ बैठकर मैं मन की शान्ति प्राप्त कर सकूँगा, इसमें सन्देह है। हाँ, मैं भिन्न-भिन्न स्थानों तक अवश्य जाऊँगा। जीवन-सौन्दर्य के लिये मुझे प्रवास करना आवश्यक है। मैं कामिनी को भी ढूँढ़ निकालूँगा। और सुनन्दा को भी मना कर, वापस लौटा लाने का प्रयत्न करूँगा। विश्वास करो, मैं सदैव के लिये तो नहीं जा रहा हूँ।"

रमेसर ने ही उत्तर दिया—"तुम कामिनी का पता लगाने के लिये

दर-दर की ठोकरें खाते फिरो और हम लोग यहाँ बैठे रहें। तुम्हारा इस दशा में तनिक-सा प्रयास भी कितना अशोभनीय होगा, इसका तो ध्यान करो। मैं कल्लू को उसी कार्य के लिये अपने साथ लिवा लाया हूँ। रहा सुखदा बिटिया के आने का प्रश्न, तो उसकी जिम्मेदारी मेरी है। तुम जो कुछ करना चाहो करो, तुमको कोई नहीं रोकेगा। परन्तु तुमको हम लोग किसी दशा में जाने न देंगे।"

"काका, जब तुम मुझे जाने न दोगे, तो मैं नहीं जाऊँगा। बस।"

"इतना ही नहीं, तुमको अपने हृदय को पत्थर का बनाकर साधारण रूप से पहले की भाँति रहना होगा।"

रमेसर से इस कथन का उत्तर गजेन्द्र ने मौन से दिया। मौन स्वीकृति का एक लक्षण होता है। अतः सबने अनुमान किया कि वह मान गया है।

अब उसने किशन को सम्बोधित करके कहा—"किशन बेटा, तुम ठाकुर वीरबहादुर के यहाँ दोनों समय चले जाया करो। वहाँ का सब प्रबन्ध तुम्हारे जिम्मे रहा। वहीं से भेद प्राप्त करने की चेष्टा करना। कल्लू अपने ढंग से यह काम कर ही रहे हैं। क्यों ठीक रहेगा?"

सबने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और भविष्य की कार्य-प्रणाली स्थिर करके दो-दो घण्टे पश्चात् जब वे लोग कमरे के बाहर निकले, तो गजेन्द्र ने अनुभव किया कि सचमुच यह सबसे उत्तम प्रबन्ध है।

पिछले दिनों की उत्तेजना की थकान दूर हो गयी थी। वह मन-ही-मन उस दिन की कल्पना में लीन हो गया, जब इन लोगों की सहायता से वह कामिनी से बदला लेने के उपरान्त, सुखदा को प्राप्त करने में सफल होकर, जीवन की मधुर अनुभूतियों का नैसर्गिक सुख प्राप्त करेगा।

प्रत्येक मानव के जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं, जब वह एक पाप के

माध्यम से ही अपने पापमय जीवन को छोड़ने का निश्चय करता है। परन्तु पाप की नींव पर आधारित महल में जो पाप की ईंट और गारे से चुना हुआ है, उसमें पुण्य का प्रवेश नहीं हो पाता।

अपनी योजना की लक्ष्य-प्राप्ति के मद में चूर चतुरसिंह भूल गया कि जीवन-सौख्य के लिये अपनाया हुआ पाप का मार्ग दुःख और पराजय में भी परिणित हो सकता है। आज तक की सफलताओं ने उसकी आँख मूंद दी और वह सतर्कता भूल गया जो उसका सहज गुण था। वातावरण की नवीनता और पलक मारते ही करोड़पती बनने की इच्छा के कारण वह कौशलकिशोर के जाल में सहज ही फँस गया।

दूसरे दिन प्रातः उसने कामिनी को रात्रि की सम्पूर्ण बातचीत से अवगत करा दिया और नाश्ते के लिये जाकर कौशलकिशोर को अपने कमरे में लिवा लाकर उससे परिचय करा दिया।

कौशलकिशोर ने परिचय प्राप्त होते ही अत्यन्त शिष्टतापूर्वक उन दोनों को स्टूडियो और शूटिंग देखने का आमंत्रण दिया, जिसे दोनों ने स्वीकार कर लिया।

गोरे गाँव के एक स्टूडियो में शूटिंग दिखलाने के उपरान्त वह उन दोनों को साथ ले कर जुहू के समुद्र-तट पर जा पहुंचा। कौशलकिशोर 'चट मँगनी पट ब्याह' में विश्वास करता था। उसे अवसर ने इतनी बार धोखा दिया था कि उसने समय आने पर अधिक प्रतीक्षा करना छोड़ दिया था। अनुभव ने उसे सिखा दिया था कि अवसर केवल एक बार आता है। इसीलिये उसने आज ही जुहू तट पर सब प्रबन्ध कर दिया। उन लोगों की अनुपस्थिति में कामिनी के गहनों के लिये कमरे की और उसके सामान की पूरी तलाशी ली जा चुकी थी। गहने और रुपयों का वहाँ नामोनिशान न मिलने के कारण कौशलकिशोर को विश्वास हो गया कि सारी पूंजी कामिनी के वैनिटी-बैग में है जो आधुनिक फैशन के अनुसार काफी बड़ा और देखने में भी भारी प्रतीत होता था।

जुहू तट पर समुद्र की लहरों के उतार-चढ़ाव का अपना एक विशिष्ट सौन्दर्य है। प्रकृति का स्वरूप मुखरित होकर उसके गर्जन को एक लय में परिणत कर देता है। स्वाभाविक है कि मनुष्य प्रकृति के सन्निकट आकर भौतिक अस्तित्व भूल जाय। कहते हैं कि माया-मोह का जाल कभी-कभी वहाँ स्वतः खंड-खंड होकर विखर जाता है।

कामिनी और चतुरसिंह भी अहं को विसरा कर प्रकृति के एक अंग मात्र वन कर रह गए। थके होने के कारण अन्य लोगों की भाँति वे लोग भी सैकत शैया की सेज पर विश्राम करने के लिए वैठ गये। कौशलकिशोर ने उनका ध्यान वँटाने के लिये पच्छिम की ओर दूर क्षितिज तक फैली विशाल जल-राशि को दिखा कर वार्ता प्रारम्भ कर दी।

उसने कहा—"भाई, अगर अपने धर्मशास्त्र सत्य हैं, तो मनुष्य के जीवन में एक-न-एक क्षण अवश्य आता है, जो उसे सफलता के सर्वोच्च शिखर पर वैठा देता है। इसी कारण मैं वम्बई आया, भाग्य आजमाने के लिये। जिस समय वह क्षण आयेगा, मैं अगर छोटे-से नाले के किनारे हुआ, तो उसके पार हो जाऊँगा और अगर नदी के किनारे होता तो नदी के पार हो जाता। मैंने सोचा कि समुद्र के किनारे पार उतरने का प्रयास क्यों न करो, जिसमें डूवो तो कम-से-कम जगज्जाल से छुटकारा तो मिल सके, अन्यथा पार हो तो संसार का समस्त वभव चरणों में लोटने लगे।"

केवल चतुर के ही नहीं, वल्कि कामिनी के हृदय में भी वैभव की लालसा जागृत हो उठी। कौशलकिशोर ने नाटकीय ढंग से निःश्वास लिया और साथ ही इन दोनों के मुँह से अन्तराल में छिपी निःश्वास निकल पड़ी। ये दोनों भी उसकी तरह से दूर क्षितिज तक फैले हुए अगाध समुद्र को एक ही छलाँग में पार करने की सुखद कल्पना में लीन हो गये।

तभी संकेत पाकर कौशलकिशोर के साथी कामिनी के वगल में रखे हुए वैनिटी-पर्स को ऐसे क्षण ले उड़े कि उन दोनों को उसका किंचित

आभास न हुआ।

कौशलकिशोर ने जब समझ लिया कि उसके साथी खतरे की परिधि के पार निकल गये हैं तो उसने कलाई में बँधी हुई घड़ी को देखा। साथ ही घड़ी उनकी ओर बढ़ाता हुआ बोला—"बातों में समय का ध्यान ही न रहा। संध्या बीत चली है। अगर जल्दी न चलेंगे तो होटल पहुँचने में बहुत रात हो जायगी।"

चतुरसिंह उठकर खड़ा हो गया। उसे उठता देखकर कामिनी भी उठ खड़ी हुई। अभ्यास न होने के कारण वैनिटी-पर्स को सदा हाथ में रखना उसका स्वभाव न बन पाया था। अतः उसे ध्यान ही न आया कि वैनिटी-पर्स गायब हो गया है।

कौशलकिशोर आश्चर्य के साथ सोच रहा था कि लड़की क्या है, भोलेपन की सीमा है।

टैक्सी चली जा रही थी। कौशलकिशोर का अनुमान था कि उठने के साथ ही हंगामा मच जायगा। सदैव ऐसा ही होता भी था और वह उसके लिये प्रस्तुत भी था। किन्तु घटना के इस आकस्मिक मोड़ के लिये वह प्रस्तुत न था। रास्ते में उसे ध्यान आया कि होटल के समक्ष टैक्सी रुकते ही किराया देने की होड़ आरम्भ होगी और उस समय वैनिटी-पर्स का गायब होने का पता चलते ही यह दोनों धरती सर पर उठा लेंगे। अब वह चाहता था कि कमरे में पहुँचकर भी इनको रुपयों की आवश्यकता प्रतीत न हो जिससे इस ओर ध्यान ही न जाय और दूसरे दिन ध्यान आने पर यही समझें कि होटल से गायब हो गया है। इस प्रकार उनका सीधा सम्पर्क इस घटना से स्थापित न हो सकेगा।

पुलिस की दृष्टि से भी बचे रहना सम्भव हो सकेगा और कामिनी को भी हस्तगत करने की राह खुली रह जायगी।

अतः उसने होटल पहुँचते ही टैक्सी ड्राइवर को रुकने का आदेश देते हुए कहा—"सरदार जी, थोड़ी देर रुक जाइए। मैं ज़रा कपड़े बदल लूँ तो कोनाट चलूँगा।

इस प्रकार किराया देने का प्रश्न ही न उठा और सब उतर कर अपने कमरों में जा,पहुँचे। चतुरसिंह ने कमरे का द्वार खोल दिया। कामिनी के अन्दर जाते ही वह कौशलकिशोर के द्वार पर जा पहुँचा और बोला—"वापसी कब तक होगी। तुम्हारे बिना शाम अधूरी रह जायगी।"

"ऐसी बात है तो मैं नहीं जाता।"

उसी क्षण बेयरे को बुलाने के लिये कॉल बेल बटन दबा दिया। बेयरे के आते ही कौशलकिशोर ने पर्स में से दस-दस के दो नोट टैक्सी को विदा करने के लिये दे दिये और साथ में बोतल का प्रबन्ध करने का आदेश भी दिया।

इस भांति चतुरसिंह और कामिनी को उस रात्रि अपनी हानि का ज्ञान न हुआ।

गुलाब ने कल्लू को देखा। उसे देखते ही वह मन-ही-मन किशन का आभार स्वीकार करने लगी। कल्लू और किशन के रहने का प्रबन्ध रमेसर ने अन्य नौकरों के क्वाटरों से ज़रा दूर पर बने हुए गैराज और ड्राइवर के आवास-स्थान में कर दिया था। कल्लू का कमरा गैराज पर था पर वस्तुतः उसका अधिकतर समय किशन के कमरे में ही व्यतीत होता था। वह स्वयं गुलाब से परिचय प्राप्त होते ही उसके ऊपर स्वतः आसक्त हो गया था।

किशन ने परिचय कराने के पूर्व कल्लू को सम्पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान कराते हुए बतला दिया था कि उसकी साली गुलाब ही वह लड़की है जिससे उस रात्रि को वह उसकी भेंट कराने वाला था।

रमेसर से सलाह करने के पश्चात् कल्लू ने गुलाब को पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया।

हवेली के नीरस वातावरण में गुलाब और चमेली के आगमन ने शृंगार घोल दिया। पिछाड़े का सूना नीरव आंगण इन दोनों की पायल के छोटे-छोटे घुँघरुओं से गुंजरित हो उठा।

कल्लू की देख-रेख में प्रबन्ध का स्वरूप कुछ बदल गया। उसने प्रत्येक स्रोत से आय बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। जिस दिशा की ओर कभी किसी ने ध्यान भी न दिया था। उससे एक पैसे की आय का भी आभास होते ही वह उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता।

फलतः गाँव वालों के कष्ट बढ़ चले। लोगों ने जाकर गजेन्द्र से शिकायत करना प्रारम्भ किया। परन्तु उसे तो दूसरों को कष्ट और दुःख में पड़ते देख कर सांत्वना मिलती थी और चूंकि सभी कार्य क़ानून और न्याय के अन्तर्गत होते थे, इसलिये उसका निर्णय सदैव इन्हीं लोगों के पक्ष में होता था।

चतुरसिंह का पता लगाने के लिये कल्लू तरह-तरह के उपाय सोचता रहा। सूत्रों के अभाव में वह अन्धकार में इधर-उधर हाथ-पाँव फेंकता, परन्तु प्रत्येक दिशा में उसे निराशा ही हाथ आती।

तभी संयोग एक घटना का रूप धारण कर उपस्थित हो गया।

बंशी की पत्नी कमला की जमानत मंजूर हो गयी। भांखियों के सरपंच ने बहुत चेष्टा की, परन्तु दो हजार का प्रबन्ध वह न कर सका। पंचायत की राय से सरपंच ठाकुर गजेन्द्र बहादुर के समक्ष जा उपस्थित हुआ। कमला के बारे में सब कुछ सुनकर भी उसके हृदय में दया न उपजी। उसने सोचा कि कमला को जमानत पर छुड़ा देने के पश्चात् वियोग की अग्नि में जलने वाले की वृद्धि ही होगी। उसका मन कमला को तड़पता देखने के लिये आतुर हो गया।

अपने मनोभावों को मन में छिपा कर उसने कल्लू और मोहन को मामला सौंप दिया। उसे विश्वास था कि ये दोनों कर्त्तव्य होने के नाते गाँव की पूर्ण प्रतिष्ठा बनाने के लिये सरपंच की जमानत का खण्डन कर देने के लिये अनुरोध करेंगे।

ऐसा ही हुआ भी। दूसरे ही दिन फ़तेहपुर जा कर रमेसर कचहरी की कार्यवाही निपटा कर कमला को जमानत पर छुड़ा लाया। रास्ते में ही रो-रोकर कमला ने अपनी दुर्दशा की दुःख-कथा रमेसर को सुना दी। साथ ही उसने प्रार्थना की कि वह उसे गाँव न ले जाकर किसी ऐसी जगह चला जाने दे, जहाँ उसको कोई भी न जानता हो, जिससे उसके पति का कलंक उसे मरने के लिये विवश न कर सके।

रमेसर ने उसे समझाया कि थाने में जो कुछ हुआ है उसका आभास तो किसी को है नहीं, फिर घबराने की क्या बात है। परन्तु कमला का तर्क था कि उसे तो छिपाया जा सकता है परन्तु गाँव में सभी लोग उसे वंशी के पाप के लिये दुत्कारेंगे। पर रमेसर समझा-बुझा कर कमला को हरिपुर ले आने में सफल हो गया। इस भाँति हवेली में रहने वालों में एक व्यक्ति की और वृद्धि हो गयी।

चतुरसिंह के सम्पर्क में आने के साथ ही, जीप के ड्राइवर बाबूराम को, चमेली से मिलने का सौभाग्य, किशन की कृपा से, हो चुका था। चमेली ने एक रात्रि के सहवास में बाबूराम के मन में मोह उत्पन्न कर दिया था।

चतुरसिंह द्वारा कामिनी का अपहरण और उसकी विदा ने बाबूराम के मन में चमेली को अपना बना लेने की इच्छा जागृत कर दी। बम्बई से लौट कर जब वह उन्नाव पहुँचा, तो उसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और एक रात के सम्बन्ध को घनिष्ठता में परिणित करने की इच्छा से वह कल्याणपुर के लिये चल पड़ा। कल्याणपुर में पहुँच कर वह हौली में किशन की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु जब काफ़ी समय बीत गया और किशन न आया तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अधिक प्रतीक्षा न कर ठेकेदार से किशन के सम्बन्ध में पूछा। किशन हरिपुर की बड़ी हवेली में रहता है यह जान कर उसे सन्तोष हुआ और आशा का टूटता हुआ बाँध टूटकर बिखरने से बच गया।

रात्रि के प्रथम चरण का आगमन हो चुका था; परन्तु उसकी ओर

ध्यान न दे वह रक्शे पर सवार हो हरिपुर की हवेली के द्वार पर जा पहुँचा । पहरेदार ने तुरन्त किशन के पास सूचना भिजवा दी । किशन उस समय कामिनी के पिता ठाकुर वीरबहादुरसिंह के यहाँ गये हुए थे । कल्लू ने आगन्तुक को किशन का मित्र समझ कर अपने क्वार्टर में ही बुला लिया ।

कल्लू और रमेसर कमला के सम्बन्ध में बात कर रहे थे । बाबूराम ने आकर नमस्कार किया और समीप ही पड़ी हुई चारपाई पर बैठ कर किशन की प्रतीक्षा करने लगा ।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अनजान के सम्बन्ध में सब कुछ ज्ञात कर लेना चाहता है । परिचय के प्रसंग में पण्डित तोताराम का नाम सुन कर कल्लू चौंक पड़ा ।

पण्डित तोताराम उसके गाँव के जमींदार थे । कल्लू को इस दशा में पहुँचाने का श्रेय उन्हीं को था । पहले तो उसके मन में प्रतिशोध की भावना ने जन्म ले लिया, परन्तु यह ज्ञात होते ही कि पण्डितजी के वंश का प्रत्येक प्राणी वर्षों पहले काल की भेंट चढ़ गये, उसे बड़ा सन्तोष हुआ । साथ ही यह जान कर कि बाबूराम उनके दूर के रिश्ते का नवासा है जिसकी जमीन जायदाद अनाथ होने के उपरान्त उन्होंने हड़प ली थी, एक दया का भाव कल्लू के मन में प्रस्फुटित हो गया ।

रमेसर चुपचाप बैठा इन दोनों की बातें सुन रहा था; पर उसके ध्यान में कमला का भविष्य घूम रहा था । यह सुन कर कि बाबूराम अविवाहित है, रमेसर ने तुरन्त ही स्वभाव के अनुसार मन-ही-मन जोड़-तोड़ बैठाना प्रारम्भ कर दिया । उसने सोचा कि कमला का विवाह इसके साथ हो जाय, तो अति उत्तम हो । परन्तु उस समय चर्चा का उचित मार्ग न देख कर वह चुप रहा और उसने निश्चय किया कि किशन के माध्यम से इस सम्बन्ध में बातें करना उचित होगा ।

तभी किशन भी आ पहुँचा । बाबूराम को देखते ही उसका मन आशंका से भर गया । परन्तु मन के भाव को मन में ही छिपाते हुए उसने

उसका स्वागत किया।

एकान्त होते ही बाबूराम ने किशन के सम्मुख चमेली को सदैव के लिये अपनाने की अपनी इच्छा प्रकट कर दी। उसे क्या मालूम था कि जिसको अपना बनाने के लिये वह आया है, वह चमेली इस व्यक्ति की पत्नी है।

किशन ने बाबूराम को टरका देना चाहा। उसने स्पष्ट कह दिया कि वह दलाली के घृणित मार्ग को छोड़ चुका है और चमेली भी किसी व्यक्ति के साथ भाग गयी है।

निराशा से भरा हुआ व्यथित हृदय ले कर जब बाबूराम लौटने लगा तो रमेसर ने अपनी योजना को मूर्त्तमान बनाने के लिये उससे वहीं ठहरने का अनुरोध किया। बाबूराम के निकट रात्रि व्यतीत करने का कोई अन्य साधन न था, अतः उसने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया।

बाहर की दालान में उसके लिये चारपाई बिछा दी गयी और भोजनोपरान्त जब वह सोने के लिये चला गया तो रमेसर ने अपनी इच्छा कल्लू और किशन के सम्मुख रख दी।

उसके प्रस्ताव को दोनों ने पसन्द किया। कल्लू ने सलाह दी कि इस विषय में कमला की इच्छा और स्वीकृति आवश्यक है, इस कारण सर्वप्रथम उसकी इच्छा का पता लगा लेना उचित होगा। अतः गुलाब को यह भार सौंप दिया गया।

कमला ने पहले तो पुरुष जाति के प्रति अपनी घृणा प्रकट की, फिर पंचायत द्वारा वंशी से छुटकारा पाने की इच्छा व्यक्त की। गुलाब ने उसको समझा-बुझा कर इस बात के लिये तैयार कर लिया कि वह बाबूराम से भेंट करने के उपरान्त अपना निर्णय दे। साथ ही यह भी समझा दिया कि नारी के लिये संसार में अकेला रहना खतरे से खाली नहीं है। इस सम्बन्ध में उसने कमला के सम्मुख वे सभी तर्क रख दिये जो किशन ने पेश किये थे। कमला ने केवल इतना कहा कि इस समय उसकी मनोदशा ऐसी नहीं है कि वह कोई निर्णय कर सके। अन्ततोगत्वा इस सम्बन्ध में

गुलाब ने निश्चय कर दिया कि रमेसर और कल्लू जो निर्णय करें वह कमला को स्वीकार कर लेना चाहिये। कमला ने इस निश्चय को स्वीकृति दे दी।

कल्लू खाट पर लेटा हुआ किशन के सम्बन्ध में विचार कर रहा था। उसे उसकी कही हुई एक-एक बात याद आ रही थी। उसने दो और दो को जोड़ कर चार बनाने की चेष्टा की। किशन की इस बात में वह चतुरसिंह का सम्बन्ध यह जोड़ रहा था कि अभी कुछ दिन पहले ही वह इस इलाके में था और यहाँ से जीप द्वारा बहुत जगह गया था। कहीं भी शान्ति न पाकर वह पुनः इस स्थल पर आया है।

किशन ने कल्लू से बाबूराम के आने का अभिप्राय बता दिया था। कल्लू को इसमें कामिनी के अपहरण की झलक दिखाई दे रही थी।

अतः उसने सोचा कि इस व्यक्ति को बातों में उलझा कर इस बात का पता लगाने की चेष्टा करनी चाहिये कि यह चतुरसिंह को जानता है या नहीं।

वह तुरन्त उठा और रमेसर को जगा कर बोला—"रमेसर, इस बाबूराम पर मुझे शक हो रहा है। कोई प्रमाण तो है नहीं। किन्तु कामिनी के गायब होने के दिन वह इस इलाके में था और आज फिर इस इलाके में आया है। शक होने का कारण। उसके आने का भेद है। उस समय कामिनी गायब हुई या उसका अपहरण हुआ और इस बार चमेली गायब होती। उसने तो किशन से स्पष्ट स्वीकार कर ही लिया है कि वह उसका अपहरण करने की नीयत से आया है।"

रमेसर ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया। परन्तु दोनों के सम्मुख प्रश्न था कि किस प्रकार बाबूराम के भेद का पता लगाया जाय।

कई योजनायें दोनों ने बनाईं, परन्तु सभी में कुछ-न-कुछ दोष दृष्टिगत

था। इसी उधेड़-बुन में सुबह हो गयी।

नित्य की भाँति आज भी गुलाब चाय लेकर उपस्थित हुई और उसने आते ही कमला का निर्णय इन दोनों के सम्मुख रख दिया।

एकाएक कल्लू को राह सूझ गयी। उसने गुलाब से कहा कि वह तुरन्त कमला को भेज दे।

कमला ने रमेसर के कमरे में प्रवेश किया, तो कल्लू ने उसे बैठने का संकेत किया और उसने स्वयं उठकर द्वार बन्द कर दिया।

द्वार बन्द करने के उपरान्त वह वापस लौट कर कमला को सम्बोधन करता हुआ बोला—"बिटिया आज हम लोग एक ऐसी विपत्ति में पड़ गये हैं, जिससे तुम्हारी सहायता के बिना निकलना कठिन है।"

कमला ने आशंकित हृदय से प्रश्न किया—"ऐसी कौन-सी विपत्ति है? कुछ भी हो, यों मैं उसका भेद जानना नहीं चाहती। मैं केवल इतना जानना चाहती हूँ कि मैं किस प्रकार सहायता कर सकती हूँ।"

"देखो बेटी, यह बाबूराम है न...?"

"मैं बड़ी दीदी से कह चुकी हूँ कि आप लोग जो भी निर्णय करेंगे, मुझे स्वीकार होगा।"

"यह बात नहीं है। विवाह के विषय में तुमको पूर्ण स्वतन्त्रता है।"

"फिर?"

"असल बात यह है कि तुमको पता लगाना है कि बाबूराम चतुरसिंह को जानता है या नहीं। अगर जानता है, तो वह इस समय कहाँ है? कामिनी के बारे में भी उसे कुछ मालूम है या नहीं।"

"काका, मैं उन्हें जानती नहीं हूँ। फिर भला वे एक अनजान को अपना भेद क्यों बतायेंगे?"

"इसी में तो तुम्हारी चतुराई है। देखो, अभी वह तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानता। मैं किशन से कहूँगा कि वह चुपचाप रहस्यमय ढंग से उससे तुम्हारी भेंट करा दे। तुम उसको अपने प्रेम में फँसाने की चेष्टा करना, बस। जब वह तुम्हारी ओर बढ़ने लगे, तो तुम स्वयं पीछे हट

जाना और कहना कि गांव में यह सम्भव नहीं। तुम स्वयं भगा ले जाने के लिये जब कहोगी, तो अगर उसका सम्बन्ध कामिनी की घटना से होगा, तो वह अवश्य ही स्वीकार कर लेगा। फिर मैं सब सम्हाल लूंगा।"

योजनानुसार दोपहर को किशन ने बाबूराम से चर्चा छेड़ी और कहा कि चमेली से भी अधिक सुन्दर एक लड़की है। अगर वह कहे तो उससे भेंट कराने का प्रबन्ध किया जाय।

बाबूराम का प्रेम, विवाह और गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में अपना विचार था। सान्निध्य और सामीप्य को वह प्रेम का अंग मानता था। जिससे दूर रहकर जिया जा सके, उससे प्रेम कैसा? जीवन में ऐसे अनेक अवसर आये थे, जब उसे नारी का सामीप्य प्राप्त हुआ था। किन्तु उन सबको वह वासना की संज्ञा देता था; क्योंकि उस मिलन में स्थायित्व नहीं था। वासना से ऊपर उठ कर वह अब अपने तन की प्यास के साथ आत्मा की प्यास बुझाने का भी प्रबन्ध चाहता था। दर-दर फिरने के बजाय वह एक ठिकाना बना लेने का इच्छुक था। सभ्य समाज से सम्पर्क रखने के कारण वह अपना घर बसाकर जीवन-सौख्य के उपभोग के लिये लालायित था। वह नौकरी छोड़कर इसी कारण चमेली के पास आया था। किशन से दूसरी लड़की के सम्बन्ध में सुन कर पहले तो उसके निराश मन ने इनकार कर देने की सलाह दी। परन्तु उसी क्षण सोचा कि मिलने के पश्चात् ही निर्णय करना उचित होगा; क्योंकि 'ना जाने किस भेष में नारायण मिल जावें' के अनुसार सम्भव है। इस मिलन में ही उसका सुख-सौभाग्य छिपा हो।

अतः उसने किशन के प्रश्न के उत्तर में कह दिया—"मैं तो विवाह करके जीवन बिताना चाहता हूँ। तुम उचित समझो, तो मिलने का प्रबन्ध करो।"

किशन ने कमला की प्रशंसा कर के बाबूराम के मन में जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। उसे विश्वास हो गया कि उस लड़की से बढ़कर दूसरी लड़की संसार में हो ही नहीं सकती, जो उसकी पत्नी बन सके।

१५

दो घंटे के उपरान्त गजेन्द्र के कमरे में सब लोग जमा थे। रमेसर, कल्लू, किशन के अतिरिक्त बाबूराम भी उपस्थित था।

कमला से भेंट होते ही बाबूराम अपना सन्तुलन खो बैठा। कमला से उसने विवाह के लिये कहा और उसने एक योजना के अनुसार भाग चलने का प्रस्ताव रख दिया। वार्ता के सिलसिले में बाबूराम ने कहा कि वह उसे लेकर बम्बई चला जायगा, जहाँ उसे नौकरी भी तुरन्त मिल जायगी और किसी को पता भी न लगेगा। कमला ने शंका प्रकट की और पकड़े जाने का भय और उसका परिणाम भी सामने रखा। उस पर बाबूराम ने कामिनी और चतुरसिंह का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया और कहा कि यह उसी घटना की पुनरावृत्ति मात्र होगी।

अब कमला का स्वार्थ-सिद्ध हो गया था। वह उससे पुनः मिलने का आश्वासन दे कर लौट आयी। रमेसर और कल्लू ने निश्चय किया कि कोई भी क़दम उठाने के पहले गजेन्द्र से सलाह ले लेना उचित होगा। इसी कारण सब वहाँ एकत्र हुए थे।

गजेन्द्र के सम्मुख बाबूराम को सब स्वीकार करना पड़ा। सम्पूर्ण विवरण सुन कर उसे बड़ा दुःख था। रह-रह कर उसे चतुरसिंह पर क्रोध आता था। परन्तु ठाकुर वीरबहादुरसिंह के योगदान का ज्ञान बाबूराम को न था। इस कारण सबने समझा कि एक मात्र चतुरसिंह ही इस घटना

का जिम्मेदार है।

गजेन्द्र की समझ में कामिनी का व्यवहार नहीं आ रहा था। उसे शंका थी कि अगर कामिनी अपनी स्वेच्छा से नहीं गयी थी, तो उसने लौटने की चेष्टा क्यों नहीं की? बाबूराम के कथनानुसार वह बन्धन में भी न थी। स्वयं अपनी स्वेच्छा से वह उन्नाव से बम्बई गयी है। राह में सैकड़ों ऐसे अवसर आये होंगे, जब वह लौटना चाहती या चतुरसिंह से छुटकारा पाना चाहती, तो पा सकती थी।

चतुरसिंह के प्रति क्रोध होते हुए भी वह प्रतिशोध न ले पा रहा था। उसका वह वचन जो उसने अपने पिता को दिया था कि भविष्य में वह कभी भी चतुरसिंह के प्रति प्रतिशोध की भावना को अपने हृदय में जन्म न लेने देगा, अंकुश बन कर उसको विवश कर रहा था।

कामिनी के सम्बन्ध में उसने सोचा कि अगर वह उसके साथ सुखी है, तो मैं उसके सुख में क्यों बाधा डालूँ?

एक प्रश्न और भी था कि इतने समय में उन दोनों में प्रणय-सम्बन्ध अवश्य ही स्थापित हो गया होगा और इस कारण उसको अपनाना सम्भव नहीं है। जब उसे अपनाया नहीं जा सकता, तो मैं क्यों उसके सुख को नष्ट करूँ?

मैं सुखी न हो सका तो क्या मैं उसके सुख में भी आग लगा दूँ? उसके प्रति मेरा प्रेम न हो पर यह तो कुछ और ही होगा।

अतः उसने कहा—"देखो मल्लू, किसी को कानोंकान इस बात की भनक न पड़े। इस भेद को गुप्त ही रहने देने में भलाई है। बस कुछ ऐसा प्रबन्ध करो कि उन दोनों का समाचार मिलता रहे। जब वे लोग आना चाहें तो कोई बाधा भी हमारी ओर से न हो। किसी के सुख में व्यवधान उपस्थित करना अशोभनीय होगा।"

मल्लू ने कहा—"यह सब बातें मनुष्यता की हैं। आज के युग में दोषी को सजा न देना पाप है।"

"यह सब ठीक है। परन्तु मैं सजा देने वाला कौन होता हूँ? भगवान

स्वयं ही दंड देगा।"

अन्त में निश्चय हुआ कि बाबूराम कमला से विवाह करने के उपरान्त उसके साथ बम्बई चला जाय और उन लोगों पर दृष्टि रक्खे। प्रत्येक गतिविधि की सूचना देता रहे। बीच-बीच में कल्लू भी हो आया करेगा।

गजेन्द्र के निर्णय से सहमत न होने पर भी कोई विद्रोह न कर सका।

कौशलकिशोर के साथ स्टूडियो जाने का प्रोग्राम चतुरसिंह ने रात्रि में ही तय कर लिया था। नाश्ता करने के उपरान्त जब वह कपड़े पहन चुका, तो उसने कामिनी से कुछ रुपया माँगा। उस समय कामिनी को अपने वैनिटी-बैग का ध्यान हो आया।

इधर-उधर देखने के पश्चात् उनको तुरन्त विश्वास हो गया कि वैनिटी बैग ग़ायब है। चतुरसिंह ने कामिनी को भविष्य में सावधान रहने का आदेश दिया। उस की चतुराई से उसे भिखारी बनने से बचा लिया। जिस समय उन्नाव से वह चलने लगा था उसी समय उसने कामिनी के मूल्यवान आभूषणों और अधिकांश रुपयों को यात्रा में चोरी और खो जाने के भय से कामिनी की सहायता से भगवानदीन की मैली, पुरानी तकिया में रख कर सिल दिया था। यही कारण था कि कौशलकिशोर के चतुर सहायक धोखा खा गये।

चतुरसिंह ने नीचे नौकरों के लिये बने हुए कमरे में जा कर भगवानदीन को अपना सामान ऊपर लाने का आदेश दिया। साथ ही उसे ऊपर ही रहने के लिये आज्ञा दी। पहले तो भगवानदीन को कुछ आश्चर्य हुआ फिर यह सोच कर कि इस कमरे का किराया फ़जूल दिया जा रहा है, वह चुप रहा और तुरन्त अपना बिस्तर लपेट कर उसी के साथ ऊपर आ गया। कोने में बिस्तर रखवा कर चतुरसिंह ने उसे डाकखाने से टिकट और लिफ़ाफ़ा आदि लाने के लिये भेज दिया।

भगवानदीन के जाने के उपरान्त दोनों ने उसकी तकिया से सब सामान निकाल लिया। चतुरसिंह की पैनी दृष्टि से कमरे की तलाशी का भेद छिपा न था। उसने तुरन्त ही बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ कर समझ लिया कि वैनिटी-बैग को जान बूझ कर गायब किया गया है। जब कि कामिनी का विचार था कि वह सम्भवतः टैक्सी में रह गया है।

वैनिटी-बैग में उसका पर्स था, जिसमें दो हज़ार रुपये के लगभग थे। कामिनी को नारी-स्वभाव के कारण हानि का बहुत दुःख था, किन्तु चतुरसिंह का कहना था कि भाग्य अच्छा था, जो केवल इतना ही नुकसान हुआ।

वैसे उसका रुपया लखनऊ में दूसरे नाम से जमा था। तकिये में केवल दस हज़ार रुपये थे।

विचार करने पर उसकी समझ में केवल यही आया कि सम्भव है यह कृत्य मामूली चोरी के अतिरिक्त कुछ न हो। अपना भेद छिपाये रखने के लिये उसने इस घटना को तूल देना उचित न समझा।

अब उसके सम्मुख गहनों की सुरक्षा का प्रश्न था। आभूषणों का वह बैंक के लॉकर में रखना चाहता था किन्तु साथ ही वह यह भी सोचता था कि इसका पता किसी अन्य व्यक्ति को न चले। उसे ध्यान आया कि उसने केवल कोशलकिशोर से कहा था उसके पास रुपया और गहने हैं। वैनिटी-बैग भी उस समय गायब हुआ, जब वह साथ था। कमरे की तलाशी भी उस समय हुई, जब वह कोशलकिशोर को अपनी आर्थिक स्थिति से अवगत कर चुका था। अतः उसने सोचा कि कोशलकिशोर को किसी भाँति इस बात की भनक न लगे कि गहने आदि उसके पास हैं।

कमरे में दरी बिछी थी और उसके ऊपर बीच में कालीन। गोलमेज कालीन के ऊपर रखा हुआ था। उसने सोफ़े की एक कुर्सी उठा कर उसके नीचे की कालीन उलट कर गहनों को बिछा दिया और सोफ़े को पूर्ववत् रख दिया। वह अभी कामिनी को समझा ही रहा था कि वह सावधान रहे। इतने में दरवाज़े पर खट-खट का शब्द हुआ। वह तुरन्त

सोफ़े पर बैठ गया और सामान्य भाव से आगन्तुक से आने के लिये कह कर कामिनी को संकेत द्वारा द्वार खोल देने को आदेश कर दिया।

कौशलकिशोर ने प्रवेश करते हुए कहा—"तुम तो बैठे गप्प लड़ा रहे हो। देर हो रही है इसका भी कुछ ध्यान है।"

चतुरसिंह ने बैठने का अनुरोध करते हुए कहा—"बस मैं चलता हूँ। ज़रा भगवानदीन को डाकख़ाने तक भेजा है। अभी आता ही होगा।"

अचानक एक विचार उसके मस्तिष्क में कौंध गया कि वैनिटी-बैग की चर्चा इससे न करना अस्वाभाविक होगा।

अतः उसने कहा—"असल बात यह है कि पिता जी को पत्र लिख कर कुछ रुपये मंगवाने हैं। तुम तो समझते ही हो कि यात्रा में अधिक रुपये लेकर तो मनुष्य चलता नहीं और कल शायद यह अपना पर्स टैक्सी में छोड़ आयीं। कुछ थोड़े-से रुपये मेरी जेब में थे, वही बच रहे हैं। इसी कारण मैंने भगवानदीन को भी यहीं बुला लिया है। ख़र्च कम करना पड़ेगा। सोचता हूँ कि कोई सस्ता होटल ढूंढ़ लूँ, या फिर कोई ढंग का मकान ही मिल जाय, तो काम चले। क्योंकि जब तुम्हारे साथ काम करना है तो रहने का प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा।"

कौशलकिशोर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"यह सब तो ठीक है। परन्तु पहले तुम्हें पुलिस में सूचना तो देनी ही चाहिये। सम्भव है कि टैक्सी ड्राइवर ने थाने में खोयी हुई वस्तुओं के अन्तर्गत जमा कर दिया हो। वह टैक्सी ड्राइवर का पता लगा कर पर्स वापस दिलाने की चेष्टा तो कर ही सकती है।"

कौशलकिशोर मन-ही-मन सोच रहा था कि गहने रुपये इनके पास यहाँ पर नहीं हैं। उसको सूचना मिल चुकी थी कि पर्स में कितना माल निकला था। उसने सोचा कि पार्टी मालदार है क्योंकि इतनी हानि का इनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

चतुरसिंह ने कहा—"परदेस का मामला है। कौन पुलिस थाने में

दौड़ता फिरे ? जो होना था, सो हो गया। अब रुपये तो मिलने से रहे।

कौशलकिशोर ने आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए कहा—"रुपयों की चिन्ता मत करो। आवश्यकता पड़ने पर मुझसे माँग लेना। फिर जब तुम्हारा रुपया आ जाय, तो मुझे वापस कर देना।"

चतुरसिंह ने कहा—"धन्यवाद भाई। अनजान परदेसी के साथ इतना कहना ही तुम्हारी महानता है। पर मेरे पास अभी रुपया है और आशा है कि एकाध दिन में रुपया आ भी जायगा। पत्र तो लिख ही देंगे; आज ही तार भी दे देंगे या ट्रंक काल कर लिया जायगा। तुम चिन्ता न करो।"

दोनों खिलाड़ी थे। दोनों एक-दूसरे से झूठ बोल कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे।

भगवानदीन के वापस आते ही दोनों उठकर स्टूडियो जाने के लिये चल दिये।

आने को सुखदा हरिपुर से चली आयी। परन्तु अपनी सुख-शान्ति वह वहीं छोड़ आयी थी। किसी काम में उसका मन नहीं लगता था। उसकी मनःस्थिति का पता घर में सबको था। शोभा ने अपने माता-पिता से हरिपुर की घटना का विवरण सुना कर अपनी इच्छा प्रकट कर दी थी। वे लोग भी मजिस्ट्रेट से विवाह करने के पक्ष में थे; किन्तु सुखदा ने लज्जा त्याग कर साहसपूर्वक पिता के सम्मुख अपने मनोभाव रख दिये।

उसके पिता निरंजनसिंह आधुनिक विचारों के पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। लड़की को स्वतन्त्रता देने के पक्ष में होते हुए भी अपनी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए वे चाहते थे कि इस अवसर को हाथ से न निकलने दिया

जाय। किन्तु सुखदा की स्पष्ट स्वीकारोक्ति में उन्हें सुखदा के पक्ष में फ़ैसला देने के लिये विवश कर दिया।

सुखदा की मनोदशा कुछ विचित्र थी। गजेन्द्र से भेंट होने के पहले उसकी जितनी मान्यताएँ थीं; सब बदल गयी थीं। विवाह को अब वह जीवन का आवश्यक अंग मानने लगी थी। उसके अन्दर सोई हुई नारी जाग गयी थी। खाने-पीने के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी थी। इसके अतिरिक्त तन की प्यास उसको हर समय तपाने लगी थी।

जीवन में इस प्रकार का अनुभव उसके लिये सर्वथा नवीन था। सारी रात यों ही बिस्तर पर करवटें बदलते बीत जातीं। मनोमंथन के उद्वेलन से घबरा कर वह सोने की चेष्टा करती किन्तु नींद उसका साथ देने से इनकार कर देती।

अक्सर उसका नारीत्व उसे गजेन्द्र के सम्मुख घुटने टेक देने के लिये विवश करने लगता, किन्तु उसकी आत्मा प्रेम की पवित्रता को वासना के पंक से अलग रखने की सलाह देती। बुद्धि का तर्क होता कि विवाह भी तो तृप्ति का ही एक साधन मात्र है। कभी उसका हृदय चीख-चीखकर उससे प्रेम करने के लिये वासना की आहुति अर्पित करने को तत्पर हो उठता। और कभी बालविधवा का आदर्श उपस्थित करके बोल उठता कि वह भी नारी ही होती हैं जो केवल स्वामी-स्मृति के आधार पर ही सारा जीवन बिता देती हैं।

सुखदा की शिक्षा, संस्कृति एवं सुविचारों ने, उसके हृदय में, कूट-कूट कर भरे हुए पुरातन आदर्शों की रक्षा के लिये सब कुछ सहन करने की शक्ति दी थी। उसने वासना की अग्नि को आदर्श के महासागर में डुबो कर शीतल कर दिया।

वासनात्मक प्रेम की इस अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् उसने अपने हृदय में प्रेम दीपक को अपने रक्त-से जलाये रखा।

अपनी एक अन्तरंग सहेली लिली की सहायता से रानीखेत में एक कान्वेंट में अध्यापिका का पद प्राप्त हो गया। लिली भी वहीं पर अध्या-

पिता थी। सम्पूर्ण कार्य इतनी सावधानी से हुआ कि किसी को कानोंकान इसकी ख़बर न लगी।

पर एक रात्रि को सुनदा चुपचाप बिना किसी को बतलाये घर से चल दी। जाने के पूर्व उसने अपने पिता के नाम एक पत्र लिखकर उनके सिरहाने रख दिया, जिसमें उसने अपने जाने की सूचना तो दी थी, किन्तु उसमें गन्तव्य स्थान का कोई संकेत न था। उसने अनुरोध किया था कि वे उस पर विश्वास रक्खें और व्यर्थ ही उसका पता लगाने की चेष्टा न करें।

घर से प्रस्थान करने के पूर्व उसने पहले सोचा था कि वह इसी प्रकार का पत्र गजेन्द्र को भी लिख देगी। किन्तु फिर यह सोचकर कि उसका प्रेम एकाकी है, उसने उसको भी सूचना देना उचित न समझा।

कमला की प्रार्थना पर धोबियों की पंचायत ने उसे बंदी के बन्धन से मुक्त कर दिया। विधिपूर्वक कल्लू ने कन्यादान दे कर उसे बाबूराम की पत्नी बना दिया।

विवाहोपरान्त ये दोनों पूर्व निश्चित योजना के अनुसार जब बम्बई के लिये प्रस्थान करने लगे उस समय गजेन्द्र ने कल्लू को उनके साथ जाने का आदेश दिया। उसके इस आदेश के पीछे दो भावनायें छिपी थीं। एक तो यह कि परदेस में इन दोनों को कष्ट न हो और दूसरी यह कि वह स्वयं अपनी आँख से चतुरसिंह और कामिनी के सम्बन्ध को देख ले।

बाबूराम के साथ जब कमला और कल्लू बम्बई पहुँचे तो उनकी समझ में न आया कि वे चतुरसिंह को किस प्रकार इसका परिचय दें। पहले तो कल्लू की सलाह लेकर उसने निश्चय किया कि ठहरने का प्रबन्ध कर के वह अकेला चतुरसिंह से मिलेगा। परन्तु बम्बई पहुँचने पर वहाँ की भीड़भाड़ से घबरा कर कल्लू ने समझाया कि सीधे चतुरसिंह के पास

चलना उचित रहेगा ।

बाबूराम ने शंका प्रकट करते हुए कहा—"एक साथ हम सब को देख कर उसके हृदय में कोई शंका न उत्पन्न हो जाय।"

कल्लू ने तर्क उपस्थित किया—"नहीं। तुम उसके साथ यहाँ आ चुके हो। अब जब नौकरी ढूंढ़ने आये हो तो पहले उससे मिलना स्वाभाविक ही होगा।"

"अच्छा, अगर उसने कमला को पहचान लिया तो?"

"वह तुम्हारी पत्नी के रूप में घूंघट निकाल कर रहेगी और मैं तुम्हारा ससुर हूँ। तो बस, उसको किसी प्रकार की शंका न होने पायेगी।"

बाबूराम भी कल्लू की राय से सहमत हो गया और वे लोग टैक्सी कर के चतुरसिंह के होटल जा पहुँचे।

भाग्य होता है या नहीं, इसको कल्लू नहीं जानता था। उसका विश्वास तो कर्म में था। वह भाग्य के अस्तित्व में रंचमात्र भी विश्वास न करता था। किन्तु जब वे लोग होटल पहुँचे, तो उसे मन-ही-मन भाग्य को धन्यवाद देना पड़ा। वह सोच रहा था कि जरा भी देर होने पर पंछी उड़ जाता। फिर पता लगाना दुसाध्य हो जाता।

चतुरसिंह ने कौशलकिशोर की सहायता से एक फ्लैट किराये पर ले लिया था। जिस समय इन लोगों की टैक्सी होटल के बाहरी प्रांगण में पहुँची उस समय उसका सामान टैक्सी में रक्खा जा चुका था। कामिनी टैक्सी में पीछे की सीट पर बैठ चुकी थी। भगवानदीन बगल में खड़ा हुआ था। चतुरसिंह होटल के बिल का पेमेन्ट कर के, दरबान की सलामी के उत्तर में, जेब से एक रूपये का नोट निकाल रहा था।

बाबूराम के झट से आगे बढ़ कर चतुरसिंह को प्रणाम किया और बताया कि वह उसी के सहारे यहाँ नौकरी ढूंढ़ने आया है। चतुरसिंह का उस पर सन्देह न करना स्वाभाविक था। अतएव उसने उसे अपने फ्लैट में चलने का आदेश दिया।

बाबूराम ने बताया कि प्रश्न केवल उसका ही नहीं है, क्योंकि उसके साथ उसकी पत्नी और उसका ससुर भी है।

जब से कामिनी का वैनिटी-बैग गायब हुआ था, चतुरसिंह चोरी के विरुद्ध सतर्क रहने लगा था। घटना की पुनरावृत्ति न होने पाये, इसलिये वह फ्लैट में रहने जा रहा था। इन लोगों के आने से उसने सोचा कि घर में जितने अधिक प्राणी होंगे, उतनी ही अधिक सुरक्षा की व्यवस्था रहेगी। अतः उसने बाबूराम से कहा कि वह सबको साथ लेकर वहीं आ जाय।

बाबूराम को अपने नये फ्लैट का पता बता कर और पीछे चले आने की बात कह कर चतुरसिंह अपनी टैक्सी में बैठ गया तो दोनों टैक्सी चल पड़ीं।

कल्लू ने एक हफ्ते में केवल इतना समझ पाया था कि इस कृत्य के लिये कोई एक व्यक्ति दोषी नहीं ठहराया जा सकता। चतुरसिंह और कामिनी पति-पत्नी के समान रहते थे। दोनों के व्यवहार में प्रेम का पुट था।

कमला भी कामिनी से मिलती थी, किन्तु उनके बीच में कभी हरिपुर की चर्चा नहीं हुई थी। कमला तो हरिपुर के बारे में कुछ कह ही नहीं सकती थी; क्योंकि बाबूराम ने उसको लखनऊ निवासी बताया था।

रहने की व्यवस्था हो जाने के पश्चात् बाबूराम ने नौकरी ढूंढ़ने की चेष्टा आरम्भ की, तो चतुरसिंह ने यह कह कर कि वह कार खरीदने वाला है, उसे नौकर रख लिया।

चतुरसिंह का अपना काम-काज कोमलकिशोर की साझेदारी में आरम्भ हो गया था। कोमलकिशोर कामिनी के आकर्षण में बहुत आगे बढ़ चुका था। उसकी समझ में ही न आ रहा था कि वह किस प्रकार उसे हस्तगत करे। बलपूर्वक अपनाने में उसे भय था कि इससे तो जीवन सुखी न होकर दुःख का आगार बन जायगा। जब-जब कामिनी का स्मरण आता, वह उसे अपने प्रेम के बल पर प्राप्त कर के ही हर्षित

सृष्टि गृहस्थी के सपने देखता। पर कामिनी के सौन्दर्य की स्निग्धता वासना का इतना स्फुरण न कर पाती थी कि उसकी प्राप्ति के कोई अवैध प्रयत्न कर बैठता। उसे पाने की केवल एक कामना जागृत होती थी सो भी पत्नी रूप में।

कल्लू ने बम्बई से लौट कर चतुरसिंह और कामिनी के पारस्परिक सम्बन्धों का चित्र गजेन्द्र के सम्मुख रख दिया। गजेन्द्र की कोमल भावना को एक आघात तो अवश्य पहुँचा किन्तु सुखदा का अवलम्ब प्राप्त होने की आशा ने उसके तप्त हृदय को शान्ति प्रदान की। इस समाचार के अन्तर्गत यह भी निहित था कि उन दोनों में किसी प्रकार की प्रेमलीला नहीं चल रही थी।

गजेन्द्र ने तुरन्त ही सुखदा को पत्र द्वारा सूचना दी। सम्पूर्ण विवरण पर प्रकाश डालने के साथ-साथ ही यह भी लिखा कि इस तथ्य की प्रामाणिकता अगर वह जानना ही चाहे, तो कामिनी से भेंट करके स्वयं उसका पता लगा सकती है।

परन्तु जब सुखदा का कोई उत्तर उसे न मिला तो वह अधीर हो उठा। अशान्त हृदय को जब कहीं भी सान्त्वना न मिली तो उसने एक दिन रमेसर से बातों-ही-बातों में इस बात की चर्चा कर दी कि अब वह अपने वादे के अनुसार सुखदा को इस घर में बुलाने का प्रबन्ध कर दे।

कल्लू जब बम्बई से वापस आया था, उसी दिन रमेसर ने शोभा और कुंवरसिंह को कामिनी का समाचार लिख दिया था। रमेसर को पूर्ण विश्वास था कि इस समाचार के मिलते ही सुखदा विवाह के लिये सहमत हो जायगी। शोभा का उत्तर भी उसे प्राप्त हो चुका था। पर वह अपनी व्यथा को गजेन्द्र से छिपाये हुआ था। वह सोचता था कि अगर मैं वस्तुस्थिति का मर्म उससे प्रकट कर दूंगा, तो उसे बड़ा दुःख

होगा। सम्भव है, वह उसे सहन न कर सके। वह जानता था एक-न-एक दिन ऐसा अवसर आयेगा।

उस दिन की कल्पना से उसका हृदय सदैव शंकित रहता था। मन-ही-मन वह नित्य इस समस्या का समाधान सोचता रहता।

फिर जब आज गजेन्द्र ने सुखदा की चर्चा छेड़ दी तो एकाएक उसकी समझ में न आया कि वह क्या उत्तर दे।

विषयान्तर करने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"बेटा, विवाह-शादी में सदा धीरज से काम लेना उचित होता है। फिर विवाह का प्रस्ताव अपनी ओर से करना वर पक्ष वालों के लिये अशोभनीय माना जाता है। इसके अतिरिक्त सम्भव है कि अन्य जगहों से भी प्रस्ताव आयें। उस समय जो लड़की और घराना उत्तम होगा उससे सम्बन्ध स्थापित करना अधिक उत्तम होगा।"

"काका, मैं अपने सुख के सम्मुख मानापमान को अधिक महत्व नहीं देता। और उचित कार्यों में समाज के अत्यधिक हस्तक्षेप को भी अनुचित मानता हूँ। स्पष्ट है कि अब मैं सुखदा से विवाह करना चाहता हूँ और मेरी धारणा है कि अब इस सम्बन्ध के लिये वह इनकार न करेगी। केवल उसके सामने तो केवल कामिनी का प्रश्न था सो वह समस्या भी हल हो गयी है।"

"हल होना और बात है। वास्तव में अभी सच पूछो तो उसका श्रीगणेश ही हुआ है।"

"मैं समझा नहीं। काका, पहेलियाँ न बुझाओ। साफ़-साफ़ कहो बात क्या है?"

कुँवर की समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार गजेन्द्र के चिन्तन और हृदय से सुखदा की स्मृति को उखाड़ फेंके। अतः उसने सीधी-सादी भाषा में कह दिया—"एक तो सुखदा विदिशा में नौकरी कर ली है, दूसरे वह घर से बिना बताये कहीं चली गयी है।"

"इसमें चिन्ता की क्या बात है? मैं स्वयं जाकर उसे मना लाऊँगा।

मैं जानता हूँ कि वह बहुत मानिनी है। मेरा ख्याल है, बिना मेरे गये वह कभी न आयेगी।"

"पर बेटा, तुम जाओगे कहाँ? उसका पता किसी को मालूम नहीं है।"

भूकम्प आ जाता या परमाणु बम का विस्फोट हो जाता तब भी गजेन्द्र को इतना विस्मय न होता। रमेसर की इस बात पर वह स्तम्भित हो गया। स्वाभाविक पीड़ा के चिह्न उसके मुख पर उभर आये। काँपते हुए हाथों से उसने अपनी कनपटियों की धड़कती धमनियों को दबाकर आँखें बन्द कर लीं। कम्पित वाणी से एक अस्फुट स्वर उसके मुँह से निकल पड़ा—"वह भी भाग गयी!"

रमेसर ने देखा, कथन के साथ ही, बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह लड़खड़ाते कदमों से कमरे के बाहर चला गया।

एकाएक रमेसर का हृदय गजेन्द्र की पीड़ा की कल्पना करके चीत्कार कर उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस प्रकार उसका दुःख दूर करे।

१६

कालचक्र की गति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। सुखदा ने सोचा था कि रानीखेत में बच्चों के बीच उसका हृदय शान्ति पा सकेगा। परन्तु सदैव मनचाहा नहीं होता। भूलने की चेष्टा करने पर भी वह गजेन्द्र को भुलाने में असमर्थ रही। यहां तक कि धीरे-धीरे उसकी पसलियां और छाती में दर्द रहने लगा। पहले तो वह समझती रही कि इस दर्द का सम्बन्ध उसके हृदय और आत्मा की पीड़ा से है। पीड़ित हृदय की व्यथा ही परिधि को लाँघ कर अंग-प्रत्यंग, रोम-रोम में छायी जा रही है। पर धीरे-धीरे शारीरिक पीड़ा ने जब उग्र रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया, तो उसका मन एक अज्ञात भय और आशंका से काँप उठा।

गजेन्द्र से विदा लेने के पश्चात् उसे रात्रि में बहुत कम नींद आती थी। बहुधा रात-भर वह जागती रहती। मानस-पटल पर स्मृति के मेघ आच्छादित रहते। वह उन्हीं में छिपे हुए यौवन-सौन्दर्य के चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करती। बिस्तर पर पड़े-पड़े करवटें बदलना जब असह्य हो जाता तो वह उठ कर खिड़की पर जा खड़ी होती।

समीप ही उसकी सहेली लिली दिन भर छोटे-छोटे बच्चों में उलझने के पश्चात् बेखबर सोयी रहती। उसके पलंग के सिरहाने छोटी तिपाई-नुमा टेबुल पर उसके एक ब्वाय फ्रेन्ड का चित्र रखा रहता जिसे देखते-देखते वह सो जाती और प्रातःकाल उठने पर सबसे पहले उसी का दर्शन

करती और अपने होठों में उसके प्रति अपना समस्त प्यार भर कर प्रेम-चिह्न अंकित करने के उपरान्त अपने दैनिक कार्य में व्यस्त हो जाती।

लिली को देख-देख कर सुखदा के मन में ईर्ष्या भी होती और उसे सुख भी मिलता। दोनों बचपन की सहेलियाँ थीं। दोनों ने स्कूल में एक ही दिन प्रवेश किया था। दोनों अपने-अपने पिता के साथ आफ़िस में नाम लिखाने आयीं थीं। वहीं दोनों को एक-दूसरे का नाम ज्ञात हो गया था। फिर चपरासी के साथ कक्षा की ओर जाते समय दोनों में बातें हुईं और दोनों एक ही डेस्क पर एक साथ ही बैठीं। यह क्रम सम्पूर्ण छात्र-जीवन में चलता रहा।

लिली सुखदा की मनोव्यथा से परिचित थी। किन्तु उसे सुखदा के हृदय में वेदना के वटवृक्ष की गहराइयों का आभास न था।

लिली प्रारम्भ में सुखदा को समझाने की बहुत चेष्टा करती रही। उसका तर्क था कि बदलते हुए युग के साथ चलने के लिये बदलती हुई मान्यताओं को भी अपनाना पड़ेगा। आधुनिक काल में जीवन-सौख्य की उपलब्धि प्राचीन, घिसी-पिटी रूढ़ियों की सूखी माला की भाँति गले से उतार फेंकना पड़ेगा। यात्रा के लिये बैलगाड़ी की उपयोगिता अपने युग में थी। आज भी उन क्षेत्रों में उसकी उपयोगिया हो सकती है जहाँ आधुनिक सभ्यता के चरण नहीं पहुँचे हैं। पर नवयुग के आगमन के साथ ही प्रेम की परिभाषा भी बदल गयी है। उसकी सलाह थी कि सुखदा को गजेन्द्र से विवाह कर लेना चाहिये या किसी दूसरे व्यक्ति को चुनना चाहिये, जो धनवान हो। अपने पक्ष को बल देने के लिये वह सदैव धन के महत्व की चर्चा करती थी। सुखदा का तर्क था कि वह आवश्यकता भर धन कमा लेती है और अधिक की उसे इच्छा नहीं है।

वह विवाह और प्रेम से सम्बन्धित वाद-विवाद में न पड़ती और प्रत्येक तर्क का उत्तर मौन से देती।

धीरे-धीरे वह दिन भी आया, जब लिली ने इस सम्बन्ध में चर्चा करना छोड़ दिया। सुखदा के गिरते हुए स्वास्थ्य की ओर जब उसका

ध्यान जाता तो वह उसे रोके बिना न मानती। परन्तु सुखदा सदैव हँस कर टाल देती और कहती कि यह उसका भ्रम मात्र है।

लिली की आँख अगर कभी रात को खुल जाती, तो वह सुखदा को जागती हुई पाती थी। वह कभी करवटें बदलती होती, कभी मेज़ पर सामने पुस्तक रखे कहीं दूर देखती होती या कभी खिड़की के आगे खड़ी होती। लिली उठकर चुपचाप उसके पास जाती और उससे सो जाने का अनुरोध करती।

ऐसी ही एक रात को अचानक लिली की आँख खुल गयी। सुखदा की मेज़ पर टेबुल लैम्प जल रहा था। परन्तु वह वहाँ न थी। वह खुली हुई खिड़की के सहारे खड़ी थी। सारा कमरा हिमालय की ठंडक से बरफ़ हो रहा था।

लिली को पहले तो सुखदा के ऊपर झुंझलाहट आयी। परन्तु फिर बचपन का प्रेम ज्वर की भाँति तरंगित हो गया। वह उठकर सुखदा के समीप गयी और उसने धीरे से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया।

सुखदा चौंक पड़ी और उसने धीरे से घूम कर लिली की ओर देखा।

वाचाल लिली मूक हो गयी। सुखदा के नेत्रों से आँसू बह रहे थे। दोनों गालों पर झरनों की पाँत-सी बनी हुई थी। लिली का हृदय उसकी वेदना की अनुभूति से द्रवित हो गया। उसने झट से जब उसे अपने वक्ष से लगा लिया तो सुखदा के धैर्य का बाँध मर्यादा की सीमा तोड़कर बह निकला। वह बिलख-बिलख कर रोने लगी।

लिली ने सांत्वना भरे स्वर में कहा—"धैर्य रखो सुखदा। तुम पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो। तुमको इस प्रकार अधीर होना शोभा नहीं देता।"

"मुझे क्षमा करो लिली," सुखदा ने रुदन के स्वर में कहा—"मैं विवश हो बैठी थी।"

"क्षमा की क्या बात है? चलो, हाथ-मुँह धो लो। फिर थोड़ा-सा सो लो।"

उससे अलग होकर आँसू पोंछती हुई सुखंदा बोली—"नींद ही तो मुझे नहीं आती। कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई मुझे बुला रहा है।"

"तब तुम उसके पास चली क्यों नही जातीं ? यों ही खिड़की के सहारे खड़े-खड़े तो वह आ न जायगा।"

"न जाने कितनी ही देर तक मैं आँख मूंद कर लेटी हुई उसके आगमन की प्रतीक्षा करती रही, तुम्हें क्या मालूम ?"

"मुझे केवल इतना मालूम है कि तुम खिड़की के सहारे खड़ी हुई किसी के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं।"

कथन के साथ ही लिली ने खुली हुई खिड़की को बन्द कर दिया और परदा खींच दिया।

एक निःश्वास के साथ सुखदा अपने पलंग की ओर चल पड़ी।

लिली के अधरों पर कौतुक भरी मुसकान थिरक उठी और वह बोली—"प्रतीक्षा व्यर्थ है देवी जी। आने वाला नहीं आयेगा; क्योंकि उसको तुम्हारा पता ही नहीं मालूम। जाना तो तुम्हीं को पड़ेगा। वह बेचारा तो तुम्हारी विरहाग्नि में भस्म हुआ जा रहा है।"

"मैं अब कहीं नहीं जाऊंगी। मरने के उपरान्त भी मेरी आत्मा यहीं भटकती रहेगी।"

"तो क्या पिछले साल की तरह इस बार भी...।"

"हाँ, इस बार तो क्या मैं कभी भी न जाऊँगी। मैं तो चाहती हूँ कि शीत ऋतु न आये और कॉन्वेन्ट में कभी छुट्टी ही न हो।"

"तुम पागल हो गयी हो सुखदा। पिछले वर्ष छुट्टियों में जब मैं कानपुर गयी थी तो तुम्हारे परिवार वालों के दुःख को मैं अपनी आँखों से देख आयी थी। कई बार तो मेरे मुंह पर बात आई थी कि मैं उनको तुम्हारा पता बता दूं, परन्तु तुम्हारी सौगन्ध ने मेरे मुंह को बन्द कर रक्खा था।"

"तुमको इस रहस्य को अभी छिपाये रखना ही पड़ेगा। पर वह दिन अब दूर नहीं है जब तुम बन्धन मुक्त हो जाओगी। उस समय तुम अम्मा,

बाबू और दीदी को मेरे यहाँ रहने का भेद बता देना। उन्हीं को नहीं चाहे गजेन्द्र को भी बता देना।"

गुरुदा की वाणी का दर्द लिली के हृदय में तीर की भांति चुभ गया। उसके कथन का तात्पर्य वह समझ गयी थी। गुरुदा का उत्तेजित आनन और उसके साथ कमरे का सम्पूर्ण वातावरण शान्त और गम्भीर हो गया।

"तुम अत्यन्त भावुक हो गुरुदा। आज के युग में ही नहीं सदैव से जीवित रहने के लिए व्यावहारिकता ही आवश्यक रही है।"

"भावुकता और व्यावहारिकता"'। दोनों का अपना मूल्य है। एक का सम्बन्ध आत्मा और हृदय से है दूसरी का तन से। किन्तु सभी वस्तुओं के जीवन की एक सीमा है। काल इतना बली होता है कि उसकी वंकिम दृष्टि न महासागर सहन कर पाता है न हिमालय। ऐसी दशा में मनुष्य किस आशा में जिये ?"

"सुख के लिये'"।"

"एक क्षण के स्वर्ग के लिये मैं अपनी आत्मा को अनन्त काल तक नरक की भट्टी में नहीं झोंक सकती। फिर कभी-कभी यह भी सोचती हूँ कि जब कोई भी स्वर्ग न स्थायी है न परिपूर्ण, तब उसकी कामना व्यर्थ है।"

"मैं तुम्हारी इन बड़ी-बड़ी बातों को समझने में नितान्त असमर्थ हूँ। इस प्रकार के निराशावादी विचारों के तथाकथित प्रेमियों को क्या मिला ? सम्पूर्ण जीवन तड़पते और वियोग में जलते बीत गया।"

"आग में तप कर ही सोना शुद्ध होता है। आज उनकी आत्मायें अनन्त मिलन का आनन्द उठा रही होंगी।"

लिली भुनक कर खड़ी हो गयी और बोली—"कल की चिन्ता करने वाली है पगली। कल के सुख के लिए आज की हत्या'"नहीं मुझे क्षमा करो।

गुरुदा का मुख-मंडल प्रेम के शुभ आलोक से दैदीप्यमान हो उठा।"

लिली ने पीछे के कमरे में रखे हुए जल को गिलास में उंडेला

और दो-चार घूंट पी कर गिलास रख दिया। फिर वह शृंगार-टेबुल के सम्मुख जाकर अपनी बिखरी हुई अलकावली को हाथ से समेट कर जूड़े का रूप देने में व्यस्त हो गयी।

सुखदा बैठी हुई उसे देखती रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

एकाएक लिली जूड़ा बांध कर उठी और उसने शृंगार-टेबुल की दराज़ में रखी हुई अपनी घड़ी को देखा। वह बोली—"अरे तीन बज गये! बस अब तुम सो जाओ। बाकी कल। घबराओं नहीं यह तो तुम्हारे जन्म भर का रोग है।"

कथन के साथ वह टेबुल लैम्प का स्विच आफ कर के अपने पलँग पर जा लेटी। कमरे में अंधकार का साम्राज्य छा गया।

फिर अचानक एक दुःख-भरी निःश्वास अंधकार को चीरती हुई कौंध गयी। लिली के हृदय से भी अनजाने ही एक निःश्वास निकल गयी। गहन अंधकार करुणा के भार से और अधिक गहन हो गया।

ऐसे निःश्वास जब-जब मिलते हैं, तब-तब कालचक्र मुसकराता है।

पाप की अस्थायी विजय की चकाचौंध मनुष्य को अन्धा कर देती है। बिना परिश्रम से प्राप्त धन के पंख लग जाते हैं। नाना प्रकार के प्रलोभनों के द्वारा मनुष्य लुट जाता है।

चतुरसिंह को जुआ खेलने और मद्यपान करने का व्यसन पहले से ही था। कामिनी को प्राप्त करने के पश्चात उसके मन में रूप के प्रति आसक्ति जागृत हो गयी। बम्बई का आधुनिकतम वातावरण और चिपके वस्त्रों मे लिपटी अर्धनग्न गुड़ियों ने उसके हृदय में एक अतृप्त वासना उत्पन्न कर दी। चित्र-निर्माण का व्यवसाय भी उसके हृदय में धधकती अग्नि को शान्त न होने देता था। फिर उसे रेस-कोर्स में जाने का चस्का लग गया। प्रारम्भ की छोटी-छोटी जीतों ने हारने का एक क्रम स्थापित कर दिया। कभी

कभी रेस-कोर्स में कोई ऐसी लड़की मिल जाती, जिसके यौवन-सौन्दर्य को देख-देख कर वह सोचने लगता—'हाय अब क्या करूँ।' फिर उसको प्राप्त करने की योजनाएँ बनतीं और रुपया पानी की भाँति बहने लगता।

फलतः वह दिन भी आया जब उसके पास नकद रुपये समाप्त हो गये। तब अन्य उपाय न देख व्यवसाय के बहाने उसने कामिनी के आभूषणों को बेचना प्रारम्भ कर दिया।

यह क्रम भी कुछ दिनों तक चलता रहा। जब कभी वह कोई आभूषण बेचता तो निश्चय करता कि बस यह प्रयोग अन्तिम है। आज के पश्चात मैं ऐसा कभी न करूँगा। परन्तु समय बीत गया और यह क्रम चलता रहा।

अन्त में वह दिन आ गया जब उसकी जेब में एक भी पैसा न रहा। कामिनी के सारे आभूषण बिक ही चुके थे। उधार मिल सकने का सिल-सिला भी समाप्त हो चुका था।

इस भाँति उसका मानसिक सुख-चैन ही नहीं, हास्य-विनोद भी समाप्त हो गया था। कामिनी को धन की विशेष लालसा नहीं थी। अतः उसे धन न रहने का तनिक भी दुःख न हुआ। आभूषणों के यथार्थ मूल्य का ज्ञान उसे न था और न उनका महत्व ही कभी उसके समीप था। उस को चतुरसिंह के रेस-कोर्स के क्रीड़ा-कौतुक और सुन्दरियों के सम्पर्क का भी ज्ञान न था। चतुरसिंह ने कामिनी को समझा दिया कि व्यवसाय में हानि हो जाने के कारण पैसा समाप्त हो गया।

कामिनी ने सद्गृहणी की भाँति उसे सांत्वना दी और उसको नौकरी ढूँढ़ने के लिये प्रेरित किया। उसने स्वयं घर का बढ़ा हुआ खर्च रोक कर नाना प्रकार से धन बचाने की चेष्टा की।

चतुरसिंह सब ओर से निराश हो चुका था। कौशलकिशोर ने भी उसकी उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया था। उसके पीते-पिलाने वाली सिगरेटें धनाभाव में उड़ चुकी थीं। मूल्यवान शराब पीने वाले को खाँसने के लिये दो घूँट ठर्रा भी नसीब न होती थी।

अब दिन-प्रतिदिन उसकी मनःस्थिति गिरती जा रही थी। रह-रह कर उसे हरिपुर और अपने बंधुबान्धवों का स्मरण आता। वह अपने दुःखों का मूलाधार कामिनी को ठहराता। हरिपुर के अग्निकान्ड का स्मरण आते ही उसका मन-प्राण काँप उठता। वह अपनी आज की स्थिति को गाँव वालों के अभिशाप का प्रसाद मानने लगा था।

संताप विदग्ध चतुरसिंह जब अधिक सहन न कर सका तो वह एक रात्रि को चुपचाप घर से निकल गया। जाने के पूर्व उसने एक पत्र कामिनी के नाम लिख अपने तकिये के ऊपर रख दिया। जिसमें लिखा था :—

"प्यारी कामिनी,

मैं जा रहा हूँ, दूर बहुत दूर। सम्भवतः अब जीवन में पुनः भेंट न होगी। तुम भगवानदीन और किशन के साथ गाँव चली जाना। तुम को प्राप्त करने के लिये मैंने तुमसे झूठ बोला था कि अग्निकाण्ड में गजेन्द्र की मृत्यु हो गई है।

मैंने तुम्हें प्राप्त करने के लिये और भी पाप किये हैं। परन्तु मैं तुम्हें पाकर भी न पा सका। अपने सुख की वेदी पर मैंने दूसरों के लिए दुःख का अम्बार लगा दिया। पाप की नींव पर खड़े हुए महल में सुख की उपलब्धि हो कैसे सकती है, मैं भूल गया था।

अब मेरे तप्त हृदय को केवल मृत्यु शान्ति प्रदान कर सकती है। मेरे पास एक ही उपाय बचा है कि मैं अपने तन-मन-प्राण में समाये हुए कलुष को धोने के लिए प्रायश्चित्त के महासागर की तरंगों का आलिंगन कर लूं। मैं सोचता हूँ, इस में कोई बुराई नहीं है। यद्यपि मुझे इस बात का दुःख है कि यह दुःख तुम से सहा न जाएगा। पर अब भी आशा की एक किरण सामने है। गजेन्द्र आज भी अविवाहित है। इस घटना का समस्त उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। तुम उसको समझा देना कि इस संयोजना में तुम्हारा कोई हाथ नहीं है। मेरी ओर से उससे निवेदन कर देना कि वह मुझे क्षमा कर दे। यद्यपि मैं जानता हूँ कि पतित और नीच व्यक्ति को क्षमा माँगने का अधिकार नहीं रहता।

मेरे कर्म इस प्रकार के नहीं हैं कि मैं किसी से क्षमा माँगूं। फिर भी यह समझकर कि कभी-कभी कुपात्र को भी दान करना पड़ता है। हो सके तो क्षमा कर देना। मेरे दुःखों का अन्त आत्मघात से हो सकता था, लेकिन फिर प्रायश्चित्त के लिये अवसर न मिलता। मैं रहूँगा इसी जगत में, लेकिन इस रूप में नहीं। तुम को सुखी देखने की कामना ही मुझे जीवित रखेगी।

तुम्हारा—नहीं-नहीं अब मैं तुम्हारा हूँ कहाँ ?
—चतुरसिंह"

पौ फटने पर कामिनी को चतुरसिंह का पत्र मिला। समाचार ज्ञात होते ही कुहराम मच गया।

चतुरसिंह में लाख अवगुण होने पर भी एक गुण था कि वह मनुष्य को मनुष्य समझता था। उसका व्यवहार नौकरों तक से अत्यन्त आत्मीयता से भरा हुआ होता था। उसके इस प्रकार चले जाने का दुःख भगवानदीन, किशन और कमला को भी हुआ।

कामिनी के मन में चतुरसिंह के प्रति एक सहज अनुराग उत्पन्न हो गया था। परिस्थिति से समझौता करने के उपरान्त उसने उसे अपना स्वामी मान लिया था और पतिरूप में वह उसकी पूजा भी करती थी। लगभग दो वर्षों के सान्निध्य में उसने उसे आदर्श पति के रूप में ही जाना था। वह उसका मुख देख कर रहती, उसकी इच्छा और प्रेरणा को अपना सौभाग्य और जीवन की एक अप्रतिम उपलब्धि।

पत्र पढ़ते ही पहले तो उसे आश्चर्य हुआ कि अरे, वह तो चला गया! फिर क्रोध आया कि इसने मुझे इतने धोखे में रक्खा! किन्तु उन के वियोग की कल्पना करते ही उसका हृदय द्रवित हो गया और वह उसे याद करके रो पड़ी!

कौशलकिशोर समाचार पाते ही आया। पर कामिनी का [illegible] रूप देखकर तिलमिला हो उठा। परिवार का एक मात्र [illegible] होने के नाते [illegible] प्रकट करने के पश्चात् कामिनी ने भविष्य की योजना के

सम्बन्ध में चर्चा की ।

कामिनी ने हरिपुर वापस जाने की इच्छा प्रकट की तो उसने उसे वहीं बने रहने का निमंत्रण दिया । बातों-बातों में उसने संकेत किया कि वह चाहे तो पुनर्विवाह कर ले । प्रकारान्तर से उसने स्पष्ट इंगित कर दिया कि वह स्वयं उससे विवाह करने के लिये इच्छुक है ।

पर अब कामिनी दो वर्ष पहले वाली सीधी-सादी नारी न थी । चतुरसिंह के सान्निध्य ने उसे व्यावहारिकता का पाठ पढ़ा दिया था । प्रलोभनों की मोहमाया से वह अवगत थी और एक बार नित्य सोच लिया करती थी कि तृप्ति कभी स्थायी नहीं होती और एक क्षण का स्वर्ग तो पशुओं को ही मिलता है । उन्हीं को मुबारक हो !

अतः उसने स्पष्ट रूप से नकारात्मक उत्तर न देकर कह दिया कि इस समय वह हरिपुर जा रही है । भविष्य की संयोजना भविष्य स्वयं ही प्रशस्त कर देगा ।

कौशलकिशोर ने इस विषय में अधिक वार्ता करना उचित न समझा । उसका विचार था कि कुछ समय पश्चात् जब कामिनी की मनःस्थिति अपने स्वाभाविक स्तर पर आ जायगी तो उसे अपना मन्तव्य सिद्ध करने में विलम्ब न होगा ।

बहुतेरी कामनाएँ इसीलिए अपूर्ण रह जाती हैं कि हम तत्काल वर्तमान के साथ समन्वय स्थापित कर लेते हैं । अन्त में जब कामिनी ने हरिपुर के लिए प्रस्थान किया, तो वह उसे पहुँचाने के बहाने साथ हो लिया ।

सुखदा का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिर रहा था । हृदय की भट्टी में उसका शरीर तिल-तिल करके जल रहा था । मन की पीड़ा तन की पीड़ा के साथ घुलमिल गयी थी । और हृदय की भाँति एक दिन तन ने भी उस

से विद्रोह कर दिया।

एक दिन जब सुखदा नित्य की भाँति न जग सकी तो लिली ने अधिक ध्यान न दिया। उसने सोचा कि नींद लाने की गोली देर में आई होगी। परन्तु जब स्कूल जाने में केवल एक घंटा शेष रह गया तो वह उसे जगाने जा पहुँची।

लिली ने पहले दो-तीन आवाजें दीं। तब भी जब वह न जागी तो उसने उसे हिला कर जगाना चाहा। परन्तु जैसे ही उसका हाथ सुखदा के शरीर से छुआ कि एक चीत्कार उसके कंठ से निकल कर सम्पूर्ण होस्टल में गूंज गया।

उसका शरीर हिमशिला की भाँति शीतल था और मुख परम सन्तोष की आभा से आलोकित था। पीड़ा का चिह्न जो उसके मुख पर सदैव छाया रहता था प्रकाश के सम्मुख छाया की भाँति विलुप्त हो गया था।

क्षण भर में ही लिली की चीत्कार ने कमरा अन्य अध्यापिकाओं एवं छोटे-छोटे छात्र-छात्राओं से भर दिया।

सबको अपने लोकप्रिय साथी के बिछुड़ने का दुःख था। कोई कहता था—यह हो क्या गया! कोई सिसकियाँ लेता हुआ बोल ही न पाता था। किसी ने कहा—पगली ने कभी किसी से कोई कठोर बात नहीं की। किसी ने बतलाया—अब मेरी कविताएँ कौन चाव से सुनेगा!

लिली के दुःख का तो पारावार न था। वह अपने को इस घटना का उत्तरदायी समझती थी; क्योंकि उसी ने आग्रह करके डॉक्टर से नींद लाने की औषध लेने के लिए सुखदा को विवश किया था। एक लड़की ने एक नोटबुक दिखलाते हुए बतलाया—दीदी, देखो उस दिन इस नोटबुक में क्या लिख दिया था—'तुम्हें जो कुछ चाहिये वह केवल एक मुस्कराहट से प्राप्त हो जायगा।'

साइड टेबुल पर खुली हुई खाली शीशी रखी थी, जिसके नीचे पत्र रखे हुए थे और समीप ही चाय का खाली प्याला था।

कॉन्वेंट की हेड-मिस्ट्रेस ने फ़ोन कर के पुलिस को इस घटना की

सूचना दे दी थी। पुलिस के आगमन की आहट सुनते ही लिली सजग हो उठी।

मेज़ पर रखे हुए पत्रों को उसने झट से उठा लिया। पत्रों में एक पत्र पुलिस के नाम था। लिली ने उसको पुनः मेज पर उसी भाँति रख दिया जैसे रक्खा था और अन्य पत्र बिना पढ़े ही अपने पर्स में डाल लिये।

पुलिस ने आकर परिस्थिति को अपने अधिकार में कर लिया। जाँच-पड़ताल के पश्चात् शव-विच्छेद के लिए भेज दिया गया। फिर धीरे-धीरे एक-एक कर के सभी लोग लिली के कमरे के बाहर चले गये।

एकान्त होते ही लिली के हृदय में दुःख की पीड़ा पुनः जागृत हो उठी। बचपन से लेकर आज तक की स्मृतियाँ एक-एक कर के उसके हृदय को कचोटने लगीं।

फिर अचानक उसे सुखदा के पत्रों का ध्यान आया। तुरन्त उसने पर्स निकाल कर उन्हें देखा। तीन पत्र थे। एक गजेन्द्र के नाम, दूसरा उसके पिता के नाम तथा तीसरा स्वयं उसके नाम। झट उसने काँपते हुए हाथों से अपना लिफ़ाफ़ा खोल डाला। उसमें लिखा था :—

"मेरी प्राणों से प्यारी लिली,

रो मत, तुम्हें दुःख हो रहा है। मैं जानती हूँ। लेकिन तू ही तो कहा करती थी कि मनुष्य को सब कुछ भूल जाना चाहिये। मैं भूल गयी हूँ, अब तू भी भूल जा न ? ले, मैं अब कभी न रोऊँगी। तुम जानती हो कभी मैं सोचती थी रोने से दुःख शान्त होता है। आज सोचती हूँ, रोना एक रोग है। है न ? तो आँसू पोंछ डाल मेरी लिली। इन आँसुओं का मूल्य कभी किसी ने चुकाया है ?

मेरे सम्मुख इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग न था। तन की पीड़ा मैं सह लेती, परन्तु मन की पीड़ा···। जितना इसको सहने की चेष्टा की, उतना ही इसका वेग बढ़ता गया। शायद मैं इस जग को समझ नहीं पायी और अपने आप को भी।

तो लिली तुम मुझे भूल अवश्य जाना। हाँ, कभी-कभी जब एकान्त हो तो अपनी इस सहेली को याद कर लेना। केवल कभी-कभी, वह भी क्षण मात्र के लिए।

एक प्रार्थना है कि मेरे भेद को किसी पर प्रकट न करना। इसे मेरी चिता की लपटों को समर्पित कर देना। फिर जब कभी कानपुर जाना तो अम्मा और बाबूजी से मिल लेना। सब हाल उन्हें बता देना। ऐसा कुछ मत कहना, जिससे वे सोचने लगे कि मुझे कोई दुःख भी था। मैंने लिख भी दिया है कि बीमारी से घबरा कर ही मैं आत्महत्या कर रही हूँ। या आत्महत्या का नाम न लेना। असह्य दुःख और आन्तरिक संघर्ष के बिना कोई आत्मघात नहीं करता। और भी एक बात है। यदि कभी कोई आत्मघात न करे तो इस सभ्यता का विकास ही रुक जायगा! है न?

अच्छा विदा!

तुम्हारी एक सहेली, जो तुम्हें सदैव दुःख ही देती रही,

सुखदा।"

सहसा लिली के नेत्रों से आँसू टपक-टपक कर पत्र की पंक्तियों की लिपि को फैलाने लगे, स्याही की गहराइयाँ हलकी पड़ने लगीं। और तभी लिली अकस्मात् अचेत हो गयी।

१७

उपसंहार

गजेन्द्र उसी भाँति न जाने कितनी देर तक बैठा रहा। विगत दो वर्षों की घटनायें एक के बाद एक उसके मानस पटल पर बनने और बिगड़ने लगी। वह सोच रहा था कि संयोग का अवसर आया तो, परन्तु रूढ़ियों में फँस कर वह उसे अपना न सका।

सहसा समीप एक कुत्ते के रुदन का स्वर सुन कर वह चौंक पड़ा! एक अमांगलिक आशंका से उसका मन काँप उठा।

तब एक प्रश्न उठा—श्वान का यह रुदन किसकी मृत्यु का सन्देश है?

—मेरी!

—पर मैं जीवित कहाँ हूँ?

—तो, मेरे मरण-पर्व का उत्सव मनाया जा रहा है! भावुकता छोड़ो, सुखदा का कोई पता नहीं चला।

—आत्म-समर्पण के लिए आयी हुई कामिनी को भी मैंने ठुकरा दिया!

—क्यों?

इस प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न और उठा।

'क्या मुझे जीवित रहने का अधिकार नहीं है ?'

—हां !

—तो मुझे जीवन-सौख्य की सर्जना का अधिकार भी होना चाहिये।

—क्योंकि जीवन को सींचने के लिए जीवन-सौख्य आवश्यक है।

विचारों के अन्तर्द्वन्द्व में उसने सोचा कि जब सुखदा का कोई पता नहीं मालूम, तो उसके नाम पर बैठ कर माला जपना केवल मूर्खता न होगी ?

—फिर ऐसा भी तो सम्भव है कि उसने विवाह कर लिया हो। वह भी कामिनी की भाँति किसी अन्य से प्रेम करती रही हो। जब आस्थाएँ ही न रहीं, तो हम जियें किस आधार पर ?

एकाएक वह उठ कर खड़ा हो गया और फाटक के समीप कुछ देर खड़ा रहा।

पुनः विचार आया—कौन कह सकता है कि कामिनी को प्राप्त कर के मैं तृप्त ही हो सकता था।

सम्पूर्ण सुख चाहे न प्राप्त होता, परन्तु अवसर का लाभ उठा कर कुछ अंश में जीवन-सौख्य का आनन्द तो मिल ही जाता। छप्पन प्रकार का स्वादिष्ट भोजन न मिलने पर भूखे मनुष्य को सूखे चने से ही पेट भरना पड़ता है। पेट की भूख को शान्त करने के लिए मनुष्य कूड़े में फेंके गये बासी और उच्छिष्ट अन्न को भी उत्साह से उठाकर मुँह में डाल लेता है।

लेकिन यह लक्षण पागल व्यक्ति का है, या भूखे का। पागल सदा भूखा रहता है। वह भूखा ही मरता भी है। तृप्त व्यक्ति कभी पागल नहीं होता।

गजेन्द्र का मुँह स्नायुविक उत्तेजना के कारण लाल हो गया। उसकी धमनियों में प्रवाहित रक्त की धड़कन से कनपटियाँ गर्म-गर्म लगने लगीं। जिस दिशा में कामिनी गयी थी वह उसी दिशा की ओर बढ़ चला।

उसके मन में अब कामिनी के घर जा कर, उसकी शर्तों के अनुसार,

उसे प्राप्त कर लेने की इच्छा ने जन्म लिया था।

वह सोच रहा था—अधिकतर लोगों के जीवन-पुस्तक में ऐसे पृष्ठ भी होते हैं जिन पर कलुष की कालिमा पुती होती है। एक अध्याय अगर उसके जीवन में ऐसा जुड़ जाय, तो क्या अन्तर पड़ेगा ? मैं उसे उपपत्नी के रूप में तो ग्रहण कर ही सकता हूं।

उसकी तन की प्यास पुकार कर बोली—'ठीक है। फलाफल की ओर दृष्टि रखना अभीष्ट होता है। साधन की क्या चिन्ता करना !'

हृदय ने बुद्धि का गला थाम लिया। सहसा उसके मन में तर्क उठा—'तन की प्यास बुझाने के लिए तो वेश्या का द्वार सदैव खुला है।'

अन्तर्विरोध वाद-विवाद बनकर उग्र रूप धारण करने लगा। तब एक के बाद दूसरा विचार उसके मानस को उद्वेलित करने लगा।

उसके बढ़ते हुए चरण रुक गये। विचारों के ऊहापोह में डूबा हुआ गजेन्द्र वापस, अपनी हवेली की ओर चल पड़ा। मुख्य-द्वार को बन्द करने के उपरान्त वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया।

रात्रि अधिक बीत चुकी थी। पौ फटने में अधिक देर न थी। फिर भी उसे नींद न आयी और वह आज की घटना का स्मरण करने लगा।

आज जीवन में उसे अपने ऊपर बहुत क्रोध आ रहा था। अपने को वह समझ ही न पाता था। वह अपने से पूछता था—वह कौन-सी भावना थी, जिसमें वह कर उसने कामिनी के आत्म-समर्पण को ठुकरा दिया था ?

इसी घटना क्रम में अचानक उसे कुत्ते के रोने का स्मरण हो आया। उसे प्रतीत हुआ कि वह वस्तुतः रुग्ण है और औषधि के अभाव में मरणासन्न पड़ा हुआ अन्तिम घड़ियां गिन रहा है।

गजेन्द्र का मन एक दारुण व्यथा से भर गया। तमाशे दुनिया के कम न होंगे। एक आंसू पलकों पर आकर स्थिर हो गया।

उसने अनुभव किया कि उसका अतृप्त हृदय पीड़ा के दुर्गन्धित मवाद का पिण्ड मात्र है, जिसका विष धीरे-धीरे उसके सम्पूर्ण शरीर में फैल रहा है।

तब एक अव्यक्त निःश्वास निकल कर कमरे के शून्य में विलीन हो गया।

तब उसे कामिनी के प्रथम आत्म-समर्पण का ध्यान हो आया।

उसका सम्पूर्ण शरीर एक दम से पुलकित हो उठा।

उसने निश्चय किया कि वह कामिनी के सम्मुख घुटने टेक देगा। उसे आशा ही नहीं, पूर्ण-विश्वास था कि वह उसको अवश्य अपना लेगी।

प्रणय-कामना हो अथवा तन की विस्फोटकारी भूख, सदा मनुष्य के पतन का मुख्य कारण रही है। बड़े-बड़े साधकों की साधना भंग हो गयी है। एक गजेन्द्र के मन का संयम टूट गया तो ऐसा क्या हो गया, जिसके लिए उसे पश्चात्ताप हो!

वह उठ खड़ा हुआ। कामिनी के घर जाने के लिए उसने अपने पैरों में चप्पल पहन लीं।

किन्तु उसी क्षण रमेसर चाय की ट्रे लेकर कमरे में आ पहुँचा।

गजेन्द्र को चप्पल पहने हुए देख कर रमेसर समझ गया कि वह कहीं बाहर जाने को उद्यत है। उसने चाय की ट्रे एक छोटी तिपाई पर रख दी।

रमेसर चायदानी से कप में चाय उँडेलता हुआ बोला—"पहले चाय पी लो भैया, फिर जहाँ जाना हो चले जाना।"

गजेन्द्र ने सोचा—ठीक है। सुबह-सुबह न जाकर दिन में ही उसके घर जाना उचित होगा। दिन के सन्नाटे में उससे भेंट होने में सम्भव है···।

हाँ, प्रत्येक दुर्बल मानव इसी भाँति सोचता है।

अतः कुछ उत्तर न देकर वह चुपचाप कुर्सी पर जा बैठा और चाय पीने लगा। वह सोच रहा था—आज से मेरा दूसरा जीवन प्रारम्भ होगा। परन्तु चाय पीते ही उसे रात्रि-जागरण की थकान के आलस्य ने पकड़ लेना चाहा। तब सोने की चेष्टा न कर उसने कामिनी के घर जाने की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

झट से नया ब्लेड निकाल कर वह दाढ़ी बनाने बैठ गया। सेफ्टी रेजर को खूब घिस-घिस कर सम्पूर्ण मनोयोग से उसने एक-एक खूँटी को निकाल फेंका। हर एक खूँटी निकालते समय उसे प्रतीत होता, जैसे वह

मन के काँटे निकाल रहा है।

वह आज लगभग दो वर्ष के उपरान्त इतने मनोयोग से सब काम कर रहा था। याद आया—उसने विवाह के दिन भी इसी उत्साह से तैयारी की थी। उस दिन भी वह कामिनी के घर जा रहा था और आज भी।

पर उस दिन उसकी स्थिति पति की थी और आज उप-पति की।

दोनों की उपलब्धि एक थी, कामिनी का मिलन !

दोनों परिस्थितियों में समानता होते हुए भी थोड़ा अन्तर था।

उस दिन तो वह दूल्हा बन कर वाजे-गाजे के साथ जा रहा था, आज चोर बन कर चुपचाप !

यह सारा का सारा जीवन ही ऐसे खण्ड-कटु-तथ्यों से भरा पड़ा है।

स्नानादि से निवृत्त होने के पश्चात् गजेन्द्र सिल्क का कुरता और चुन्नटदार धोती पहन कर जब खाना खाने के लिए बैठा, तो दस बज चुके थे।

गजेन्द्र की इस प्रसन्नता के साथ एक प्रकार से सम्पूर्ण हवेली के अवसाद का अन्त हो गया था। रमेसर से लेकर छोटे-से-छोटा नौकर हरखू तक प्रसन्न था।

रमेसर ने गजेन्द्र के इस परिवर्तन को किसी माँगलिक घटना का द्योतक समझा। उसने जब कल्लू से इसकी चर्चा की तो दोनों ने एक मत हो कर स्वीकार किया कि गजेन्द्र की मनःस्थिति के परिवर्तन का कारण कामिनी का आगमन है।

कल्पना के हिंडोले पर पैंग बढ़ाता हुआ गजेन्द्र धीरे-धीरे उतर कर मुख्य द्वार पर आ पहुँचा। उसने द्वार की चौखट पार करने के लिए क़दम उठाया ही था कि एक रिक्शा द्वार पर आ कर रुक गया। उसका स्वाभाविक कौतूहल जाग उठा। आगे बढ़कर उसने देखा कि उस पर कामिनी बैठी है और उसके पार्श्व में बैठा है एक सूटेड-बूटेड, क्लीन शेव्ड, गौर-वर्ण का स्वस्थ नवयुवक।

इस समय कामिनी को देख कर उसे आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि अच्छा हुआ यह स्वयं आ गयी और उसे अपना गौरव भूल कर उसके

सम्मुख पराजय नहीं स्वीकार करनी पड़ी।

परन्तु उस नवयुवक पर दृष्टि पड़ते-पड़ते अनजाने ही उसका हृदय ईर्ष्या से भर गया।

उसके मन में एक विचार उठा कि वह अभी आगे बढ़ कर साथ बैठे हुए युवक को हाथ झटक कर उसे रिक्शे से नीचे गिरा दे !

पर फिर तुरन्त ही उसे परिस्थिति का ध्यान हो आया। सभी लोग थोड़ी ही दूर पर उसे चारों तरफ़ से घेरे खड़े थे।

कामिनी रिक्शे से उतरी और उसकी चरण-रज लेकर अपने मस्तक पर धारण करती हुई बोली—"मैं तुमसे आशीर्वाद माँगने आयी हूँ बड़े ठाकुर।"

इतने में वह नवयुवक भी रिक्शे से उतर कर आ पहुँचा। उसने भी गजेन्द्र के चरणों में झुक कर प्रणाम किया।

स्तब्ध अवाक् गजेन्द्र हतप्रभ हो उठा। उसकी समझ में न आया कि रहस्य क्या है !

तभी कामिनी ने किंचित् मुसकराते हुए कहा—"ये हैं कोमलकिशोर। हम दोनों ने विवाह करने का निश्चय किया है।"

गजेन्द्र को लगा कि सारा संसार धू-धू कर के जल उठा है !

उसका मन-प्राण सिसकता हुआ चीत्कार कर रहा था—'इस कामिनी को उस दिन चतुरसिंह ने छला और आज यह कोमलकिशोर लिये जा रहा है। तुम उस दिन भी असहाय थे और आज भी हो ! तुम्हारा शरीर हाड़-मांस का नहीं, तुम्हारी धमनियों में रक्त की गति नहीं।'

तब एकाएक उसे कुन्दा का ध्यान आया। उसने सोचा एक वही अवलम्ब शेष है।

उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर उसने तुरन्त दोनों की पीठ पर हाथ रख कर मन-ही-मन कुछ स्थिर किया। आशीर्वाद स्वरूप भर्राई स्वर में कह दिया—"सुखी रहो।" और इस भाँति वह एक आघात छिपाने में सफल हो गया।

हम चाहें तो हर दुःख को सुख-संतोष में बदल सकते हैं। अंत में सब